श्रोमञ्जूथीयशोविरजितस्य परमाविषुद्रौज्ञतस्य श्रोलघुकालचकतन्त्र राजस्य करिकना भीए दरीकेण विरिचता टीका

विमलप्रभा

[तृतीयो भागः]



ओट विधा संस्थानम्

प्रधानसम्पादकः सम्दोड् रिन्पोछे सम्पादकी

वसवल्लभ द्विवेदी

एस० एस० बहुलकर

दुलंभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना केन्द्रीय उच्च तिस्वती शिक्षा संस्थान

VIMALAPRABHĀŢĪKĀ

OF

KALKIN ŚRĪPUŅŅARĪKA

NC

ŚRĪLAGHUKĀLACAKRATANTRARĀJA

by

ŚRĪMAÑJUŚRĪYAŚAS [Vol. III]



Chief Editor Samdhong Rinpoche

Editors

VRAJAVALLABH DWIYEDI

S. S. BAHULKAR

RARE BUDDHIST TEXTS RESEARCH PROJECT
Central Institute of Higher Tibetan Studies
SARNATH, VARANASI

B. E. 2538

C.E. 1994

Co-Editors
Janardan Pandey

Thakur Sain Negi Tashi Samphel Vijay Raj Vajrachatya Banarsi Lal Thinlay Ram Shashni Chhog Dorfee

First Fdition: 550 Copies, 1994

Price: HB. Rs. 110.00 PB. Rs. 70,00

Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi, 1994

Published by: Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi-221 007

Printed by: Shivam Printers C. 27/273, Indian Press Colony Maldahiya, Varanasi-221 002 बुलंभ-बोद्ध-प्रन्यमाला-१३

श्रीमञ्जुश्रीयशोविरचितस्य परमाविवुद्धोद्धृतस्य श्रीलघुकालचक्रतम्त्रराजस्य कल्किना श्रीपुण्डरीकेण विरचिता टीका

विमलप्रभा

[तृतीयो भागः]



प्रधानसम्पादकः सम्दोङ् रिन्पोछे सम्पादको

व्रजवल्लभ द्विवेदी

एस० एस० बहुलकर

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना केन्द्रीय उच्च तिन्वती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्व : २५३८

विस्ताब्व : १९९४

सहायक मण्डल जनार्वन पाण्डेय

ठाकुरसेन नेगी टशी सम्फेल विजयराज वजाचार्य बनारसी लाल ठिनलेराम शाशनी छोग दोर्जे

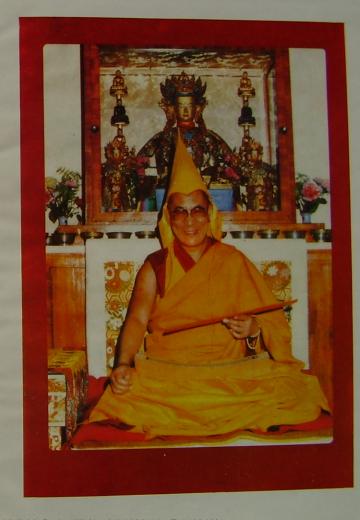
प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियाँ, १९९४

मूल्य : सजिल्द रु॰ ११०.०० अजिल्द रु॰ ७०.००

🔘 केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, १९९४

प्रकाशक : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, वाराणसी-२२१ ००७

मुद्रक : शिवम् प्रिन्टर्स सो॰ २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी मलदहिया, वाराणसी-२२१ ००२



प्रकाशकीय

केन्द्रीय उच्च तिव्यती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, बाराणसी के द्वारा प्रकाशित हो रही कालचक्रतन्त्र की विमलप्रभा टीका के तृतीय और अन्तिम भाग को बीद्ध तन्त्रों के अनुरागो विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इसके प्रथम भाग (प्रथम-द्वितीय पटल) का समालोचनात्मक सम्पादन स्वर्गीय प्रो॰ जगन्नाथ उपाध्याय जो ने किया था और उसका प्रकाशन सन् १९८६ में हो चुका था। प्रो॰ उपाध्याय जी के द्वारा स्वेशकृत पद्धति से पं॰ ब्रजबल्लभ द्विवेदी, पं॰ जनार्दन शास्त्री पाण्डेय आदि द्वारा सम्पादित इसके द्वितीय भाग (तृतीयचतुर्थ पटल) का प्रकाशन सन् १९९४ में हुआ। अब इस तृतीय भाग में पंचम पटल को और पूरे ग्रन्थ के तीन परिशिष्टों को प्रकाशित किया जा रहा है।

कालचकतन्त्र और उसकी विमलप्रभा टीका के प्रथम चार पटलों का सम्पादन छ: हस्तलेखों के आधार पर किया गया था, जिनका परिचय प्रथम और द्वितीय भाग में दिया जा चुका है। इनमें से पांच हस्तलेखों में केवल चार पटल तक का ही ग्रन्थ उपलब्ध है। केवल एशियाटिक सोसाइटो, कलकत्ता के हस्तलेख में ही पूरा ग्रन्थ उपलब्ध है और यह प्राचीन बंगला लिपि में लिखा गया है। इसको पढ़ने और शद्ध प्रतिलिपि तैयार करने के अनेक प्रयत्न किये गये, किन्तु वे सब असफल हो गये। अन्त में इस शोध योजना के लिपिविशेषज्ञ और प्रमुख परामर्शदाता पं॰ श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय के सहयोग से और वरिष्ठ अनुसन्धान अधिकारी श्री बनारसी लाल के अथक परिश्रम से यह कार्य सम्पन्न हुआ। पूरे पंचम पटल के पाठ की बुटियों को भोट अनुवाद की सहायता से परिमाजित किया गया और इस महनीय कार्य में इस संस्थान के मूलशास्त्र के प्रो॰ सेम्पा दोर्जे जी से सहायता ली गई। इस हस्तलेख के दो पत्र उपलब्ध नहीं हुए। उस अंश का भी भोट अनुवाद की सहायता से पुनरुद्वार किया गया। यह कार्य इस योजना के निदेशक प्रो॰ एस॰ एस॰ बहुलकर, डॉ॰ बनारसी लाल और डॉ॰ टशो सम्फेल ने किया। सन् १९८५ में मूल कालचक्रतन्त्र का डॉ॰ विश्व-नाथ बनर्जी के द्वारा संपादित संस्करण कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। मूल क्लोकों के परिष्कार के लिये इससे भी सहायता ली गई है। हम उन सभी संस्थानों और व्यक्तियों के प्रति अपनो हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनका कि इस सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन में महनीय सहयोग रहा है।

इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग के प्रकाशकीय वक्तव्य में कालबक्रतन्त्र एवं विमल्प्रभा टीका के पंचम पटल के साथ विभिन्न परिशिष्टों के समावेश के विषय में लिखा गया था। इस महनीय ग्रन्थ के प्रथम भाग का बोधगया में श्लोकालचक्र तन्त्र के अभियक के पुनीत अवसर पर परमपावन विश्वगृष्ट दलाई लामा जी के करकमलों द्वारा

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

प्रकासनोद्घाटन हुआ या। अब अगले वर्ष सन् १९९५ में कर्णाटक राज्य के मुंडगोड स्थान पर परमपावन दलाई लामा जो पुनः श्रीकाल्डक तन्त्र का अभिषेक मुंडगोड स्थान पर परमपावन दलाई लामा जो पुनः श्रीकाल्डक तन्त्र का अभिषेक प्रदान करने वाले हैं। इस पुनीत अवसर पर इस ग्रन्थ के तृतीय और अनितम भाग प्रदान करने वाले हैं। इस पुनीत अवसर पर इस ग्रन्थ हो। इस अभिप्राय से अभी का प्रकाशनीद्घाटन उन्हीं के करकमलों द्वारा सम्पन्न हो, इस अभिप्राय से अभी का प्रकाशनीद्घाटन उन्हीं के करकमलों स्वार गर्वा अति आवश्यक तीन परिशिष्ट (इलोकार्यसूची, ग्रन्थ-प्रन्थकार-मत-मतान्तर-हम यहाँ अति आवश्यक तीन परिशिष्ट (इलोकार्यसूची) के अतिरिक्त अन्य परिशिष्ट नहीं दे सके। सुची और विसलप्रभाष्ट्रतब्वनसूची) के अतिरिक्त अन्य परिशिष्ट नहीं दे सके। सुची अने के विषय में परिचयात्मक ग्रन्थ प्रकाशन करने की और उसमें शेष परिशिष्ट जोड़ने को योजना है।

इस संस्करण को प्रस्तुत करने वाले सहायक-मण्डल के सभी सदस्यों को, जिनका कि नाम यहीं अन्यत्र अंकित है, हम हादिक धन्यवाद देते हैं। इस भाग के दशतापूर्ण मुद्रण के लिये हम 'शिवम् प्रिन्टर्स' के श्री हरिप्रसाद निगम के भी आभारी हैं।

कालचक तन्त्र की विमलत्रभा टीका का बौद्ध तन्त्रशास्त्र में अपना विशिष्ट स्थान है। यह टीका केवल तन्त्रशास्त्र तक ही सीमित न रहकर, ज्योतिष, आयुर्वेद, रसशास्त्र, बौद्धेतर तन्त्र, योगशास्त्र, वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि अनेक विषयों को अपने में समेटे हुए है। शीष्ट्राता में इन सवका विवरण नहीं दिया जा सकता। उसके अभाव में इस महनीय प्रत्य का परिचय अधूरा रह जायगा। अतः पूरे ग्रन्थ की सीक्षित विषयानुकमणी के साथ प्रत्य के विशिष्ट प्रतिपाध विषयों का तथा अन्य विविव शास्त्रों का परिचय विज्ञ पाठकों तक पहुंचाने के लिये विशिष्ट विद्वानों से निवन्ध लिखवाकर प्रकाशित करने की हमारो योजना है। इसमें करुणामूर्ति विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है।

दिसम्बर १९९४

एस० रिन्पोछे निदेशक

न्यर सुन पद केन पहिना

स्याप्ता मुक्तास्त्र मुक्तास्त्र स्वाप्ता मुक्तास्त्र स्वाप्ता मुक्तास्त्र स्वाप्ता मुक्तास्त्र स्वाप्ता स्वापता स्वाप्ता स्वाप्

मार्चम्यायद्देश्वर्यः स्वाप्तायद्देश्वर्यः स्वाप्तायद्देशः स्वाप्तायद्वर्यः स्वापत्तायद्वर्यः स्वापत्तायद्वर्यः स्वापत्तायद्वर्यः स्वापत्तायद्वर्यः स्वापत्तायद्वर्यः स्वापत्तायद्वर्यः स्वापत्तायद्वर्यः स्वापत्तायद्वर्यः स्वापत्तायः स्वापत्तायः स्वापत्तायः स्वापत्तायः स्वापत्तायः स्वापत्वयः स्वापत्तायः स

महीर निहाल प्रति निहाल प्रति स्थान स्थान

न्मः मी दिसः स्वितः मुद्दः स्वतः पश्चः द्वः से स्वतः पश्चः स्वतः पश्चः स्वतः पश्चः स्वतः पश्चः स्वतः पश्चः स्वतः स्वतः

PUBLISHER'S NOTE

We feel extremely delighted to present to the scholars of Buddhist Tantrism the third and the last volume of the Vimalaprabhā, a commentary on the Kalacakra Tantra, being published by the Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi, The first volume of this commentary, consisting of the first and the second Palalas, was critically edited by Prof. Jagannath Upadhyaya and was published in 1986. Adopting his method, the second volume, consisting of the third and the fourth Patalas, was critically edited by Pt. Vraj Vallabh Dwivedi, Pt. Janardan Shastri Pandey and others, and was published in 1994. The third volume consisting of the fifth Patala and three Appendices to the entire work is now being published.

The critical edition of the four Patalas of the Kalacakra Tantra and its commentary Vimalaprabha was based on six manuscripts, a description of which has already been given in the first volume of this work, Out of these, the five manuscripts contain the text up to the fourth Patala only. The manuscript designated as Ga contains some portion in the beginning of the fifth Patala. It is the single manuscript, deposited in the Asiatic Society, Calcutta and designated by us as Ca, that contains almost the entire text of the fifth Patala. The manuscript was written in the old Bengali Script, Several attempts were made to read this script and to prepare a correct copy; but they were proved futile. Finally this work was completed due to the co-operation of Pt. Janardan Shastri Pandeya, a Sanskrit scholar well-versed in various ancient scripts, working as Senior Consultant of this project and the ceaseless efforts on the part of Dr. Banarsi Lal, Senior Research Officer. The inaccurate readings in the Sanskrit text of the fifth Paiala were emended with the help of the Tibetan translation. For this work, the co-operation of Prof. Sempa Dorjee, Professor of

Mūlašāštra of this Institute was solicited. Two leaves of this manuscript were missing. The missing portion was restored in Sanskrit by Prof. S.S. Bahulkar, Director of the Project, Dr. Banarsi Lal and Dr. Tashi Samphel. In 1985, a critical edition of the Kālacakra Tantra prepared by Prof. Biswanath Banerjee was published from Calcutta, The edition was consulted for critically editing the original verses in the Kālacakra Tantra. We express our deep gratitude towards all those institutions and individuals who have rendered great help in bringing out the present volume.

In the Publisher's Note to the second volume of this work, we had announced the proposed publication of the third volume consisting of the fifth Patala along with various appendices. The first volume of this great work was released at the auspicious hands of H.H. the Dalai Lama on the memorable occasion of the initiation into the Kālacakra Tantra held at Bodh Gaya in 1985. It is a happy coincidence that the third and the last volume of this work should also be released at the hands of His Holiness on the occasion of the Kalacakra initiation to be held at Mundgod in the Karnataka State in January 1995. Wishing to meet the deadline, we confined ourselves to publishing the text of the fifth Patala along with the three essential appendices (i.e., Index to slokardhas, Index to works, authors and views quoted in the text and Index to the citations from the Vimalaprabha) and did not include other appendices. We hope to bring out a special volume on the Kalacakra in due course, in which we intend to publish those remaining appendices. We are thankful to the members of our staff-whose names have been mentioned elsewhere-for extending their assistance in preparing these appendices. We thank Shri Hari Prasad Nigam of Shivam Printers for the careful printing of this book.

The Vimalaprabhā on the Kālacakra Tantra occupies a unique position in the Buddhist Tantrism. It is not restricted just to Tantrism; it also includes matters related to Astronomy,

Ayurveda, Rasasāstra, non-Buddhist Tantras, Yogasāstra, Vedas, Purāņas, Dharmaśātra, other systems of Indian Philosophy and several other subjects. It is not possible to review all these subjects at this stage. However, we are aware that in the absence of such a review, one would not be able to do full justice to this work. The special volume on the Kalacakra Tantra will therefore include an index to the subject-matter of the Vimalaprabha, and articles on various topics written by scholars specialized in Buddhist Tantrism. We sincerely solicit kind co-operation of scholars in this regard.

December 1994

S. Rinpoche Director

पुरोवाक

विमलप्रभायास्तुतीयस्य चरमस्य च खण्डस्य संस्करणिमदं कालचक्रस्य ज्ञानास्य-पञ्चमपटलमधिकृत्य प्रणीतां टीकामन्तर्निधत्ते । संस्करणस्यास्य प्रधानतया-ऽऽधारभूत एक एव हस्तलेखो विद्यते, योऽस्माभिः 'च' इतिसंकेतवर्णेन निर्दिष्टोऽस्ति । हस्तलेखेऽमुष्मिन् सम्पूर्णा टीकोपलभ्यते। हस्तलेखोऽसौ कलिकातानगरस्यायां एशियाटिक-सोसायटी-हस्तलेखशालायां संरक्षितोऽस्ति (क. १०७६६)। अपरोऽपि हस्तलेखो नेपालदेशे काठमाण्ड्नगरे राष्ट्रीय-अभिलेखालये वर्तते, योज्साभिरूपयोजित-पूर्व: 'ग' इति संकेतवर्णेन निर्दिष्टोऽस्ति (क. ५-२४०), यत्र चत्रर्थपटलस्यान्ते पञ्चमपटलटीकायाः कश्चनांशः (षट्चत्वारिंशश्लोकटीकां यावत्) समुपलभ्यते। एशियाटिक-सोसायटोस्थापितो हस्तलेखोऽसौ तालपत्रेषु बङ्गलिपिनिबद्धोऽस्ति। लिपिरसौ खिस्ताब्दस्य दशमशतकादूत्तरकालीनास्ति । असी हस्तलेखो वञ्जदेशस्य राज्ञो हरिवर्मदेवस्य ३१ तमे संवत्सरे आषाढमासस्य २९ तमे दिने लिखितः । राजाऽसौ खिस्ताब्दस्यैकादश-शतकापराधीद् द्वादश-शतकपूर्वीधं यावद् वङ्कदेशं प्रशास्ति स्मेति कथ्यते । 3 म.-म.-हरप्रसादशास्त्रिभः प्रदत्तमेतद्धस्तलेखविवरणं निर्दिश्य, हस्तलेख-पुष्टिपकां ग्रन्थगतां ज्योतिषविषयकसामग्रीं चाधारत्वेन स्वीकृत्य, आर. सी. माजुमदार-महोदयो हस्तलेखस्यास्य लेखनं ख्रिस्ताब्दस्य १११९ तमे संवत्सरेऽभवदिति मन्यते।* हस्तलेखोऽसावमूल्यो यतः प्राचीनतमस्य हस्तलेखस्यास्य लेखनं विमलप्रभाया रचनाया अनन्तरं शतसंवत्सरावधिके काले संवृत्तम्। पतस्माद्धेतोरसौ मूलग्रन्थहस्त-लेखस्य निकटतरो मन्तव्यः।

कालचकतन्त्रस्य परमं प्रयोजनिमतरानुत्तरयोगतन्त्रसमानं यद् इहैव मानुषे जन्मिन बुद्धत्वप्राप्तिरिति । बुद्धत्वं नाम चतुर्भिर्बद्धकायैष्पलक्षितम् — निर्माणः, संभोगः,

१. म.-म.-हरप्रसादशास्त्री (सम्पा.), ए डिस्किप्टिव्ह कॅटलॉग ऑफ संस्कृत मॅन्युस्किप्ट्स इन द गव्हर्नमेण्ट कलेक्शन अण्डर दि केंबर ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बेंगॉल, व्हॉल्यम १, बृद्धिस्ट मॅन्युस्क्रिप्ट्स, कलकत्ता, १९१७, पृ. ७९-८२।

२. वि॰ प्र॰, खण्डः १, प्. xxix; मितोतुशी मोरीगुची (सम्पा॰), ए कॅटलॉग ऑफ दि बुद्धिस्ट तान्त्रिक मॅन्युस्क्रिप्ट्स इन दि नॅशनल अर्काइन्ह्ज ऑफ नेपाल अँण्ड केसर लायवरी, सांकिबो बुश्शोरिन, तोक्यो, १९८९, क्र. ९८, पृ. २६।

३. शास्त्रिमतेन स खिस्ताब्दस्य दशमशतकापरार्घे प्रशास्ति स्म । उपरिनिविष्टे प्रन्ये, पृ. ८० । ४. आर. सी. माजुमदार, हिस्टरी ऑफ बेंगॉल, जी. भारद्वाज अंग्ड कं., कलकत्ता, १९७१,

पू. २१६ (टिप्पणी ३१)।

५. कालचक्र-विमलप्रभयोः कालविषये, द्र०, जॉन न्यूमन, "दि परमादिवृद्ध (द कालचक्र मुलतन्त्र) अंग्ड इट्स रिलेशन टुदि अर्ली कालचक्र लिटरेचर'', इण्डो-इरानियन जर्नल ३० (२), १९८७, पृ. १००।

षमंः, शुद्धापरपर्यायः सहजद्देति । इमे बुद्धकायाद्यतसृणामवस्थानां जाग्रत्-स्वप्न-मुप्ति-नुर्याणां लक्षणेर्युक्ता निरावरणाश्च। कालचक्रपदस्य चत्वारो वर्णा एतेपां कायानां बोधकाः। व्युद्धत्वप्राप्तिर्माम साधकस्येष्टदेवतातया, बुद्धत्वेन काल्चकत्वेन वा परिणमनम् । तदेव परमाक्षरज्ञानमिति कथ्यते । तदेव परमाक्षर-मुखम् । ज्ञानमिदं महामुद्रासाधनेनावाप्यते । महामुद्रा 'विकल्पभावनातीता, परमाणु-धर्मतातीता, प्रतिसेनोपमा (आदर्श-बिस्बोपमा) सर्वाकारवरोपेता' इत्युपर्वाणतास्ति । ³ परमाक्षरज्ञानसिद्धिरलौकिको, योत्पत्तिक्रमोत्पन्तकमरूपेण द्विविधेत साधनेनावाप्यते, यदर्यं साधकाय विविधा अभिषेकाः प्रदीयन्ते। कालचक्रपरम्परायामेका-दशाभिषेका भवन्ति, येषां दश लौकिका एकादशश्च लोकोत्तरः। अनुत्तरयोगतन्त्रेषु सामान्यतस्त्रयोऽभिषेका लौकिकाश्चतुर्थरच लोकोत्तरः। लौकिका अभिषेका अकनिष्ठभुवनपर्यन्तं लौकिकसिद्धिप्रदायकाः। चतुर्याभिषेको लोकोत्तरः परमाक्षर-ज्ञानरूपामलौकिकसिद्धिमावहर्ति । लौकिकाः सिद्धयो मण्डलभावनादिभिरुपायै-रासाद्यन्ते, अथालौकिकसिद्धये महामुद्रासाधनं हेतुः। अत एवाभिषेकाः, साधनम्, परमाक्षरज्ञानिममे विषयास्तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमपटलेषु वर्णिताः क्रमेण ।

कालचकतन्त्रस्य पञ्चमु पटलेषु विभक्तं विषयविस्तरमधिकृत्य भोटपरम्परा बाह्मम्, अध्यात्मम्, अपरं चेति त्रिविधं कालचक्रमाचष्टे। ४ प्रथमो लोकधातुपटलो बाह्यं कालचक्रम्, द्वितीयोऽध्यात्मोऽध्यात्मं कालचक्रम् शेषोऽपरं कालचक्रम् । बाह्यमध्यात्मं चेति कालचक्रद्वयमुत्पत्त्युत्पन्नक्रमसंविभक्तस्य साधनस्याधारं शोधयति । अपरे काल-चकेऽभिषेकपूर्वञ्जमं साधनम्, साधनपूर्वञ्जमा हि परमाक्षरज्ञानसिद्धिः। अतस्तुतीये पटलेऽभिषेकः, चतुर्थे साधनास्यपटल उत्पत्तिक्रमभावनाभ्यासहेतुका लौकिकसिद्धयः, पञ्चमे ज्ञानपटले षडङ्गयोगरूप-उत्पन्नक्रमभावनाभ्यासहेतुका परमाक्षरज्ञानसिद्धिः

परमाण्धर्मतातीतां प्रतिसेनास्वरूपिणीम् । सर्वाकारवरोपेतां महामुद्राम् "" " ॥

प्रयमपटलटीकायां प्रारम्भक्लोकौ (क. १३, १५), वि॰ प्र॰, खण्डः १, पङ्क्तयः १३,१७,१८।

४. गेरो स्टृष्ट्य सोपा, "दि कालचक्र इतिशिएशन", व्हील ऑफ टाइम, सम्पा० गेरो ल्हुण्डुव सोपा, राजर जॅकसन, जॉन न्यूमन, स्नो छायन पब्लिकेशन्स, इवाका, न्यूयॉकं 2552 (2564), go 97 1

। रित्ययं विषयविस्तरः। षडङ्गो योगश्च यथा—प्रत्याहारः, घ्यानम्, प्राणायामः, घारणा, अनुस्मृतिः, समाधिश्च । यद्यपि गुह्यसमाजादिष्वनुत्तरयोगतन्त्रेषु पडङ्गोऽयं योग उपविणतोऽस्ति, कालचक्रस्य षडङ्गयोगस्तस्मात् क्वचित् क्वचिद् भिद्यते।

कालचकस्य पञ्चमे पटले २६१ श्लोकाः, ये चतुर्व महोहेशेष विभज्यन्ते। १. योगिनीतन्त्रादिस्फरणमहोहेशः, २. चतुःकायविशुद्धिनिर्णयमहोहेशः, ३. परमाक्षर-ज्ञानसिद्धिमहोहेशः, ४ नानोपायविनेयमहोहेशस्च । प्रथमपटलस्य द्वितीये तन्त्रदेश-नाख्य उहेशे टीकाकारः पुण्डरीकः परमादिवृद्धास्यस्य मुलतन्त्रस्य पञ्चानां पटलानां विषयानुपूर्वीमपस्थापयति ।

तत्र मुलतन्त्रस्य पञ्चमे पटले विशतिधा विषयप्रपञ्चः। र सोऽयं विषयप्रपञ्चः श्रीकालचक्र-लघुतन्त्रे समानः । स च विषयप्रपञ्चो यथा-

- १. शरीरास्थ्यादिधात्विशद्ध्या मण्डलविशद्धिः।
- २. काय-वाक्-चित्त-षट्कूलदेवताविश्द्धिः।
- ३. कादि-षड्वर्गपरिरचितानि षड्देवताकुलानि ।
- ४. कादि-षट्त्रिंशदक्षरसम्बद्धानि षट्त्रिंशत्प्रज्ञोपायतन्त्राणि ।
- ५. प्रज्ञोपायिकयायोगानुविद्धतन्त्र-महासंवरमण्डल-षट्चक्रवर्तिस्फरणम् ।
- ६. चतुर्थाभिषेकपरमाक्षरमहामुद्राज्ञानसिद्धिः।
- ७. ज्ञानमण्डलस्फरणम्।
- ८. बोधिचित्तसेवासाधनम्।
- ९. सर्वाकारज्ञानज्ञेयात्मिका महामुद्रासिद्धिः।
- १०. सर्वकायवाकचित्तकृत्यपरीक्षा ।
- ११. चतुरशीतिसहस्रधर्मस्कन्धदेशना ।
- १२. बुद्धक्षेत्रोपसंहारः।
- १३. आकाशधातौ सुमेरुपरमाणुरजःसमैबोधिसत्वैर्महासत्त्वैः साधं विहरणम् ।

१. चतुःकायः । शुद्ध-वर्म-संमोग-निर्माणा इति गर्मजस्य तुर्य-सुपुप्ति-स्वप्न-जाग्रदवस्या-लक्षणाः। ते च बुढानां निरावरणा इति (वि० प्र०, खण्डः १, प. २०)।

२. निर्माणसंभोगसुधर्मशुद्धं काद्यक्षरैः कायचतुष्कमुक्तम् । पञ्चमपटल-टीकायां मङ्गला-चरणक्लोकः ३, पृ. १।

३. विकल्पभावनातीतं महामुद्राक्षरं सुखम् ।

१. विस्तरेण विवरणार्थं द्र॰, डॅनिअल कोझटं, हाइएस्ट योग तन्त्र, अँन इष्ट्रोडक्शन टुदि एसोटेरिक वृद्धिज्म ऑफ टिवेट, स्नो लायन पब्लिकेशन्स, इयाका, न्यूयाँकं, १९८६, पू. १२३-१३१ ।

२. पुण्डरीक इमान् विषयविभागान् स्थानपदेन न निर्दिशति । तस्य मतेन इमे विषया भगवतः कालचक्रस्य स्वभावत्वेन स्थिताः । मोटपरम्परायां ते स्थानत्वेन निर्दिश्यन्ते (भो॰ ग्नस); निदर्शनार्थं द्र॰, कालचक्रविषये मि-फम-कृतो निवन्धः, खण्डो १,२, इन्युर जिङ्मे सुङ रव, खण्डः ५८, गङ्टोक, १९७१; कोङ स्प्रुल योन तन ग्यं म्छो, शे ज्य कुन स्थव म्जोद, खण्डः १, शे रव ग्यल्सन पॅलेस मोनास्टरी, गङ्टोक, १९८३, 9. 894-8901

१४. बुद्धक्षेत्रोत्पादः।

१५. बुद्धक्षेत्रे वज्राधिष्ठानम्।

१६. नानाधिमुक्तिकसत्त्वाशयवशेन धर्मदेशना ।

१७. रसरसायनादिशरीरसिद्धिसाधनम्।

१८. परमाक्षरसुखेन सर्वसत्त्वार्थकरणम्।

१९. धर्मसंग्रहो गणितसंज्ञासंग्रहश्च ।

२०. पञ्चाक्षर-पडक्षर-महाशून्य-बिन्दुशून्य-स्तुतिः।

पुण्डरीकप्रदत्तां मूलतन्त्रविषयसूचीमधिकृत्य निर्दिष्टा इमे विषयाः कालचक-लघुतन्त्र उपलभ्यन्ते। परं तत्रस्यः इलोकक्रम उपरिनिर्दिष्ट-विषय-क्रमात् ववचिद् भिद्यते।

पञ्चमपटलगतेषु २६१ रलोकेषु ९६ रलोकाः पुण्डरीकेण 'इमानि वृत्तानि सुबोधानि' इति निर्दिश्य न व्यास्थाताः, यद्यपि नैषा वास्तविकी स्थितिः । अन्तिमाः १३ रलोकाः (२४९–२६१) उपसंहाररूपाः, येषां विषयो मूलतन्त्रान्नोहृतः ।

तत्र परमाक्षरज्ञानसिद्धवास्यस्तृतीयः पटलः कञ्चिद् विशेषमावहति । पटलेऽस्मिन् एकमेव क्लोकम् (क्र. १२७) अधिकृत्य सुविस्तरा टीका विद्यते । टीकायाः प्रारम्भे पञ्चवाक्यसंबिलतं मङ्गलाचरणं यत्र वज्रसत्त्व-महामुद्रा-परमाक्षरसुख-गुरु-बृद्ध-बोधि-सत्त्व-क्रोधराज-वज्रडाक-वज्रडाकिनीभ्यो नमस्कृतिर्विहितास्ति । विमलप्रभायामेवंविधं मञ्जलाचरणं पटलस्यारम्भे विधीयते, न तु महोहेशस्य । अस्मिन् महोहेशे बौद्ध-बौद्धेतर-ग्रन्थेभ्यो बहुबोंऽका उद्भृताः सन्ति, येषु कालचक्रतन्त्रगता मञ्जूश्रीनामसंगीतिगताश्च विशेषेणोपलभ्यन्ते । अयं तु जिज्ञासाविषयो यत् कालचक्रन्तन्त्रटीकेयं तस्मादेव तन्त्रादु-द्धतान् श्लोकान् पूर्णांशेनोद्धरित, न च प्रतीकरूपेण । पूर्वं चतुर्ष पटलेषु टीकायां नैकवारं निर्दिष्टमस्ति यत् (अमुकविषयमधिकृत्य) पञ्चमे पटले परमाक्षरज्ञानसिद्धौ वक्तव्य-मिति (द्र॰, वि॰ प्र॰ १. २३, ४४, १४१, १६१; २.१०४) । तं निर्देशमनुसृत्य परमा-क्षरज्ञानसिद्धौ तेषां तेषां विषयाणां विस्तरेण व्याख्यानमुपलभ्यते । अत्र मञ्जूश्रीनाम-संगीतेर्ने के श्लोकाः स्तव-श्लोकसंस्यानिर्देशपूर्वकमृद्धताः सन्ति । ग्रन्थस्यास्य काल-चक्रेण कोऽपि दृढः सम्बन्धः प्रतीयते । भोटित्रिपिटकस्य देगेंसंस्करणे कन्त्युरलण्डस्य तन्त्रविभागे प्रथमो ग्रन्थो मञ्जुश्रीनामसंगीतिः, तत ऊर्ध्वं कालचक्रग्रन्थाः सन्ति । पुण्डरीकेणापि परमादिवृद्ध-नामसंगीत्योः सम्बन्ध एवं प्रतिपादितोऽस्ति—"अतो ये परमादिबुद्धं न जानिन्त, ते नामसंगीति न जानिन्त; ये नामसंगीति न जानिन्त, ते वच्चघरज्ञानकार्यं न जानन्ति; ये वच्चघरज्ञानकार्यं न जानन्ति, ते मन्त्रयानं न जानन्ति; ये मन्त्रयानं न जानन्ति, ते संसारिणः सर्वे बच्चधरभगवतो मार्गरहिताः"। श्रूष्टमे पटले द्वितीये तन्त्रदेशनोहेशे विमलप्रभाकारः परमादिवुद्धं 'नामसंगीत्याऽलिङ्गितम्' इति पदेन निर्दिशति । इत्येवं ग्रन्थयोरनयोः परस्परं सम्बन्धः प्रदर्शयितं श्रन्थते ।

अपरोऽपि कश्चिद् विशेषोऽस्याः पश्चमपटळटोकायाः प्रकटियतव्यः । तत्र स्राधरा-वृत्तानिबद्धौ द्वौ श्लोकानुद्धृतौ (पृ॰ ९५, ९८), यो टोकाकारमतेन कालचक्रतत्त्रस्य पश्चमे पटले क्रमेण द्वयशीत्यधिकशततमः सप्तत्यधिकशततमश्च स्तः । श्लोकाविमौ तन्त्रैऽस्मिन्नोपळभ्येते । वृस्तोन-महोदयोऽपि स्वीयायां विमलप्रभापिक्षकायामेतच्छ्लोक-व्याख्यानावसरे निर्दिशति यत् श्लोकाविमौ साम्प्रतिकतन्त्रैषु नोपलभ्येते इति । विनत्येऽस्मिन् विषये सम्प्रति कोऽपि तर्क उपस्थापित् न शक्यते । तत्रान्येऽपि नैके श्लोका उद्धृताः सन्ति, येषां स्रोतो नाद्यापि दृष्टिपथमागतम् ।

पञ्चमपटले चतुर्षे नानोपायिननेयमहोहेशे टोकायां ज्योतिष-रसरसायनादि-विषयानिषकुत्य विवेचनमुपलभ्यते। लौकिकालौकिकसिदिहेतोर्मनित्रणा ततुरादौ संरक्षणीयेति कालचके (२.१०७) निर्दिष्टपूर्वम्। अत्र पश्चमे पटले चतुर्थपटलगतं इलोकम् (४.२२४) उद्धृत्य टीकायां रसबोधिचित्तयोः साधम्यमुपवणितम्। तदित्यम्— "इह यथाग्निस्पर्शात् सूतकः प्रपलायित, सोपायेन तेनैवाग्निना बध्यते, तथा धर्मोदय-स्पर्शाद् बोधिचित्तं प्रपलायित, सोपायेन तेनैव बध्यते"। असर्वेज्योमे विषया अधिक-तरमन्वेषणमहीन्ति।

प्रस्तुतखण्डप्रकाशतेन स्वर्गीय-प्रोश-जगन्नाथ-उपाध्याय-संकल्पितो विमलप्रभा-प्रकल्पोऽयं पूर्णतां यास्यति । वयं स्वीयाः पिरसीमाः प्रस्तुतसंस्करणोपसृष्टांश्च दोषान् स्फुटं विद्यः । विमलप्रभाप्रस्तावनारूपः कालचक्रविस्ताराध्ययनसंबलितो ग्रन्थ-विद्येषः सम्पादयितव्य इत्यस्ति नो मनीया । आगामिनि काले विमलप्रभाया द्वितीयं परिष्कृतं च संस्करणं प्रकाश्येतेत्याशास्मह इति शम् ।

सम्पादकाः

१. कालकिवयानुपूर्व्या अधिकविवरणार्थं द्र०, जॉन न्यूमन, उपरिनिर्दिष्टे ग्रन्थे, पू. ९६; विवाकोमेला क्षोरोफिनो, सेकोहेश, ए क्रिटिकल एडिशन आंफ वि टिवेटन ट्रान्सलेशन्स, वेरी जीरिएण्टाल रोमा LXXII, इस्मेंओ, रोम, १९९५, पू. १४।

१. वि॰ प्र॰, खण्डः १, प्. ५२।

२. बुस्तोनकृता विमलप्रभापाञ्जका, दि कलेक्टेड वससं आंफ बुस्तोन, सम्पा॰ लोकेसक्दः इण्टरनॅशनल अकादिमी ऑफ इण्डियन कल्चर, न्यू दिल्ली, १९६५, पृ, १९६, पङ्क्तिः

५; पू. २०४, पङ्क्तिः ४।
 ३. वि० प्र०, सण्डः १, पू. ६ (क्लोको ४६,
 ४९), पङ्क्तपः ४-७।

PREFACE

The present edition is the third and the last volume of a critical edition of the $\it Vimala prabha$ ($\it VP$), comprising the commentary on the fifth, i.e, the Jianapatala of the Kalacakra Tantra (KT). The edition is based mainly on a unique manuscript, designated in the present edition as Ca, containing almost a complete text of the VP, deposited in the Asiatic Society, Calcutta (MS No. 10766),1 Another manuscript, designated as Ga, is deposited in the National Archives, Kathmandu (C. No. 5-240; V. No. 9; NGMPP Micro-film reel No. A 48/1).2 This manuscript has, after the end of the commentary on the fourth Patala, the portion covering the commentary on the first 46 verses of the fifth Putala. The manuscript deposited in the Asiatic Society is a palm-leaf manuscript written in Bengali characters of the late part of the 10th cent. A. D. The manuscript was copied on the 29th day of Asadha in the 39th regnal year of Harivarman, a king of Bengal, who reigned probably during the latter half of the eleventh to the first half of the twelfth century A. D.3 Referring to the description of this manuscript given by M. M. Hara Prasad Shastri, and on the basis of the colophon of the manuscript, and the astronomical data in the text, R. C. Majumdar identifies the date of the manuscript as 1119 A.D.4 The manuscript is invaluable, for it is the oldest manuscript, copied within a century after the composition of the VPs and is therefore supposed to be closer to the original manuscript.

The final aim of the KT, like that of other Anullaroyoga tantras, is the accomplishment of the Buddhahood during this human life. All qualities of Buddhahood are characterised by the four bodies of a Buddha-Emanation-body (nirmānakāya), Enjoyment-body (Sambhogakāya), Dharma-body (dharmakaya) and Pure (suddha-) or innately produced body (sahajakāya). These bodies possess the characteristics of the four states-waking (jagrat), dream (stapna), deep sleep (susupti) and the fourth (turya) and are, in the case of a Buddha, free from all obscurations (niravarana).1 The four letters of the word kalacakra symbolize these four bodies.2 This state of Buddhahood is the transformation of the practitioner into a Buddha, the istadevata, in this case, Kālacakra. This state of Buddhahood is the supreme unchanging bliss (paramāks arasukha) which is also the supreme unchanging gnosis (paramaksarajnana). This gnosis is obtained by the practice of Mahamudra. The accomplishment of Mahāmudrā is beyond conceptual meditation, is beyond the reality of particles, has the nature of a mirror-image and is endowed with the best of all aspects.3 The accomplishment of the supreme unchanging gnosis is the highest, supermundane (alaukika) siddhi. It is to be accomplished by the practice (sadhana) consisting in two stages-the stage of generation (utpattikrama) and the stage of completion (utpanna or nispannakrama) for which the practitioner is empowered by various initiations (abhiseka). In the Kalacakra tradition. there are eleven initiations, the first ten of which are the mundane (laukika) initiations and the last one, the supermundane (alaukika). According to the usual classification in the Anuttarayoga tantras, the mundane initiations are in all three; therefore, the supermundane one is called 'the fourth' (caturtha). The mundane initiations lead to the accomplishment of the mundane siddhis, up to the limit of the attainment of the Akanistha abode, while the supermundane initiation is instrumental in accomplishing the supermundane siddhi, the supreme unchanging gnosis. The mundane siddhis are obtained by the mandala and other practices and

2. nirmana-sambhoga-sudharma-suddham

kādyakṣaraiḥ kāyacatuṣkam uktam | Benedictory verse 3, VP on Paṭala V; Vol. III, p. 1.

3. ข่ะkalpabhāvanāttlam mahāmudrākṣaram sukham | paramāṇudharmatāttlām pratisenāsvarūpiņtm | sarvākāravaropetām mahāmudrām Introductory verses (nos. 13ab, 15), VP, Vol. I, p. 2, lines 13, 17, 18.

M. M. Hara Prasad Shastri (ed.), A Descriptive Catalogue of Sanscrit Manuscripts in the Government Collection under the care of the Asiatic Society of Bengal, Vol. I, Buddhist Manuscripts, Calcutta, 1917, pp. 79-82.

VP, Vol. I, p. xxix; Mitotushi Moriguchi (ed.), A Catalogue of the Buddhist Tantric Manuscripts in the National Archives of Nepal and Kesar Library, Sankibou Busshorin, Tokyo, 1989, Ser. No. 98, p. 26.

According to Shastri, he reigned during the last half of the 10th century A. D., op. cit., p. 80.

R. C. Majumdar, History of Bengal, G. Bharadwaj & Co., Calcutta, 1971, p. 216 (n. 31).

^{5.} For the date of the KT and the VP, see, John Newman, "The Paramādibuddha (the Kālacakra Mālatantra) and its relation to the early Kālacakra literature", Indo-Iranian Journal XXX (2), 1987, p. 100.

catuḥkāŋāḥ | śuddha-dharma-sambhoga-nirmāŋā iti garbhajasya turyasuṣuḥti-svaḥna-jāgrad-arasthālakṣaŋāḥ | te ca buddhānām nirāvaraŋā iti | VP, Vol. I. p. 20.

the supermundane siddh is obtained by the practice of Mahamudra. The initiation, the practice and the final result, i.e., the supreme unchanging gnosis, are the subjects of the third, the fourth and the fifth Patalas respectively.

In connection with the contents of the five Patalas of the KT, the Tibetan tradition speaks of the three Kalacakras: the Outer Kalacakra (*bāhya, Tib. phyi'i dus 'khor), the Inner Kalacakra (*adhyātma, Tib. nang gi dus 'khor) and the Other Kalacakra (*apara, Tib. gzhan gi dus 'khor).1 The first Patala describing 'the world realm' (lokadhatu) is the Outer Kālacakra, The second, describing 'the inner (world)' (adhyatma), is the Inner Kalacakra, and the remaining three chapters comprise the Other Kalacakra. The Outer and the Inner Kalacakras are the bases to be purified by the third, i. e., the Other Kalacakra, describing the stage of generation and the stage of completion. The third chapter describes the initiation which precedes the practice. The fourth chapter describing the mundane siddhis through the practice (sadhana) describes the stage of generation and precedes the fifth chapter which describes the stage of completion consisting of the six-limbed yoga (sadanga-yoga). The six limbs of the yoga are: 'collection' (pratyāhāra), 'absorption' (dhyāna), 'wind control' (pranayama), 'retention' (dharana), 'mindfulness' (anusmṛti) and 'enrapture' (samādhi). The six-limbed yoga is also described in other Anuttarayoga tantras, such as the Guhyasamaja; but the yoga of the KT differs from that on certain points.24

The fifth chapter of the K Γ has 261 verses. The VP divides them into four Mahoddefas:

- 1. Toginitantradispharana 'Emission of the Toginitantra and others'
- Catuḥkāyaviiuddhinirŋaya 'Consideration of the purification of the four bodies (of a Buddha)'
- Paramākṣarajñānasiddhi 'Accomplishment of the supreme unchanging gnosis.'
- 4. Nanopayavineya 'Instructions (?) into various methods.'

 Geshe Lhundub Sopa, "The Kalacakra Tantra Initiation", in The Wheel of Time, ed. Geshe Lhundub Sopa, Roger Jackson and John Newman, Snow Lion Publications, Ithaca, New York, 1991 (1985), p. 93; Glenn H. Mullin, The Practice of Kalacakra, Snow Lion Publications, Ithaca, New York, 1991, pp. 168, 208.

2. For a detailed discussion, see, Daniel Cozort, Highest Yoga Tantra,
An Introduction to the Esoteric Buddhism of Tibet, Snow Lion Publications, Ithaca, New York, 1986.

In the second uddeia of the first Paţala, describing 'the teaching of the Tantra' (tantradeianā), Puṇḍarīka, the commentator, gives the outline of the contents of the five Paṭalas of the Mālatantra, i. e., the Paramādi-buddha. The fifth Paṭala of that work has twenty topics (*stkāna, Tib. gnar).\(^1\) These topics are similar to those occurring in the present text of the KT. The topics are:

- Purification of the rajomandala by way of purifying the bodymandala consisting in bones, elements etc.
- Purification of the deities of body, mind and speech and six families of deities.
- Six deity families corresponding to the six groups of consonants beginning with that of Ka.
- The thirty-six wisdom and method tantras corresponding to the thirty-six letters beginning with Ka.
- Emission of the wisdom tantras, method tantras, Krijā tantras. Yogānuviddha tantras, mahāsamvaramandala and six cahravartins.
- The Fourth initiation; accomplishment of the supreme unchanging gnosis of Mohamudra.
- 7. Emission of the gnosis-mandala.
- 8. Practice of serving the bodhicitta.
- Accomplishment of Muhāmudrā which is endowed with all aspects of knowledge and knowables.
- 10. Investigation into all functions of body, speech and mind.
- 11. Teaching of eighty-four thousand aggragates of Dharma.
- 12. Dissolution of the Buddha-field.
- Wandering in the space with the Bodhisattvas, the mahāsattvas, equalling the particles of Sumeru.
- 14. Evolution of Buddha-field.
- 15. Blessing the Buddha-field as Vajra,

Cations, Ithaca, New York, 1986, pp. 123-131 Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

Pundartka does not mention the contents as sthanas. According to him, these contents are the nature of the Lord Kalacakra. According to the Tibetan tradition, these are the "topics" ("sthana, Tib. gnas); see, e.g., Mipham on the Kalacakra, Vols. I. & II, sNga-'gyur rnying-ma'i gsung-rab, Vol, 58, Gangtok, 1971; Kong-sprul yon-tan rgya-mtsho, Shes-bya kun-khyab-mdzod, Vol. I, Sherab Gyaltsen Palace Monastery, Gangtok, 1983, pp. 496-497.

- 16. Teaching of Dharma according to the dispositions of beings having various inclinations.
- 17. Accomplishment of bodily siddhis through quicksilver, alchemy and so forth-
- 18. Working for the purpose of all sentient beings through the supreme unchanging bliss.
- 19. Treatise on Dharma, mathematical terms.
- 20. Praise of Pañcakṣara, ṣaḍakṣara, Mahaśūnya and Binduśūnya.

These topics, based on the list of contents of the Mülatantra given by Pundarika, are found in the KT, but the order of the verses is not exactly in accordance with that of the topics mentioned above.

Out of 261 verses of the KT, there are in all 96 verses that have not been commented upon by Pundarika, saying that they are easy to understand, though it is not the case. The last 13 verses (249-261) form a sort of epilogue, the contents of which are obviously not based on the Milatantra.

Of special interest is perhaps the third Mahoddesa discussing the Paramaksarajñanasiddhi. This is a long commentary on a single verse 127. The section begins with five salutations to Vajrasattya, Mahāmudrā, Paramākṣarasukha, Guru, Buddha and Bodhisattvas, Krodharājas, Vajradaka and Vajradakinis. Ordinarily such benedictions occur in the beginning of a Potala and not a section. This section quotes passages extensively from various texts, Buddhist and non-Buddhist as well, especially the KT and the Monjuirt-namasangtti (MNS). It is curious to know that it quotes verses from the KT in full extent. Ordinarily, the passages from the root text are quoted by pratikas in the commentary. In the first four P atalas, we come accross the statements that a particular topic will be discussed in detail in the fifth patala, especially in the section on the Paramakşarajñānariddhi (see e.g., VP I. pp. 23, 55, 141, 161; II. 104). Accordingly, The present section discusses the topics that have been mentioned in brief in the former chapters. It quotes verses from the MNS with specific mention of chapters and numbers of verses. This shows a close relation between the MNS and the KT. It may be pointed out here that the Tantra Section (rGyud) of the Kanjur in the Derge edition begins with the MNS, immediately followed by the Kālacakra texts. Punḍarika describes the relation between the Paramādibudhā and the Nāmasahstii in the following words: "Those who do not know Paramādibudhā, do not know Nāmasahstii; those who do not know Nāmasahstii, do not know the gnosis-body of Vajradhara, those who do not know the gnosis-body of Vajradhara, do not know the Mantrayāna; those who do not know the Mantrayāna, they are all attached to the mundane existence (and) separate from the path of the Lord Vajradhara." At the outset, the VP describes the Adibudhā as 'one embraced by Nāmasahstii' (nāmasahstiya'lingitam, VP I, p. 12). These statements point to the affinity between these two texts.

One more point to be noted is that this section quotes in full two verses in the Sraghharā metre, said to be the verses 182 and 170 from the fifth Paļala of the Tantrarāja, i e., the KT. These verses are not found in the present text of the KT. Bu-ston also points out their omission in the present Kalacakra texts.² It is not possible to make any conjecture in this matter at this stage.

There are many other verses quoted throughout the commentary on the fifth Paṭala, the sources of which are yet to be traced.

The fourth section, dealing with instructions into various methods, includes data on astrology, alchemy and kindred topics. It has been stated in the KT (II. 107) that the practitioner, possessing mantra, should first protect his own body in order to accomplish the mundane and supermundane siddhis (VP I, p. 228). In the present text, the analogy between the binding of quicksilver and protecting the bidhicitta is established: "With the touch of fire, quicksilver runs away; but is bound by the same fire, endowed with method, Similarly, the bodhicitta escapes with the touch of dharmodays;

I. For more discussion on the order of topics in the KT, see John Newman, op. cit., p. 96; Giacomella Orofino, Sekoddeśa, A Critical Edition of the Tibetan Translations, Serie Orientale Roma LXXII, IsMEO, Rome, 1994, p. 14.

 ^{...} ye paramādibuddham na jānanti, te nāmasangītim na jānanti]ye nāmasangītim na jānanti, te vajradharajñānakāyam na jānanti [ye vajradharajñānakāyam na jānanti, te mantrayānam na jānanti [ye mantrayānam na jānanti, te samsāriņah sarve vajradharabhagavato mārgarahitāh]
 VP, Vol. I, p. 52.

Bu-ston's annotations on the VP, The Collected Works of Buston, ed. Lokesh Chandra, International Academy of Indian Culture, New Delhi, 1965, p. 196, 1.5; p. 204, 1.4.

but is bound by the same, endowed with method. All these topics need further investigation.

The present volume marks the completion of the Vimalaprabhā Project undertaken by the late Prof. Jagannath Upadhyaya. We are aware of our limitations and shortcomings in the present edition. We intend to bring out a separate volume which would serve as an introduction to the Vimalaprabhā and include a detailed study of the Kalacakra. We hope that a second and revised edition of the VP will also be brought out in future,

Editors

1. iha yatha'gnispariat sütakah prapalayati, sophyena tenaiva'gnind badhyate, talha dharmodayaspariad boʻshicittasis prapalayati, sophyens tenaiva badhyate | VP. Vol. III, p. 81. Səə also, VP, Vol. I. p. 6 (varsos

विषय-सूची

प्रकाशकीय	
हिन्दो	4-8
तिब्बती	19-6
अंग्रे जी	१०-१२
पुरोवाक्	23-20
Preface	१८-२१
ज्ञानपढलः पञ्चमः	१-१५
१. योगिनीतन्त्रादिस्फरणमहोद्देशः	१-४
२. चतुःकायादिशुद्धिनिर्णयमहोद्देशः	४५-५
३. परमाक्षरज्ञानसिद्धिनीम महोद्देशः	€0-80
४. नानोपायविनेयमहोद्देशः	१०३-१५
कालचकतन्त्रदलोकार्धानुकमणी	१५७-१८
ग्रन्थ-प्रन्थकार-मत-मतान्तरानुक्रमणी*	१८७-१९
सङ्केतमुची	१९
विम्लप्रभागतवचनानकम्गो*	१९२-२०

अस्यामनुक्रमण्याम् I, II, III इति चिन्नुः विमलप्रभायाः प्रवमः, द्वितीयः, तृतीयश्च खण्डो निर्दिष्टः । ततोऽनन्तरं पृष्ठसंख्या निर्दिष्टाऽस्ति ।



कालचक्र



Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

५. ज्ञानपटलः पश्चमः

(१) योगिनोतन्त्रादिस्फरणमहोद्देशः

1[169a3]

॥ ³नमः श्रीकालचक्राय ॥

येनाकृष्य मनोभवः स्वकुलिशान्नीतो ललाटं स्वकं प्रज्ञाज्ञानबलेन शाक्यमुनिना वच्चं महोष्णीषकम्। सालम्बाऽनणुशून्यता सुकरुणाऽनालम्बिनी यस्य वै तस्मै देवनरासुराहिगुरवे विश्वैकशास्त्रे नमः॥

कारणं लक्षणं नास्ति चलो नास्ति क्रमस्तथा। कालचकाभिधानेन यस्य नत्वा तमद्वयम्॥

निर्माणसम्भोगसुधर्मशृद्धं काद्यक्षरैः कायचतुष्कमुक्तम् । यस्यादिबुद्धस्य निरन्वयस्य ^३तथागतं तं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥

श्रीज्ञानपटले टीका मञ्जुश्रीचोदितेन वै। लिख्यते पुण्डरीकेण सुगतव्याकृतेन च॥ मया निर्मितकायेन लोकेशेनाब्जधारिणा। ऋषीणां सर्वसत्त्वानां पुण्यज्ञानफलाप्तये॥

इह श्रीमित कलापग्रामदक्षिणमलयोद्याने श्रीकालचक्रमण्डलगृहपूर्वद्वारावसाने रत्नमण्डपे महामणिरत्नसिंहासनस्थो यशोनरेन्द्रो मञ्जुश्रीनिर्मितकायो ब्रह्मिष्सूर्य-रथाध्येषित: परमादिबुद्धाज्ज्ञानपटले सुचन्द्राध्येषणं तथागतप्रतिवचनं प्रथमवृत्तेनाह—

किञ्चिज्ज्ञातं हि भर्तुजिनवरसिहतं साधनं यत्त्वयोक्तं भूयोऽहं श्रोतुकामस्त्रिदशनरगुरो मण्डलं धातुभेदैः। बुद्धानां षट्कुलानि त्वलिकलिषु गतान्येव षड् योगिनीनां श्रुत्वा सौचन्द्रवाक्यं गदित जिनपित धातुभिर्मण्डलाद्यम् ।।१।।

इह प्रथमवृत्तेनादिबुद्धात् सुचन्द्राध्येषणं तथागतप्रतिवचनमर्थशरणतया संगीतं मञ्जुश्रिया, तदेव टीकया वितन्यते—िकञ्चिदित्यादि । इह ^१साधनपटले **यःद्र्तुः साधनं**

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

T 414

5

10

15

20

१. अतः परं च मातृकायाः पत्रसंख्या दीयते । २. ग. च. 'नमः श्रीकालचक्राय' नास्ति । ३. ग. च तथागतैस्तं । ४. भो. Khams Kyi dBye Bas (घतिभेदैः)। ५. ग. भो. इति । ६. च. साधना।

पटले, १-४ इलो.]

10

15

20

T 415

25

तथागतसहितं कालचकस्य यत् स्वयोक्तं हे विद्यानरगुरो शावय भूने ! तत्किब्बित् मया तथागतसहितं कालचकस्य यत् स्वयोक्तं हे विद्यानरगुरो शावय भैनेदिरित, अस्थ्यादिजातम् । तस्माद् भूयोऽहं श्रोतुकासः कालचकमण्डलं शरीरे धातुभेदिरित, अस्थ्यादिजात्विष् । तस्माद् भूयोऽहं श्रोतुकासः, कालचकमण्डलं श्रोतुकासः, या न्याविकिलिषु
धातुविशुद्धिभिरित । अस्य म्वाति, ककारादिव्यञ्जनेषु गतानीति वश्यमाणानि, एवं यह योगिनीनामिति । यथा पट्कन्धानां पट् कुलानि तथा पड्धात्नामिष
भाषानि, एवं यह योगिनीनामिति । यथा पट्कन्धानां पट् कुलानि तथा पड्धात्नामिष
भाषाकि एवं यह योगिनीनामिति । यथा पट्कन्धानां पद् कुलानि तथा पड्धात्नामिष
भाषानित् पद्कुलादिकं वश्यमाण[म्] । इति देशकाध्येषकसम्बन्धः । अस्मिन्
वृत्ते पादत्रयोण मुचन्द्राध्येषणम्, चतुर्थपादमारभ्य यावत् पटळपरिसमाप्तिस्तावत् तथागतप्रतिवचनम् । पुनरध्येषणा नास्ति [इति] अस्मिन् तन्त्रे नियमः ॥ १ ॥

इदानी धातुविशुद्ध्या मण्डलविशुद्धिरुच्यते—
स्तम्भान् वच्यावली वै कुरु महिवलयं भित्तिमेवास्थिभिश्च
मांसासृक्तोयविड्भिः सुरयमधनदे चापरे रङ्गपातम् ।
पित्तेन क्लेष्मणाकं शशिनमपि तथा स्नायुभिस्तोयजानि
पञ्चप्राकाररेखाः क्षितिजलहृतभुङमारुताकाशजाभिः ।।२।।

15

स्तम्भानित्यादि । इह शरीरास्थिभः शरीरे कायमण्डले स्तम्भान् कुरु इति
कल्पनया । एवं बज्रावलीं पृथ्वीवलयं भित्तिमपि, अस्थिभः कुविति वृत्तत्रये
सम्बन्धः । अनया विगुद्धयाऽस्थिच्णदिकं प्रक्षिपेद् रजोमध्ये । मांसामुक्तोयविद्धिभिरिति,
मांसिवशुद्धवा सुरे पूर्व रङ्गपातः, रक्तिवशुद्धवा 'यमे दक्षिणे रङ्गपातः, तोयविशुद्धवा
उत्तरे यनदे रङ्गपातः, विद्विशुद्धवाऽपरे पिरचमे रङ्गपात 'इति । मध्ये शुक्रविशुद्धवा
रङ्गपातः । यत्र पक्ठो रजस्तत्र रजोविशुद्धवा रङ्गपात इति । एवं तथागतमांसादिविशुद्धवा
ययाक्रमममोधो रत्नेशोऽमिताभो वैरोचनोऽसोभ्यो वच्चसत्त्वदचित पट् । पित्तेनीति
पित्तथातुना अक्रीसनानि ? इलेडमधातुना चन्द्रासनानीति । अक्रै शक्तिनमिष ।
सन्तपुमिस्तोयज्ञानि चन्द्रादित्यासनतले । पञ्चप्रकाररेखा इति । प्रथमरेखा क्षितिजया
अङ्गुटिवशुद्धवा, द्वितीया तौयज्ञया तर्जनीविशुद्धवा, नृतीया बङ्कि जया मध्यमाविशुद्धवा, चतुर्थी वाषुजया अनामिकाविशुद्धवा, पञ्चम्याकाशजया कनिष्ठाविशुद्धवित । एवं पञ्चप्राकाररेखाः कुरु रजोमण्डले इति ॥ २ ॥

भर्त्रज्ञं कालताड्या चलिशिखिवलयाद्यं च चर्मादिभिश्च अर्केंद्वाराणि रन्ध्रैर्मणिमयरचनां दन्तपङ्क्त्या तथैव । चकाण्यष्टी श्मशाने चलवलयगतान्यङ्गुलोनां नखैश्च वर्ज्ञाचिलोंमभिर्वे दिशिविदिशिगतैर्मण्डलस्यावसाने ॥३॥

भत्रंकं कालनाङ्येति । अवधूत्या नायकस्य पद्मं विशुद्धम्, शेषाणि ललनादिभिरिति द्वाससितसहलपर्यन्तैः स्नायुभिरिति नियमः। चलिश्वास्त्रिक्तयाद्यं चर्मादिभिश्चेति । इह वायुवलयं चर्माभिः, अग्निवलयं 'रक्तोष्णधातुना, उदकवलयं प्रस्वेदेन । अकंद्वाराणीति द्वादशद्वाराणि द्वादशरुद्धः। अग्नेत्र हे, प्राणं हे, नेत्रे हे, मुखे एकम्, "मूत्रविद्वश्चकरप्राणि श्रीणि, स्तनद्वये हे—एवं द्वादश रुप्त्राणि रजोगण्डले कुरु द्वादशरप्र्य-वशुद्धस्त्राति । मणिमयरचना या मण्डले हारादिका या(तां) दत्त्वरङ्कत्या कुरु । चक्का-व्याद्धां सम्भाने यानि तान्यङ्गुलोनां नखैरचेति हस्तपादनखविशुद्धया कुरु । चर्णाच्छलमानिक्तं इति । वाह्यवज्यावलीं वज्जन्वालालोमिनः कुरु । विशिवविविधागतैलॉमिनं संग्डलस्यावसाने वर्जाविः ॥ ३ ॥

एवं वै कायवज्ञं वरविविधगुणं मण्डलाकारमुक्तं वाम्बज्ञं चादिकाद्यं सकलजिनकुलैदेवताकारमेव । षट्शून्यैश्चित्तवज्ञं त्रिविधमवगतं नायकाकारमेक-मेवं वै ज्ञानवज्ञं भवभयमथनं विश्वमातृस्वरूपम् ॥४॥

एवं वे कायवच्यं पड्धात्वात्मकम्, वरविविधगुणं पृथिव्यादिमेदैः, मण्डलाकारमुक्तमिति मण्डलित्यमः । इदानीं देवतागणिवशुद्धिरूयते—वाग्वच्छमित्यादि । इहा[170a]दिकाद्यं स्वरव्यञ्जनात्मकम्, वाग्वच्यं स्वरव्यञ्जनपरिणतं देवतागणम्, सकलजिनकुतैः सार्थम् । तेन वाग्वच्यं देवताकारमेवोक्तम् । तदेव रजोमण्डले देवताकारं कुरु
इति । षट्शून्येश्चित्तवव्यमिति चशुर्विज्ञानं श्रोत्रविज्ञानं प्राणविज्ञानं जिह्वाविज्ञानं भ्रोत्रविज्ञानं प्राणविज्ञानं जिह्वाविज्ञानं भ्राविज्ञानं विद्यापि नायकाकारमेकं कुरु । एवं वे नानवच्यं
प्राह्यचित्तं त्रिविध्यभ्यतातं सर्वव्यापि नायकाकारमेकं कुरु । एवं वे नानवच्यं
प्राह्यचित्तं त्रिविध्यन्यतातं सर्वव्यापि नायकाकारमेकं कुरु । एवं वे नानवच्यं
प्राह्यचित्तं त्रिविध्यन्यतातं सर्वव्यापि नायकाकारमेकं कुरु । एवं वे नानवच्यं
प्राह्यचित्तं त्रिविध्यन्यतां विश्वमातृत्वस्यं श्रात्यताविन्यं स्वभयमयनं सर्वकल्पनाविनिर्मुक्तम् । प्रज्ञां 'कुरु मण्डले नायिकामिति । एवं शरीरे कायवाक्चित्तन्नानधातवः,
बाह्यं मण्डलं देवतागणो नायको नायिका चेति संवृत्या, विवृत्या निर्माणं सम्भोगं धर्मं
सहजमिति सिद्धम् ॥ ४ ॥

१. ग. मूनि । २. मो. बालिकालियु । ३. मो. Khams Kyi dBye Bas (घातु-मेदैः)। ४. ग. 'कल्पनया' नास्ति । ५. ग. यामे । ६. मो. 'इति' नास्ति । ७. म. नादिति ।

१. ग. रक्तकृष्ण । २. च. गुद । ३. च. विशुद्धं । ४. ग. भगवता । ५. ग. प्राह्मं । ६. ग. कुरु इति । एवं षट्शून्यैंदिचत्तवष्यमिति ।

इदानी पणन्त्रकुलान्युच्यन्ते— वर्गाणां कादिषण्णां कमपरिरचितानां कुलानि कमेण वज्जासी रत्नचक्षं जलजमित तथा कितका वै जिनानाम् । भूयश्चैकेकवर्गः सकलजिनवरैभिद्यते पञ्चभेदैः प्रत्येकं वर्णभेदात् क्षितिजलहुतभुङ्मारुताकाशभावात् ।।५।।

वर्गाणामित्यादि । इह कादयः षड्वगः क च ट त प 'शा इति, तेषां वर्गाणां कादिवणणां कमयिरिवतानां कुलानि षड् जिनानां वच्चादिचिह्नानीति । तत्र वच्चं कवांकुल्यं असिश्चवगंकुलं, रत्नं टवगंकुलं चक्रं तवर्गकुलं जलजमिप पवगंकुलं तथा कितिका 'शवर्गकुलंम, वे एकान्तमिति वांकुलनियमः । भूयव्यक्रैकवर्गः सकलजिन-वर्दिमशते 'थळच्यवेदिति । इह यत्रेकं तत्र पञ्चकुलानि समुदयसत्येन भवन्ति । तेन तेव्यंवहारो लेकिकसिद्धये । अतश्चेकेको वर्गः प्रत्येकं वर्णभेदात् क्षितिभावाज्जल-भावाद् हुतभूभावान्मावतभावादाकाक्षभावाद् भियते पञ्चधा वर्गः । प्रत्येक'मिति क ख ग ष ङ इति ॥ ५॥

एवं चादयः संहारक्रमेण पठिताः प्रत्याहारपाठेन पुनर्ङादयः सृष्टिक्रमेणा-काशादिना पठिता इति "तेऽयुच्यन्ते---

आदौ शून्यप्रभेदास्त्विष ङ ल ण म ना ां कस्तथादिस्वरङ्च वायोभेदिस्त्विकारस्तु घझढभ घशा विह्निभेदास्त्वगाद्याः । अम्मोभेदोऽप्युकारः ं ष छ ठफथवा भूमिभेदे लृकाद्या एवं पञ्चप्रकारैः परमजिनकुलैः कादिवर्गा विभिन्नाः ॥६॥

आदावित्यादि । इहाबी तावच्छून्यस्विष इ ज ण म नास्तथा र्कः । 'अपि चाविस्वरःचेत्यकारः । ''तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते' इति परिभाषया हकारोऽ प्याकाशमेद इति सिद्धः । एवं वायोर्भेदस्त्विकारो घ स ढ भ घ ज्ञा यकारश्चेति । चह्नें; ''ऋग ज ड व द पा र इति, तोयस्य उ ख छ ठ फ थ र्र्पा व इति, भूमेः छ क च ट प त सा ल इति । एवं पञ्चप्रकारेः परमजिनकुलैः कादिवर्गा विभिन्ता इति वक्सखङ्गरनपदाचक्रकुॐस्ताक्षराणि आदीनि चेदितव्यानीति नियमः ॥ ६ ॥

20

25

इदानोमुष्णीषकुलान्युच्यन्ते— उष्णीष पञ्चशून्यं त्रिकुलमपि तथा कायवाक्चित्तवच्य-माद्या मुद्राकुलं वे हयरवलयुताः कादिवर्गाः समस्ताः ।

१. मो. स. १२. च. भो. स. १३. च. प्रव्यमिरिति । ४. भो. lTar (इव) । ५. च. तेनोच्यते । ६. भो. 'अपि' नास्ति । ७. च. 'ऋ' नास्ति । लोकालोकं समात्रा हयरवलयुता लोकलोकोत्तरं च काद्या विद्याधरेन्द्रं भवति हि सकलं चाष्टकुटस्थवर्गाः ॥७॥

उल्लोपिमत्यादि । इह महोल्लीपकुळं महद् यत्तत् पञ्चसूम्यं लोकघातुपटळे उवतम् । त्रिकुळं कायवाक्चित्तवच्यम् ॐ बाः हमिति । बाणा इति व इ कृ उ द । मुद्राकुळमक्षोभवादिकं देवतागणमुद्रणायेति । लोकालोककुळं महदिति ह य र व ल- 'युताः कादिवर्गाः समस्ता इति पट्तिशद् व्यञ्जनानीति । ह य र व ल 'युताः समात्राः वर्षाः समात्राः वर्षाः समात्राः वर्षाः समात्राः वर्षाः प्रवाः समात्राः पष्टि [ः] पूर्वोक्ताः कादयः समात्राः पष्टश्वत्रति । त्राच्याः समात्राः पष्टश्वत्रति । वर्षाः पृतः पुतः पृतः स्वयः समात्राः वर्षाः समात्राः समात्राः वर्षाः समात्राः सम्यात्राः समात्राः समात्राः समात्राः समात्राः समात्राः समात्रा

इदानीं प्रत्येके[के] का ध्यक्षरे प्रत्येकेकतत्त्रमुच्यते— त्रिशद् वै कादिवर्णा हयरवलयुताः सक्ष षट्त्रिशदेव भिन्ना मात्राविकारे रसगुणितरसाश्चकनाथा भवन्ति । एकाङ्गश्चेकया वै द्विसपरिकरितः प्रज्ञयालिङ्गितोऽभूत् पञ्चातमा पञ्चभिःस्यान्त्वपरिकरितश्चकनाथो नवातमा ॥८॥

त्रिश्वदित्यादि । इह कादीनि त्रिश्चद् व्यञ्जनानि ह्यरवलक्षसिहतानि वर्टात्रश्चदेव तानि, वर्णा इति । ते वर्णा भिन्ना मात्राविकारिरित । मात्रा वकारा-दयो हस्वदोधां हादश, गुणवृद्धित्थानीया द्वादश, यणादेशा "द्वादश। एभिः पड्भिः पड्भिः वर्षाने कारोविभिन्नाः सन्तो रस् पृणितरसारचेति पट्षिश्चः चक्कनाथा भवन्ति । प्रा सर्वेषां पट्षिशाच्चकनाथा भवन्ति । प्रा सर्वेषां पट्षिशाचिति पट्षिश-तन्त्रेषु चक्कनाथा अपि सर्वन्ति पट्षिशाच्चाव्यञ्जनस्थानस्वरूपेणित प्रथमं कव्यञ्जननन्त्रायकेन कव्यज्जनमुद्यते । तत्र मण्डले नायक एकाञ्चदंवकेया मात्रया भिन्नः कव्यञ्जनमकारेण सहित्मेकवीरः । द्विसपरिकरित इति द्वाभ्यामकाराभ्यां युक्तः प्रशासकाराज्यां सहित्मेकवीरः । द्विसपरिकरित इति द्वाभ्यामकाराभ्यां युक्तः प्रशासकाराज्यां भवतीति का । पञ्चात्मा पञ्चभिः स्वादिति का कि कृ कृ कृ कृ कृ कृ कृ कृ कृ वर्ष इति । नवपरिकरितदचक्रनायो नवात्मेति का कि को कृ कृ कृ कृ कृ वर्ष वर्षे हिता । ।

१. भो. 'क्ष' इत्यधिकम् । २. भो. 'र्द' इत्यधिकम् । ३. ग. भो. 'हिं नास्ति । ४. च. श प सर्व्य स, ग. श प सर्व्य व्यक्तः । ५. ग. च. 'र' नास्ति, गृहोतस्तु भोटानुसारी । ६. ग. काझरे । ७. भो. Thuń Nu Dań Rin Po bCu gNis To dByań Kyi rNam Pa ḥGyur Pa (ह्रस्वदीभंडायबमात्रामिन्ता) इत्यधिकम् । ८. ग. पत्रसंख्या ३३८-३३९ नास्ति । ९. भो. De ITar (एवं) ।

मात्रासंस्थातमको वै त्रिदशनविद्याभिश्च षट्त्रिशदारमा याद्याभिर्द्वारपालाः सकलगणकुलं शेषमात्राभिरेव । षट्कोषा हादिभिः स्युः स्वकुलदिश्चिगता वायुमात्रादिभेदैः प्रत्येकं वर्णभेदै रसगुणितरसं योगिनीयोगतन्त्रम् ॥९॥

मात्रासंस्यात्मको वे त्रिदशनवदिशाभिश्चेति । तत्र त्रयोदशभिस्त्रयोदशात्मा पूर्वोक्तः वय क वव वल एभियंणादेशेर्युक्तस्त्रयोदशात्मा, द्वारपालैः सहाप्यसी पुनर्गणैभिन्न एकोर्नावशदात्मा भवति क के कर् को कल् कमित्येभिः सह । ततः पर्झविशदात्मा गुणवृद्धिभः सह का के कार् की काल् ³कः इति । ततो द्वार्त्रिशदात्मा वहा क्या का क्वा क्ला क्हाः इति गर्भप्रज्ञया सह । ततश्चतुर्स्त्रिशदात्मा ^४कं कः सहितः । एवं षट्-त्रिंशदात्मा वहं वहः सहित इति सर्वत्र सप्तित्रिंशदात्मको मध्ये हुंकारो नायकः। पट्-त्रिशन्माण्डलेयाः क का कि की कृ कृ कु कु क्लृ क्लृ कं कः इति । ह्रस्वदीर्घस्वरभिन्नो वर्णः। तथा कका के के कर्कार्को की कल्काल् कंकः इति गुणवृद्धिर्भिभन्नो 'वर्णः । वह वहा क्य क्या क का कव क्वा कल कला वहं वहः इति हस्वदीर्घयणादेश-भिन्नो वर्णः ककारः । खादयोऽपि प्रत्येकं पट्त्रिंशदिति । एवं खवच्चादिकं तन्त्रमुच्यते ^भ[ए]कव्यञ्जनात्मकं षट्त्रिशन्मात्राभिन्निमिति। एवं **षट्त्रिशदात्मा** मण्डलेश:। याद्याभि-द्वरिपाला इति यणादेशसहितैर्व्यञ्जनैद्वरिपालाः 'नय क नव नल इत्येभिः। सकल-गणकुलं स्कन्धघात्वायतनलक्षणम् । शेषैः स्वरैर्ह्हस्वदीर्घगुणवृद्धिस्थानीयैरिति । शेष-मात्राभिरेव षट्कोघा हादिभिः स्युरिति । यत्र दश क्रोधा दशदिक्षु भवन्ति, तत्रापरे षट्कोघास्ते हादिभिदींर्घैयंणादेशैः स्यः वह वहा का ववा क्ला इति । यत्र कोधेन्द्रस्तत्र वहं वहः इति द्वादशकोधाः पट्कुलतन्त्रे, एककुलतन्त्रेऽपि पण्मात्राकुलभेदेरिति नियमः। [°]एवमाकाशघातुरूर्ध्वे **स्वकुर्लदिशि**गतो ज्ञानघातुरधोगतः । अपरे **वायुमात्रादिभेदैः** पूर्वे दक्षिणोत्तरे पश्चिमे गता देवता इति । एवं प्रत्येकं व्यञ्जनं ककारादिकं वर्णभेदैः स्वरभेदैः, रसगुणितरसमिति षर्ट्त्रिशःद्भेदभिन्नम्, योगिनीयोगतन्त्रमिति ^{९०}यत्र योगिनीनां सञ्जारो नायको निश्चलः संबृत्या तद्योगिनीतन्त्रम्, यत्रोपा[1714]यस्य सञ्जारः प्रज्ञा निश्चला तदुपायतन्त्रम् । स्वरूपतः सर्वमेव प्रज्ञोपायात्मकं योगतन्त्रम् । तथाह हेवज्त्रे-

> हेकारेण महाकरुणा बच्चं प्रज्ञेति भण्यते । प्रज्ञोपायात्मकं तन्त्रं तन्मे नि^९गेपदितं प्रृणु ॥ (हे० त० १.१.७)

रै. भो. De (तत्)। २. च. कि । ३. च. का। ४. च. वकं वकः। ५. च. वकं काः। ६. च. वर्गः। ७. भो. gCig Gib Dag Ñid (एकात्मकं)। ८. भो. वयाक्रा ववावजा ९. मो. 'एवं' नास्ति। १०. च. तत्र। ११. ग. मातुका इतः वरंपुतः प्रारम्यते।

पटले, ९-१० क्लो.] योगिनीतन्त्रादिस्फरणमहोद्देशः

इति वचनात्न हेवच्यं प्रज्ञातन्त्रं भवति, प्रज्ञातन्त्रं भ्रुण्विति वचनामावात् । तथा समाजे —

प्रज्ञोपायसमापत्तिर्योग इत्यभिधीयते । (गु॰ त॰ १८.३२)

समाजं मीलनं प्रोक्तं सर्वबुद्धाभिधानकम् ॥ (गु॰ त॰ १८.२४)

इति वचनात्, नेदमुपायतन्त्रं भवति । तथादिबुद्धे-

योगो नोपायकाये न एकया प्रज्ञया भवेत् । प्रज्ञोपायसमापत्तियोग उक्तस्तथागतैः ॥ इति ॥ ९ ॥

10

25

एवं प्रत्येकवर्णो रसगुणितरसे मण्डले मण्डलेशः स्कन्धैर्भूतेन्द्रियाद्यैः सकलगणकुलं शोधयेन्मातृभेदैः । शून्येक्ष्यानाहताद्यैः सकलजिनकुलैर्भृद्रणं देवताना-मुख्णीषादम्बुजान्ते विषमसमकुले चक्रमध्यासने च ॥१०॥

एवं प्रत्येकवर्णो रसपुणितरस इति पट्तिश्वः शोगिनीयोगतन्त्रे मण्डले मण्डलेश इति सिद्धमेककुलतन्त्रं त्रिकुलं पञ्चकुलं यत्तत् तदेव सहस्रलक्षकोटिमेदिमित्रम् । तन्त्राणां संस्था नास्ति, समाजादीनां हेवच्यादीनामनन्तसत्त्वाशयवशादिति तन्त्रनियमः ।

इदानी मन्त्रदेवतानामध्यात्मज्ञुद्धिरुज्यते—स्कन्धीरत्यादि । इह पञ्चस्कन्धीः पञ्चात्मा शुद्ध्यति, स्कन्धपञ्चभूतैनंवात्मा शुद्ध्यति, वतुःकर्मेन्द्रयेः सह प्रकातिवादात्मा शुद्ध्यति, व्यडिन्द्रियेः सह एकोनविवादात्मा शुद्ध्यति, व्यडिन्द्रयेः सह एकोनविवादात्मा शुद्ध्यति, व्यड्वित, पञ्चकर्मेन्द्रियिक्षयाभिः सह पञ्च-कर्मेन्द्रिये प्रविष्टे स्वाभप्रज्ञया सह द्वात्रिज्ञ'दात्मा, वष्टकर्मेन्द्रिय-'पष्टक-मेन्द्रिक्कियायुक्तरुक्वतुन्दित्रवादात्मा, व्यट्कर्मेन्द्रिक्कियायुक्तरुक्वतुन्दित्रवादात्मा, व्यट्कर्मेन्द्रिक्वयाः पट्कर्मेन्द्रियाणि पङ्कियाः पट्कर्मेन्द्रियाणि पट्कर्मेन्द्रयाणि पट्कर्मेन्द्रियाणि पट्कर्मेन्द्रियाणि पट्कर्मेन्द्रियाणि पट्कर्मेन्द्रियाणि पट्कर्मेन्द्रियाणि पट्कर्मेन्द्रियाणि पट्कर्मेन्द्रयाणि पट्कर्मेन्द्रियाणि पट्कर्मेन्द्रयाणि पट्कर्मेन्द्रयाणि पट्कर्मेन्द्रयाणि पट्कर्मेन्द्रयाक्रिया इति घातवो माण्डलेयाः,। एषां व्यापकं वित्तं ज्ञानं च नायकं सर्वत्र । एवं सकल्याणकुलं जोषयेन्मात्मेदैरिति । ज्ञास्यैस्वानाहताजैरिति । इह

१. ग. 'भवति, प्रज्ञातन्त्रं' नास्ति । २. च. योगानां । ३. ग. भो. पड्डिय्यैः । ४. ग. भो. पड्डिन्द्रियैः । ५. ग. 'झात्मा' नास्ति । ६. ग. 'यष्टं नास्ति । ७. च. यष्ट ।

T 417

पर्जूप्येर्जानायः सकलजिनकुले पर्स्कन्येविज्ञ् हेर्मुद्रणं वेयतानाम्, उष्णोषादम्बुजान्ते विवस्तमसुक्ते चक्रमध्यासने चेति। इह उष्णीपचक्रे विवस्तावसोभ्य अ इति। एवं ह्वये राहुमण्डले इक्रमध्यासने चेति। इह उष्णीपचक्रे विवस्तावसोभ्य अ इति। एवं ह्वये राहुमण्डले इक्षमधिस्तिः, ललाटे चन्द्रमण्डले अमिताभ उ इति विषमकुलम् ह्वये राहुमण्डले इक्षमाचित्रकानामिति नियमः कायमुद्रणं । प्राणमृद्रणं पुनः रू नाभौ, उ वक्षमत्व इति मुद्रणं देवतानामिति नियमः कायमुद्रणं । प्राणमृद्रणं पुनः रू नाभौ, उ हृदये, क्र क्ष्णे, इ ललाटे, अ उष्णोपे पृथिव्यादिमण्डले देयः। तथा चित्तविन्दुमुद्रणं कलाटे अ चन्द्रमण्डले, क्ष्णे आः सूर्यमण्डले, हृदये हुँ राहुमण्डले, नाभौ होः कालानिमण्डले। तथा ज्ञातमुद्रणं "अकारो मुखं सर्वधर्मणामाद्य नुत्पन्नत्यात्" इति वक्षमणो अ इति सिद्धं कायवाक्वित्रज्ञानानां मुद्रणम् ॥ १० ॥

इदानीं वक्त्रभेद उच्यते -

A HELL HIM

10

वर्ज्जैवंबत्रप्रभेदो भवति जिनपतेर्मातृभेदैर्भुजानां तत्त्वैर्मुद्राप्रभेदस्त्वपरमपि तथा कायवज्यादिभिश्च । षट्विंशद् योगतन्त्रे त्वपरिमितगुणेऽनेकवणंप्रभेदे प्रत्येके वर्णनामे समविषमकुले देवतादेवतीनाम् ॥११॥

वजीरत्यादि । इहैककुलं त्रिकुलं त्रक्कलं वट्यमुख्यते । तैर्वजिद्देवसभेदो भवित । एककुलेन एकमुख्यम्, त्रिकुलैः शुद्धं त्रिमुख्यम्, पञ्चकुलैः शुद्धः पञ्चाननो भवित, पद्कुलैः गृद्धः पण्मुखो [171b] भविति भीम इति । एवमप्रमुखादीनां हलाहलः शताननो यावद्वातुभिः शुद्धो नायको भवितिति तन्त्रान्तरे नियमो जिनपतिरिति । एवं 'कालचके मण्डलाधिपतेरिप ''एकाद्यानन्तवक्त्रो बहुकरचरणोऽनेकवर्णतमोऽन्ते'' (काल तल ४.१३३) इत्यादि साधनपटले उक्तः । इह चतुर्विद्यतिभुजस्य मातुभैदेर्भुजानां भेद इति । ह हा हि हो हृ हृ हृ हृ हि ह्या ह्या ह्या ह्या हृ हा है है है हु हृ हृ ह्या ह्या ह्या हि हो हृ हृ हृ ह्या ह्या ह्या हृ हा 'त्र ह्या हृ हत्यष्ट्रे भूकालाः सत्वपुणत इति कालचकत्य । तथा विश्वमातुः सर्वगुणतः हं हः हृ हृ हृ हृ ह्या ह्या हि हा ह्या हि हा ह्या हि हा हत्यप्टी भूकलाः सत्वपुणतः हि हा ह्या व्या विश्वमातुः सर्वगुणतः हे हः हृ हृ हृ ह्या ह्या ह्या ह्या ह्या हि हा ह्या हि सर्वगुणतः हे हः हृ हृ हृ ह्या ह्या ह्या ह्या ह्या हि सर्वगुणतः हे हः हृ हृ हृ ह्या ह्या ह्या ह्या हि सर्वगुणतः हि हि सर्वविद्याभितः इति आ ई ऋ कर्ष्व अः आकाशवायुत्वेजउदकपृथ्वीज्ञानभेद इति सर्वदेवताणस्य मुद्यम् । अपरमिति प्रवाक्तिः हि । एवं मुद्रणं आः प्रकृतेश्वनुकृतेत्वकुलेन धर्विद्यागितस्त्रेषु, अपरिमिति गुणेऽनेकवर्ण- भूभेदे नातातन्त्रे प्रत्येके भवलामा इति कवच्चे सवच्चे गवच्चे घवच्चे इवच्चे । इत्येतानातन्त्रे प्रत्येके भवलामा इति कवच्चे सवच्चे गवच्चे घवच्चे इवच्चे ।

१. ग. बिन्दोर । २. भी. हो । ३. च. धमुत्तन । ४. ग. कालवक्र । ५. च. ह हा. ग. ह्व ह्या । ६. ग. ह्व ह्वा । ७. ग. च. प्रज्ञा । ८. च. कुले । ९. च. भेदे । १०. ग. बर्णानामिति । एवं चकारावो नामिष पर्ट्जिजढणीन् यावदिति । समकुळ इति प्रज्ञातन्त्रे, विषमकुळ उपायतन्त्रे, वेवतादेवतीनां मुद्रणनियमः । बाह्ये चकादिकः, अध्यारमनि "बुद्धारमक इति ॥ ११ ॥

इदानीं मन्त्रदेवतानामुत्पत्तिक्रमेण जातकशुद्धिरूयते — बीजैकं चैकवीरो रजिस समरसः प्रज्ञयाऽऽलिङ्गितोऽभूत् स्कन्यैः पञ्चात्मकोऽधिष्ठितमपि नवको भूमिधात्वादिभिक्ष्च । पाय्वाद्यैरचक्षुराद्येः परिकरितमिदं पञ्चिबशात्मकक्ष्य एवं दन्तो-द्भवे वै पुनरपि दशनैरीक्ष्वरोऽनन्तवक्षो ॥१२॥

बीजेत्यादि । इह यथा गर्भाधाने बोधिचित्ताधारसिहतं मनोविज्ञानमेकं धर्मथात् विषयेणैकलोलीभृतमेकवीर उच्यतेऽन्तर्भृता *स्वाभप्रज्ञा जातकस्य । एवं देवता ककारेणैकेन एकवीरा सिद्धा, पश्चात् तद् बीजं रजिस समरसं प्रज्ञयाऽऽलिङ्गितं भवति, तद्वासनातो विज्ञानस्कन्धः प्रज्ञयालिङ्गितो भवति का इति "तुर्यायोगत इति नियमः। एवं पञ्चस्कन्धनिष्पत्ती पञ्चात्मको गर्भः, तथा देवताऽपि पञ्चात्मका का कि कृ कु क्ल इति । एवमस्थिद्रवोष्णचलधर्मोत्पत्तौ स्कन्धधात्वधिष्ठितो नवात्मको गर्भो यथा, तथा देवताऽपि का कि की कु कृ कु कु कु कु कु वह कु इति सिद्धा। एवं वा वपाणिपायु-पादनिष्पत्तौ पूर्वस्कन्धधातुभिः साधै त्रयोदशात्मकः कर्मेन्द्रियनिष्पत्तौ यथा बालस्तथा देवताऽपि का कि की कु कू कु कू करू करू क्य क क्व कर इति । यथाऽ°ध्यात्मविषयो-त्पत्तौ गर्भे एकोनविशत्यात्मकः पूर्वस्कन्धादिभिः साध तथा देवताऽपि का कि की कृ कृ कुकूक्लृक्लृक्य कक्व कल का कै कार्की काल्कः इति। ततश्चक्षुराद्युत्पत्ती यथोत्पन्नो बाल: पञ्चिवशत्यात्मकस्तथा देवताऽपि का कि की कृ कृ कु कु कु स्य कक्व कल का कै कार्की काल् कि कं के कर्को कल् कमिति। तत आलापादानगतिविष्मत्रक्रियोत्पत्ती पञ्चकर्मेन्द्रिययोगेन द्वात्रिश्चदात्मको बालस्तथा देवताऽपि "क का कि की कू कृ कु कू कु कु कह वह वहा क्य क्या क का कव क्वा कल क्ला [172a] क का के के कर् कार् को की कल् काल् कं कः इति द्वादशवर्षाविधिनिष्पत्तिः। ततः षोडशवर्षाविधर्यथा बालस्य च्यवने शुक्रस्यावस्था तुर्या भवति चतुर्थी स एव चतुर्थः काय: पष्ठ: स्कन्ध: पष्ठो धातु: पष्ठिमिन्द्रियं पष्ठो विषय: पष्ठं कर्मेन्द्रियं पष्ठी े कर्मेन्द्रियकिया भवति । एवं षट् स्कन्धाः पड्धातवो द्वादशायतनानि षट् कर्मेन्द्रियाणि षट् कर्मेन्द्रियकियाः। एवं षट्त्रिशद् धातव आधेयभूताः सप्तत्रिशतिमस्य ज्ञान-

१. भो. Min Can (तास्तः) । २. ग. बुढारम । ३. च. क्रमे । ४. ग. स्वाभा । ५. च. तुर्यात्मगत । ६. च. पाणिपादगुद । ७. ग. अध्यारमित । ८. भो किः कि । ९. ग. च. कै कट् को । १०. च. भो. क' नास्ति । ११. ग. कर्मेन्द्रियं नास्ति ।

THE PARTY OF THE P

15

10

20 चित्तस्येति। 'तथा देवतानिष्पतो क का कि को कृ कृ कृ क् क् क् कृ कं कः इति स्कत्यधातवो द्वादश। वह वहा क्य क्या क्र का क्व क्या क्ल क्ला वहं वहः इति कर्मेन्द्रियकमेन्द्रियकिया द्वादश । तथा क का के के कर् कार् को को कल् काल् कं कः इति द्वादशायतनानि सिद्धानि । एषां धातूनां नायकः पञ्चाक्षरो ैमहाशून्य उपायो विन्दुशून्यः पडक्षरः प्रज्ञा वंकार एकार इत्येवंकारो नायको महासुखो मण्डलाधिपति-यंथा कवच्यतन्त्रे तथा सवच्चादिके सिद्धः। एवं स्कन्धधातवो गर्भपुटे द्वादशायतनानि बाह्यपुटे द्वारपालाः कर्मेन्द्रियाणि सविषयाणीति । इह यथा कुमारः षोडशवर्षादूष्ट्य-भोश्वरोऽनन्तवकीति पुत्रदृहितुस्कन्धानां जनकत्यात्, तथा पञ्चतथागतादिव्यहस्फरणा-हेवतागणनायक ईव्वरोऽनन्तचकी भवतीति वित्यमः। इह यथा गर्भस्य कायनिष्पत्तिस्तथा देवतानिष्पत्तौ मण्डलराजाग्री सेवाङ्गम्, यथा वाङ्निष्पत्तिस्तथा कर्मराजाग्र्यप-साधनम्, यथा बोधिचत्तिबन्दु निष्पत्तिस्तथा बिन्दुयोगः साधनम्, यथा शक्रच्यतौ मुखोलितस्तवा सुक्ष्मयोगो "महासाधनम्। एवं चतुरङ्गसाधनमध्यात्मपटले प्रागुक्ते शोधनीयं विस्तरत इति नियमः ॥ १२ ॥

इदानीं पट्चकेषु पड्धातुभ्यः कुलदेवतास्फरणम्च्यते---

पद्मचिह्नोऽमिताभो संशद्धतोयाच्छशधरधवलः मानी लोकेश्वरो वै हयरथगमना मामकी रूपवज्जा। रौद्री चाब्धिर्गणेन्द्रो द्विजफणिसहितो व्याध्यवक्त्रा सल्का एते श्रीवामवक्त्रात् परमकरुणया स्फारिता विज्ञिणा च ॥१३॥

शुद्ध इत्यादि । 'इह पोडशवर्षादुष्यं यथा मनुष्याणां पड्धातुस्वभावेन चित्तस्य नानास्फरणम्, तथा षड्धात्मेदेन नायकस्यापि । शुद्ध इति ललाटचक्रे संशुद्धतीया-**दि**ति निरावरणतोयधातोः संज्ञास्कन्धतोऽपि देवतागणः स्फुरति **शशधरधवलः** पद्मचिद्धः तद्यया अमिताभः। भामको पद्मान्तकः अचलः मानी चुन्दा लोकेश्वरः रूपवच्चा रौद्रो लक्ष्मो समुद्रो गणेन्द्रः अनन्तो नागः कुलिको ब्याध्रवक्त्रा उलूकवक्त्रा इत्येता देवताः परमकरणया स्फारिता वामववत्रादिति कायवक्त्राच्छुक्लात्। कालचक्रभगवतो नियमः। अत्रामिताभो विज्ञानमृद्रितो देवतागणोऽमिताभेन पद्म-चिह्नः शान्तिपुष्टिकमंसिद्धिद इति शुक्लतोयवर्णतः। एवममिताभकुलदेवतास्फरण संहरणं च प्रत्यवेक्षणत इति ॥ १३ ॥

इदानीममोघसिद्धिकुलस्फरणमुच्यते—

धर्मे संशुद्धवायोस्त्वसिकरकमलोऽमोघसिद्धिश्च तारा वैगर्भः स्पर्शवस्त्रा त्वतिबलसहिता चिंचका श्रृह्खला च ।

१. ज. यथा । २. ग. 'महा' नास्ति । ३. ग. 'इति' नास्ति । ४. भो. sKyod Pa

नैऋंत्यः शूद्रनागाः पवन इति तथा श्वानवक्त्रा सकाका मैत्रीचित्तेन चैते त्रिभवनपतिना स्फारिता पूर्ववक्त्रात् ॥१४॥

धर्म इत्यादि । इह हृदये धर्मचक्रे संशुद्धवायुधातोः शुद्धसंस्कारात् खञ्जचिह्नो देवतागणः कृष्णवर्णतः। तद्यथा अमोघसिद्धिस्तारा विघ्नान्तको नीलदण्डोऽतिवला वज्रशृङ्खला खगर्भः स्पर्शवज्रा चिका वैष्णवी वायर्नेऋंत्यः पदाः कर्कोटकः काकास्या इवानास्या एता: [172b] पूर्ववक्त्रादिति चित्तवक्त्रात् । मैत्रीचित्तेन स्फारितास्त्रिभुवनपतिनेति । अत्रामोधसिद्धिविज्ञानेन मुद्रितो देवतागणोऽमोधसिद्धिना खद्भचिह्न उच्चाटनविद्वेषकर्मसिद्धिदः 'कृष्णो वायुवर्णतः । एवममोघसिद्धिकूलदेवतानां स्फरणं संहरणं च कृत्यानुष्ठानत इति ॥ १४ ॥

इदानीं रत्नसम्भवकुलस्फरणमुच्यते-सम्भोगे शुद्धवह्नेरुदयरविनिभो रत्नधृक पाण्डरा च भूगर्भो जम्भको वै वररसकुलिशा शुकरी षण्मुखाग्निः। राजानौ द्वौ फणीन्द्रौ प्रकटितभुकुटी शुकरास्या सगुध्रा

एते श्रीसब्यवक्त्रात् परममुदितया स्फारिता विश्वभर्ता ॥१५॥

संभोगे शुद्धवह्नेरिति। इह कण्ठचक्रे शुद्धवेदनाया शुद्धवह्नेरुदयरविनिभ इति रक्तवर्णो रत्नवृगिति रत्नसम्भवः। एवं पाण्डरा। प्रज्ञान्तकः टिक्कराजो जम्भी भृकुटी क्षितिगर्भो रसवच्या वाराही कौमारी अग्निः कार्तिकेयः शुकरास्या गृध्रवक्त्रा वासुकिः शङ्ख्याल एते श्रीसव्यवनत्रात् परममुदितया स्फारिता विश्वभर्ता इति। सर्वे रक्तवर्णा रत्नसंभवमुद्रिता वश्याकृष्टिसिद्धिदा वाक्चक्रस्वभावतः। एवं रत्नसं-भवकुलदेवतानां स्फरणादिकं समताज्ञानत इति । अत्रापि रत्नसम्भवो विज्ञान-मद्रित इति ॥ १५ ॥

इदानीं वैरोचनकुलदेवतास्फरणमुच्यते-

संशुद्धभूमेर्वरकनकनिभश्चकपाणिर्मुनिश्च नाभो विष्कम्भी लोचना च प्रवरनरपते स्तम्भको गन्धवज्रा। मारीच्येन्द्री च शको युगमुखसहितो वैश्यनागादि सर्वे भर्त्रा चोपेक्षया वै सकलजनहिताः स्फारिताः पश्चिमास्यात् ॥१६॥

नाभौ संगुद्धभूमेरित्यादि । इह नाभाविति निर्माणचके शुद्धरूपस्कन्धात् गुद्ध-पृथ्वीयातोवरकतकिमः पीतवर्णस्वकपाणिर्मुनिस्चेति वैरोचनः । एवं छोचना । यमान्तको महावर्णः स्तम्भो मारोची विष्कमभी गःधवच्या ऐन्द्री ब्रह्माणी शको ब्रह्मा तक्को महापद्मो जम्बुकास्या ज्यव्हास्या एता भर्त्रा चोपेक्षया वै सकलजनिहताः स्कारिताः पदिचमस्यादिति । ज्ञानवक्त्रात् पीतवर्णास्चकचिह्नाः रे स्तम्भनमोहनादि-कर्मसिद्धिदा वैरोचनमुद्रिताः । वैरोचनोऽपि विज्ञानमुद्रितः । एवं वैरोचनकुलस्फरणा-दिकमादर्शज्ञानत इति ॥ १६ ॥

इदानीमक्षोभ्यकुलस्फरणमुच्यते-

T 418

उक्जीये शुद्धशून्याद् वरकुलिशघरोऽक्षोभ्यघात्वीश्वरी द्वे उष्णीयो धर्मधातुर्गगनगुणवशाद् वष्णपाण्यादयोऽन्ये । गुह्ये शुद्धात् समस्ताः शामसुखनिधयः शब्दवष्णादयश्च ऊध्यधः स्मारिता वै बहुगुणनिलयाः प्राणिनां मोक्षहेतोः ।।१७॥

उष्णीये शुद्धशून्यादिति। उष्णीयनके शुद्धविज्ञानस्कन्धात् शुद्धाकाशधातीः, वरकुलिशवरोऽक्षोम्यो वजानमृद्धितः श्यामवर्णः। एवं वज्जवास्वीश्वरो । उष्णीयो वज्रहेकारो रौद्राक्षी क्रोधराजी वज्जपाणिषंमधातुवज्जा विष्णुयंमी जयो नाग एते उरुध्व-वनत्रात् शून्यात् स्कारिता बहुगुणनिलया इति सर्वकर्मासिद्धदा वज्जचिह्ना अक्षोभ्य-मृद्धिताः श्यामाकाशवर्णतं इति । एवमक्षोभ्यकुलदेवतास्फरणादिकं सुविशुद्ध-धर्मधातु ज्ञानत इति ।

इदानीं वज्यस्त्वकुलस्पर्णमुख्यते—गृह्ये शुद्धादित्यादि। इह गृह्यवक्रे गृद्धज्ञानस्कत्यात् शुद्धज्ञानभातोनीलित्रवृक्षवज्ञविह्नो वज्यसत्त्वो विज्ञानमृद्धितः। एवं ज्ञानधातुः। प्रज्ञा नीला सुम्भराजो वज्यवेगो अतिनीला कोधेश्वरी रुद्रो जम्भलः समन्तभद्रः शब्दवज्ञा विजयनाग एतं अधोवननात् ज्ञानधमित् स्फारिताः सकल-जनहिताः प्राणिनां मोक्षहेतोः सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानतो नीलवर्णा नीलाक्षोम्यमूर्त्या वज्यसत्त्वन मृदिताः सर्वकर्मसाधका इति ।

एवं पर्वकृषु परकुल्देवतानां स्फारणं जगदर्थकरणं घोडशवर्षाद्वध्वं कालचकस्य जनकत्वेन सिद्धमिति नियमः। अत्राक्षोभ्यो नीलेनाक्षोभ्यक्षेण मृद्धितः स्यामो विज्ञान-स्कन्धः स्यामेनाक्षोभ्येण नीलो 'ज्ञानस्कन्धः। अय कायवाक् चित्तज्ञान[1734]चतुः-कुल्भेदेन' यत्र मुद्रशम्, तत्र वैरोचनः शुक्लश्चन्द्रधर्मतः, अमिताभो रक्तः सूर्यधर्मतः, अक्षोभ्यः कृष्णो राहुषमतः, वज्रसत्त्वः पीतः कालाग्निधर्मत इति । अय आधाराधेय-

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

सम्बन्धेन मुद्रणं साधनापटलोक्तविधिना । तथा हि—अक्षोभयो वैरोचनस्य मुद्रणम्, वैरोचनो अमिताभस्य, अमिताभो रत्नसंभवस्य, रत्नसंभवोऽमोधसिद्धेरिति मुद्रणनियमः । एवं त्रैधातुकमहेरवरोऽनन्तचको सर्वतन्त्रान्तरे वेदितव्यः, त्रिकुले पञ्जकुले वेति ॥१७॥

इदानीं प्रज्ञातन्त्रस्फरणमुच्यते —

पटले, १६-१८ क्लो.]

दिक्पत्रे लोचनाद्या विदिशिदलगतं रक्तपूर्णं कपालं प्रत्यालीढोऽकंमूब्नि प्रलयघननिभाक्रान्तसोमेश्वरो वै। मालाबद्धः कपालेजंलनिधिवदनो हेरुकः सूर्यबाहुर्मुद्राहिन्याद्यचर्मा प्रलयगजपतेदियंचमस्थिधारी।।१८॥

दिक्पत्र इत्यादि । इह किल चक्रसंबरे वच्छडाकिन्यादयश्चतस्रो लोचनाद्याः पृथिव्यादिस्वभावाः शान्तिकादिसिद्धिदाः । ताश्च पुनश्चित्तवनत्रादिकृष्णवर्णादिभिन्नाः सत्यो न पृथिव्यादिकर्मसिद्धिदाः स्युः । तथाह—

> पीतेन स्तम्भनं कार्यं श्वेतेन शान्तिकं भुवि। वश्याकृष्टी च रक्तेन कृष्णेनोच्चाटनादिकम्॥ इति।

अतः कृष्णवर्णवशाद् वष्यङाकिनी वायुधातुः, रवतवर्णतो लामा तेजोधातुः, पीतवर्णतः खण्डरोहा पृथ्वीधातुः, शृवलम्बवर्णतः रूपिणी तोयधातुः। एवं 'यथा चित्तवाग्ज्ञातकायमुखानां कृष्णरवतपीतव्येतवणी यथाकमम्, तथा तिहीत्वभागे गतानां प्रचण्डादीनामि नव नव देवीनां वर्णो विदितव्यो महालकाभिष्माने । इति भगवतो नियमः। तेनाल्पवीयंवतां मञ्जूषियाःत्र कालचके लघूपरेशेन स एव प्रपञ्चः प्रकाशित इति । दिवपत्रे लोधनाखा इति पश्चिमदले लोधना वर्णतः, खण्डरोहा पीता 'गृवनाडी-स्वभावतः, पृथ्वीवर्णतो ज्ञानवक्षत्रं पश्चिम पीतं कालचकस्य हेष्कस्य 'चिल्लादिकभावतः इति । उत्तरदले तोयवर्णतो रूपिणी शृक्ला उत्तरं कायववन्नं गुकलं लक्ष्नाद्वभावतः दिक्षणं लामा राति तोजोवर्णतो वापवन्नः 'कृष्णं मृतनाडीस्वभावतः । पृवंद्वविद्यभावतः कृष्णा वायुवर्णतः चित्तवन्नः' कृष्णं मृतनाडीस्वभावतः । तृवंदले वष्ण्वज्ञिक्तिमानं कृष्णा वायुवर्णतः चित्तवन्नः' कृष्णं मृतनाडीस्वभावतः । तृवंदले वष्णविद्यभावतः वष्णवायात्रे । य्वत्तवन्नः' कृष्णं मृतनाडीस्वभावतः । तृवंदले वष्णविद्यभावतः । व्यत्ववन्नः । व्यत्तवन्नः । कालचक्रते हेष्को भगवान् नीलवर्णं इति । एवं चित्तवन्नः । पृवं पृवेदनने कृष्णा डाकिन्यः, दक्षिणे नैन्द्रत्ये रक्ताः, पश्चिमे वायव्ये पीताः, उत्तरेशाने वृत्वःनो कृष्णाः । एवमप्रवस्तानेषु देव्यो वेदितव्याः । आसां 'विस्परणेन कर्मप्रसरादिकं तन्त्रोक्तं वच्चपाणिकृतरोक्तया षट्साह्यिकव्या बोद्वयं लघुतन्त्रने। तेनात्र न लिखितम् । विदिश्विवणतिमत्याति सुवोधम् । एवं समाजो मायाजाल-

१. मो. 'चक्रपिह्नाः' नास्ति । २. ग. 'ज्ञान' नास्ति । ३. ग. 'ज्ञान' नास्ति । ४. ग. (ज्ञान' । ५. ग. मेदे ।

१. च. भो. 'यथा' नास्ति । २. ग. च. 'गृदनाडीस्वभावतः' नास्ति, गृहीतस्तु भोटानुसारी । ३. भो. 'चिह्नादि' नास्ति । ४-५. ग. च. चक्रः । ६. ग. भो. विस्तरेण ।

15

20

88

मिप प्रसिद्धं सुबोधम्, तेनात्र न लिखितम् । चित्तवावकायवष्त्रस्फरणमात्रत इति । अत्र मूलतन्त्रे सूत्रलक्षणम्—

द्वावेकरच त्रयः सार्घा अर्घो ह्येको युगः शशी। युग एको युगश्चैको भागो द्वात्रिशदादिषु ॥ इति ।

शेषं प्राकाराद्यं कालचक्रमण्डलवदिति ॥ १८ ॥

देवीभिः कृष्णरक्तामलशिशतनुभिस्त्रीणि चक्राणि बाह्ये पडवजाः कोधजाभिद्धिभुजशशिमुखाभिस्तथा भतजाभिः। द्वारे चण्डाः शवस्था विदिशि च नियताः कर्तिकाशुक्तिहस्ता वीराणां वेदहस्ते कृलिशडमरुको वज्रखट्वाङ्गघण्टे ॥१९॥

क्षितिजलवलये सर्वपीठोपपीठं श्रीमेरोरष्टदिक्ष क्षेत्रं छन्दोहमेलापकचितिभुवने विद्ववाय्वोश्च मध्ये। एवं देशे नगर्या दिशिविदिशिगता देवता वेदितव्याः प्रज्ञातन्त्राभिधानं त्रिभुवनगृरुणा स्फारितं पूर्ववक्त्रात ।।२०।।

गर्भे चक्रं नवांशं शशिरविकमले मण्डलादर्धभागं वज्रस्तम्भावलीभ्यां रचितमपि महास्कन्धधात्वाधिदैवम । बाह्ये प्राकारिभत्तौ विषयविषयिणश्चनद्रसूर्यासनस्थाः सूर्यस्था द्वारपालास्त्वपरगणकुलं वेदिकायां समन्तात् ॥२१॥

इत्यादौ षट्प्रकारं गदितमपि तथा योगतन्त्रं समाजं कोघाः कोणेषु पार्क्वे विषयविषयिणो जम्भलो घान्यहस्तः । वाक्पादौ पाणिपायू भगरविश्वशिनः कालनाडीस्वभावाः प्रज्ञोपार्यं समस्तं त्रिमुखरसभुजं स्फारितं सन्यवक्त्रात् ॥२२॥

चक्रं गर्भे त्रिकोणे भवति नरपते मण्डलाद् वे त्रिभागं घातुस्कन्याधिदैवं पुनरपरपुटे शब्दवज्रादयोऽष्टो । बाह्यस्ये मण्डले वे दशदिशि नियतं कोघवृन्दं रिवस्थं तिसमन् प्रा**क्तुरुमिएके अल्लाक्ष्मान् स्वाधिक क्षाध्वन्द रविस्थं** तिसमन् प्रा**क्तुरुमिएके अल्लाक्षान् स्वाधिक क्षाध्वन्द रविस्थं** तिसमन् प्रा**क्तुरुमिएके अल्लाक्षान् स्वाधिक क्षाध्वन्द रविस्थं** तिसमन् प्रा**क्तुरुमिएके अल्लाक्ष्मान्य क्षाध्वन्द रविस्थं** तिसमन् प्रा**क्तुरुमिएके अल्लाक्ष्मान्य क्षाध्वन्द रविस्थं**

मायाजालं त्रिभेदं त्रिमुखरसभूजं देवताकायभेदात् कल्याद्यं यत्समस्तं जडहृदयवशात स्फारितं वामवक्त्रात । तन्त्रं योगान्विद्धं द्विगुणिमह महासंवरं डािकनीनां षटचकैः षटकुलैवै नृप चितिभुवनैः स्फारितं पश्चिमास्यात् ॥२४॥

इदानीं महासंवरमण्डलमुच्यते-

षड्रन्ध्रभागैश्चलवलयगतैर्मण्डलं सुत्रयित्वा गर्भात् षट्षडविभागैरपि कमलदलं कणिकार्धेन युक्तम्। कर्तीचकाञ्जरत्नैरसिवरकुलिशैश्चावलीं द्विद्धिभागे-द्वारमकैंऋंत्भिरपि रसैर्वेदिकाहारभूमिम् ॥२५॥ निर्यहं

पञ्चप्राकाररेखां त्रिभिरिप शिखिभिः पट्टिकां हारमुले सर्ये: पक्षं कपोलं त्रिगुणदिनकरैस्तोरणं स्तम्भमूष्टिन । अष्टद्वाराणि कूर्याद् दिशिविदिशि महामण्डलं वृत्तमेत-न्मध्येऽञ्जं विश्ववणं रविशशिपुटितं चासनं कर्णिकायाम् ॥२६॥

चकं नीलावलीं च क्षितिरिप हरिता क्ष्माऽसिता पीतचकं रक्ता भुः श्वेतचकं क्षितिरिप धवला सावली रक्तचकम्। पीता नीला च भूमिस्त्वसितमपि भवेच्छ्यामवर्णं च चक षड्भागैरङ्गभूमिर्जनकसुखवशाद् द्वारचकाणि तद्वत् ॥२७॥

बाह्ये द्वचष्टरमशानान्यपि च कुलवशाद् गर्भदेव्यस्तथाष्टी अष्टो पत्रे कपालान्यमृतरसयुतान्यष्टपत्रेषु देव्यः। बाह्ये लास्यादिदेव्यो दिशिविदिशि महानागराजास्तथाष्टी

10

15

मुत्रैरित्यादि । इह पिंडचमास्यात् ज्ञानवक्त्रात् महाचकसंवरस्त्रिचकसंवरस्य हिन्गो यतः बट्चकः वोडशस्मशानेरिति । तेनास्य मण्डलं वृत्तमष्टद्वारविशोधनायेति, अतोऽस्य मण्डलस्य लक्ष[173b]णमुच्यते — सूत्रैः पड्रत्ध्रभागेरिति । **वण्णवित**-विभागेः, चलवलयगतेरिति लोकघातौ चतुर्लक्षयोजनगतेर्वायुवलयान्तैः। शरोरे बतुईस्तगतेरिति । मण्डलं सुत्रियत्वा पण्णवितसूत्रीस्तेषु मध्ये षट्षड्विभागैः प्रत्येकं चक्रं कुर्यदिवं चक्रं षट्षड्विभागैरिति । अपि कमलदलं कणिकार्धेन युक्तं पड्विभागीरिति । एवं सप्तसु द्वाचत्वारिशद्विभागाः पूर्वे, एवं पश्चिमे ^वदक्षिणे उत्तरेऽपि. सर्वेषामेकत्र चतुरशीतिभागा गताः। पण्णवितषु शेषेद्विदिशविभागेषु षड्विभागेः पूर्वभूमिः, पश्चिमाप्येवं ³वामे दक्षिणेऽप्येवं सर्वदिक्षु सूत्राणि शुद्धानीति तत्र पूर्वोक्त-षडविभागमध्ये चतुभिः पदादलं द्वाभ्यां कणिकार्धम् । एवं चक्रस्याराश्चतुभिः, द्वाभ्यां चिह्नावली 'कर्णिकादीनां मध्ये पद्मं पोडशदलं पद्मदलबाह्ये 'कर्णिकावली नीला। तस्या भिमस्तले श्यामा । 'एवं चक्राराश्च नीला इति ज्ञानधात् चक्रे । ततः पृथ्वी 'धात् चक्रे चकावली पीता चकारास्तथा, कृष्णा तले भूमिः। तोयधातुचके पद्मावली शुक्ला चकाराश्च, भूमिस्तले रक्ता। तेजोधातुचके रत्नावली रक्ता चकाराश्च, श्वेता तले भृमि:। वायुधातुचके कृष्णा खङ्गावली चक्राराश्च, पीता तले भूमि:। आकाशधातु-चक्रे श्यामा वज्ञावली चक्राराश्च, तले भूमिनीला। ततः षड्भागै रङ्गभूमिर्जनक-मुखबजादिति। पूर्वे कृष्णारनी च दक्षिणे नैऋत्ये रक्ता, पश्चिमे वायव्ये पीता, उत्तर ईशाने व्वेता, द्वारचकाणि तद्वदित्यष्टमहारमशानचकाणि । अष्टद्वारावसानेऽ-ष्टरमशानचकाण्यष्ट द्वारान्तरेषु । एवं षोडशरमशानचकाण्यष्टाराणि, गर्भपद्माष्ट्रदलेष्वष्टी देव्यः, अष्टदलेषु कपालान्यमृतपूर्णानि, अष्टदेव्यन्तरान्तरेषु षट्चकाष्टारेषु पीठोपपीठादि-देव्योऽष्टचत्वारिशत्। एवं वीराश्च वेदितव्याः। बाह्ये वेदिकायां नागराजानोऽब्टो, तोरणस्तम्भमूले, लास्यादयो द्वारतोरणे, शेषं द्वारादिलक्षणं कालचक्रमण्डलवद् वेदितव्यमिति ॥ २५-२८ ॥

इरानीं पट् ''वकारादिषु देवीबीजान्युच्यन्ते— दीर्घेंह्रंस्वै: स्वरैश्चापि स त प ट च क हमादिशून्यादिवर्णा वाय्वाद्यारेषु दीर्घा रविचरणवशात् क्ष्मादिशातुस्वभावाः । उध्वाद्यारेषु हस्वाः शशिचरणवशात् स्वस्वचकारमूर्घिन द्वारे द्वारान्तराले गगनतलगता हक्षयुक्ताः सवर्गाः ॥२९॥

१. ग. 'पश्चवि' नास्ति । २. च. ग. मध्य । ३. मी. Byan (उत्तरे) । ४-५. मी. Gri Gug (कर्तिका) । ६. च. 'एवं' नास्ति । ७. ग. 'वार्पुं नास्ति । ८. ग. द्वारान्तरान्तरेषु । ९. ग. 'गर्भपद्म '' द्वादद्याङ्गप्रतीरमः' नास्ति । १७. च. चक्रादिषु ।

दीर्घेरित्यादि। दीर्घे: पश्चस्वरै: लुक ऋई आ इति। ह्रस्वैश्च अइ ऋ उ छ इत्येभिभिन्नाः सतपटच कानां वर्गाणां पण्णां क्ष्मादिशुन्यादिवर्णा वाय्वाद्यारेषु दोर्घा इति । इह ज्ञानचक्रें सवर्गोऽघिदेवः, तस्य स्ट वायव्यारे, प्रव ईशाने, पृ नैऋरिये, शी आग्नेय्याम्, र्का पाताले, वायव्यो तर्श्मशानचक्रमध्ये एताः पञ्च डाकिन्यो वश्चिकलग्ने पञ्चमण्डलनायिकाः सर्वसत्त्वानां प्राणवाहत इति वसंहारक्रमेण दक्षिण-नासापुटे । ततो धनुर्लग्ने ऊर्ध्वे न वायव्य अपिहचमश्मशानचक्रमध्ये ज्ञानचक्रपुवरि शि, दक्षिणे पु, उत्तरे 🖂 पू, पश्चिमे स्ट इति वामनाडी प्रवाहो धनुर्लग्ने । ततः पृथ्वीचक्रे तवर्गोऽधिदैवः। तस्य त्लु वायव्ये, थू ईशे, दु "नैर्ऋत्यारे, धी अग्नी, ना पाताले वायव्य-द्वारे श्मशानचक्रमध्य इति कन्यालग्ने । तथा तुलायामध्वें न, पश्चिमद्वारे घि, [1742] पूर्वे द, दिक्षणे डु, थु उत्तरे, रू पश्चिमे इति । ततस्तोयधातूचक्रे पवर्गोऽधिदैवः । तस्य प्लु वायव्ये, फु ईशे, बु नैऋंत्ये, भी अग्नी, मा पाताले ईशद्वारे। एवं कर्कटलग्नेऽधि-देवताः । तथा सिहलग्ने आकाशे म, उत्तरद्वारे पूर्वारे भि, दक्षिणे वृ, उत्तरे फू, पश्चिमे प्ल इति । ततश्तेजश्चके टवर्गोऽधिदैवः। तस्य ट्लु वायव्यारे, ईशे ठू, डु नैर्ऋत्ये, अग्नी ढो, अघो णा नैऋत्यद्वार इति वृषलग्ने। ततो मिथुने ण ऊर्घ्वे, दक्षिणद्वारश्मशाने पूर्वीरे ढि, दक्षिणे डू, उत्तरे ठु, पश्चिमे ट्र इति । ततो वायुचक्रे चवर्गोऽधिदैवः । तस्य च्लु वायव्यारे, 'ईशारे छू, नैर्ऋत्ये जू, अग्नौ झी, पाताले त्रा अग्निद्वारे मीनलग्ने इति । ततो मेपलग्ने ऊर्ध्वे अ, पूर्वद्वारश्मशानचक्रे पूर्वारे झि, दक्षिणे जृ, उत्तरे छु, पश्चिमे च्रु इति । तत आकाशघातुचक्रे कवर्गोऽधिदैवः । तस्य वायव्यारे क्रु, ईशे खु, नैऋंत्ये गु, अग्नी घी, अघो ङा आग्नेय दक्षिणद्वारमध्ये श्मशानचक्रोपरि इति मकरलग्ने। ततः कुम्भलग्ने ऊर्ध्वे ङ, आग्नेय पूर्वद्वारमध्ये पूर्वारे घि, दक्षिणारे ग्, उत्तरारे खु, पश्चिमारे क्छ इति । द्वारे द्वारान्तराले तलगगनगता हक्षयुक्ताः सवर्गा इति । इह षड्वर्गाणां शून्यमण्डलवाहका द्वादशवर्णा दीर्घहस्व 💢का 🤾क ना न मा म णा ण त्रा त्र ङा ङ इति द्वादशश्मशानदेवीनाम् । ^{५०}अन्ये चतुःसन्ध्याभेदेन त्रित्रिलग्नान्ते चत्वारो वर्णा ह हा क्ष क्षा इति चतुर्षु वामेशानदक्षिणनैर्ऋत्यश्मशानेषु। एवं षोडशरमशानेष षोडश देव्यः, पटचक्रेष्वष्टचत्वारिशद्गर्भपद्मदलेष्वष्टदेव्यः। आसा बीजानि अ पूर्वदले, अ: दक्षिणदले, अं उत्तरदले, आ पश्चिमदले, ह अग्निदले, हः नैर्ऋत्यदले, हं ईशानदले, हा वायव्यदल इति तासामन्तरान्तरेष्वष्टदलेष्वष्ट-कपालानि । मध्ये वज्रडाकिनीकालचको हेरुको भगवान् नायको हुँ फ्रँ आसां डाकिनीनां डाकानां च बीजान्ते वज्रम्, तेन सह नाम स्लुवज्रा 🏹 पूर्वज्ञा इत्यादि क्लृ ेवज्ञापर्यन्तम् । आसां डाका भावभेदेनाष्टचत्वारिशत् विसवजः पुवजः।

> १. च.पश्चिम। २. च. संवार। ३. च. उत्तर। ४. मो. Srog Bab Paḥo (प्राणवाहो)।५. मो. bDen Bral Du (तैऋत्ये)।६. मो. dBaṅ lDan Du (ईशे)।७. च. पूर्वं।८. च. दक्षिण।९. च. ं कं र्रकान नाम माणणा जबाङ ङा।१०. च. मध्ये।११. च. वजा।१२. मो. शि।

T 420

30

36

यत्र डाकिनीबीज 'दीर्घतत्र डाकवीज हस्वम्, यत्र हस्व तत्र ^{*}दीर्घम् । स्लृबष्मा 'सिवष्म यत कार्यापारः। र प्रवच्या व्वच्च इति । एवं सर्वत्र वक्ष्यमाणमिति । एवं मण्डले भार वर्षा यजेत हिंगुणं डाकिनीजालसंवरमिति नियमः। इह वृश्चिकधनुरादिना यो विलोमेन न्यासः, स प्रपञ्चेनोक्तः। अत्र द्वादशाङ्गनिरोधेन विवृत्या परमार्थसत्यतो धनुर्वृहिच्-कार्दिवलोमेन पीठोपपीठादिन्यासः । संवृत्या मकरकुम्भादिक्रमेणोपपीलवादि-न्यासो हादशाङ्गप्रतीत्यतः। यथा त्रिचक्रसंवरे एकः प्रचण्डाचण्डाक्ष्यादिना विलोमेन पीठादिन्यासः, द्वितीयो महावीर्यादिना। "अनुक्रमेणोपश्मशानादिना। अत्र लोक-व्यवहारे या संवृतिः सा विवृतिरिति ज्ञेया । एवं वाय्वाद्यारेषु दीर्घा रविचरणवज्ञाव दक्षिणनाड्यां प्राणचरणवशादिति। अध्वाद्यारेषु हस्वाः [174b] शिक्षचरण-वज्ञादिति वामनाड्यां प्राण'संचारवशादिति न्यास उक्तः। क्रमेण पूनः संवत्या उपपोलवादिना मकरादिमण्डलेषु क चटपतस वर्गाणां वर्णा दीर्घा हस्वा देया:। ककारादयो "छकारादिस्वरिभन्ना विवृत्या ~ कादयो ह्रस्वा अकारादिस्वरिभन्ना धनुवंश्चिकादिमेदेनेति । एवं पृथिन्यादयो वाय्वाद्यारेषु दक्षिणमण्डले वाहत कर्ध्वाद्यारेषु आकाशादयो वाममण्डलप्रवाहत इत्यध्यात्मनि नियमः ॥२९॥

डाकिन्यो हस्वभावाः शशयरवदनाः कतिकाशक्तिहस्ता आलीढाः स्वस्वपात्रैर्दनुजरुविरपा मुक्तकेशा विवस्त्राः। पादे कटचां ललाटे श्रवणगलकरे घर्ष्राद्यस्थिमुद्रा माला खण्डै: कपालै: शिरसि कटितले पञ्चवर्णैर्जिनानाम् ।।३०॥

इयास्या डाकाः करेषु सुपविडमरुकौ वज्रखटवाङ्गघण्टे कण्ठे श्रीमुण्डमाला शिरसि च मुकुटो वज्रपट्टे मणिश्च। श्रीकण्ठी नूपुरोङ्घ्रौ रुचकमपि करे मेखला कुण्डलानि माला पूर्णेः कपालैः सकलतनुगता दंष्ट्रिणो भस्ममुद्रा ।।३१॥

भर्तुर्माला कपालै: शिरसि च गलके मुण्डमाला शतास्यै-रघेंन्दुर्वे जमीली स्वकटिकरगतं द्वीपिचमेंभचमं । मारेशो पादमूले शशिरविहुतभुङ् मण्डलेऽङ्गे च भस्म मृद्रा नागेन्द्रयुक्ता प्रलयशिखिनिभा डाकिनी चुम्बमाना ॥३२॥

दिक्पत्रे डाकिनीनामधिकडमरुको वज्रखट्वाङ्गमेव विष्मृत्रासृङ्नृमांसैविदिशि दलगतं शुक्रपात्रं करे च ।

१-२. च. दीवें। ३. मो. खि । ४. मो. \simeq पु । ५. च. अत्र, मो. 'अन्' नास्ति ।

तद्वच्चाष्टी च देव्योऽप्युभयसुखसमापत्तिचकं समन्तात् पीता इवेताऽरुणाभाऽसितहरितवपुर्नीलवर्णाः स्वदिक्षु ॥३३॥

वर्णाहिचह्नानि भर्त्जिनजनककुले पूर्ववत् त्र्यक्षजाल-मन्योन्यालिङ्गनं च स्वपरकुलवशाद् वेदितव्यं समन्तात्। नानाद्येः स्कन्धभूतैर्विषयविषयिभिश्चान्यपञ्चेन्द्रियाद्ये-दिनक्ष्माभिदिग्बलैः श्रीजिनसुतवसिताभिश्च देव्यो विशोध्याः॥३४॥

शेषाण्यत्र पञ्चवृत्तानि सुबोधानि ॥ ३०-३४॥

इदानीं देवीनां पीठादिस्थानमुच्यते-मेरोदिक्ष्वष्टभेदेदिशिविदिशिगतं सर्वपीठोपपीठं क्षेत्रं छन्दोहमेलापकचितिभवनं वेश्मवायवर्धसीम्नः। बुद्धस्यैतार्कभूम्यामण् तनुजनुणां भूतदेवासूराणां शक्तेभंतुर्दिनैकं विचरति कूलिका सूर्यचन्द्रप्रचारातु ॥३५॥

मेरोरित्यादि । इह मेरोरष्ट्रदिक्ष ऊर्ध्वे योगिनीचकं वायुवलयान्तम्, अधोभूम्यां सत्त्वार्थाय सञ्चार: । एवं समुद्रवलयेऽग्निवलये वायुवलये आकाशान्त इति पञ्चलक्षयो-जनं यावल्लोकधातुमण्डले सत्त्वानां शरीरे केशान्तं व्यापकत्वम्, भगवतो योगिनीसंचारत इति । इह मेरुमूर्धिन पञ्चाशत्सहस्रयोजनं गर्भपद्मं षोडश दलं भगवतः । तस्य त्रिभागा कणिका, कणिकोपरि सूर्यमण्डलम्, सूर्योपरि कालचक्रस्य दक्षिणपादतले मारः,वामपादतले क्लेशः, स च रुद्र इति । अष्टदलेषु घूमाद्या वच्चडाकिन्योऽष्टौ । तासामन्तरान्तरे दलेष्वष्टौ कपालान्यमृतपूर्णानि । एवं षोडशदलमानन्दचक्रं षोडशानन्दभेदेन देव्याः कपालानि च । भगवांश्चतुर्विन्दुधरत्वाच्चतुर्मुखः, चतुर्विशतिपक्षरोधतः चतुर्विशतिकरः, अधिकमास-पक्षयोनिरोधतो द्वचिधकजिनकरः, पूर्वोक्तो वच्चवेग इति । भगवत्या एकमुखं श्नयता, भुजद्वयमनिमित्ताप्रणिहिते, कर्तिकाकपालमुद्रादयोऽनिभसंस्कार इति । ततः पद्मबाह्ये मेरोरप्टदिक्षु दिग्विभागेन पञ्चिविशत्सहस्रयोजनं भूमिवलयमानेन ज्ञानघातुचक्रम्, तस्य त्रिभागभूम्यां कर्तिकावली, भागद्वयेनाष्टारम् । एवं समुद्राधे पृथ्वीचक्रम्, अपरार्धे तीय-चक्रम्। एवमग्निवलयार्थे विह्नचक्रम्,अपरार्थे वायुचक्रम्। एवं वायुवलयार्थे आकाशचक्रम्, अपरार्घे रजोभूमिः। आकाशवलये पोडश श्मशानानीति नियमः। इह हि केशान्त पञ्चहस्तं शरीरम्, तेनाकाशमण्डले बाह्यश्मशानानि, तद्विशुद्ध्या लोकघातुश्च पञ्च-लक्षयोजनानि महाचकसंवरे । एवं यथाक्रमेण मेरोरप्टदिक्ष ज्ञानधातुचके पोठानि

१. ग. 'दलं भगवतः""मकरे । ततः' नास्ति ।

९ त. मो. संबर्ध । ७ मो ्र प्रिन्त Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

15

20

T 421

दिगारेषु, धर्तुनिरोधेन जरामरणिनरोधत उपपीठानि विदिगारेषु वृश्चिकनिरोधेन वितिनरोधतः। एवं इमशानद्वयम् । ततः पृथ्वीधातुचक्रे दिगारेषु चत्वारि जातापुरा । विदिगारेषूपक्षेत्राणि कत्यानिरोधेनोपादान-क्षेत्राणि तुर्लानिरोधेन भवनिरोधतः। विदिगारेषूपक्षेत्राणि कत्यानिरोधेनोपादान-निरोषतः। एवं इमधानद्वयम्। ततस्तोयधातुचके दिगारेषु छन्दोहाश्चत्वारः सिहिनरोधेन तृष्णानिरोधतः। विदिगारेषूपच्छन्दोहाः कर्कटिनरोधेन वेदनानिरोधतः। एवं इमशानद्वयम् । ततस्तेजोघातुचक्रे दिगारेषु मेलापकाश्चत्वारो मिथुनितरोधेन स्पर्शनिरोधतः। विदिगारेषूपमेलाप[1752]का वृषनिरोधेन षडायतनिनरोधतः। एवं इमज्ञानद्वयम् । ततो वायुघातुचक्रे दिगारेषु चत्वारि इमज्ञानानि मेपनिरोधेन नाम-रूपनिरोधत इति। विदिगारेषुपश्मधानान मीननिरोधेन विज्ञाननिरोधतः। एवं इमशानद्वयम् । तत आकाश भानुचक्रे दिगारेषु चत्वारि पीलवानि वेदमानि वा कुम्भ-तिरोधेन संस्कारनिरोधतः। विदिगारेषुपपीलवानि मकरनिरोधेनाऽविद्यानिरोधतः । एवं श्मशानद्वयम् । लग्नचतुःसन्ध्यानिरोधेनापरश्मशानचतुष्टयम् । अथ षोडशचन्द्र-कलानिरोधेन षोडश श्मशानानि । एवम् — ''द्वादशाकारसत्यार्थः षोडशाकारतत्त्विवद्" (ना॰ सं ९.१५) अष्टप्रहरिनरोधेनाष्टी देव्यः। अथ वारिनरोधत इति विवृत्याधारे देव्यो निरावरणा आधेयस्वभावा इति । परमार्थसत्यतः लोकसंवृत्या पुनर्मन्त्रदेवतोत्पादः पीठादिके भगवता मूलतन्त्रे उक्तः। तद्यथा —

> कामरूपं च जालास्यं पीठं पूर्णगिरिस्तथा। ओड्रियाणं चतुर्थं स्यात् शिष्रॅप्रस्टषु नायिकाः ॥ गोदावरी च रामेशं देविकोट्टं च मालवम्। उपपीठानि चत्वारि स्ॡ्रं पूष्इयेसु नायिकाः ॥ अर्ब्दं मृत्मृतीक्षेत्रम् ओड्रं कार(रु)ण्यपाटकम्। घिद्युत्छ इति देवीनामाधारो वसुधातले॥ त्रिशक्नीत्युपक्षेत्रं कर्मारपाटकम् । तथा कोशलं लाडदेशं च त्लृथ्दृध्येषु नायिकाः॥ किल्ङ्गं हरिकेलं च छन्दोहं च चतुर्विधम्। चन्द्रद्वीपं च लम्पाकं भिवृकुष्छसु नायिकाः॥ काञ्ची कोङ्गुणकं तथोपच्छन्दोहं च हिमालयम्। [°]चतुर्थरचैव नेपालं प्लूफूवॄभ्येषु नायिकाः॥ मातृगृहं प्रयागं च कोल्लगिरिग् हदेवताः। मेळापकं चतुर्था स्याद् ढिड्टुठुट्छमु नायिकाः॥

20

25

33

सौराष्ट्रं चैव काश्मीरं मुवर्णद्वीपं सिंहलम्। उपमेलाकस्तेषु ट्लृठूडुढचेषु नायिकाः॥ नगरं महेन्द्रशैलं च सिन्ध्देशं किरातकम्। चतुर्विधं श्मशानं स्याद् झिजृछुच्छमु नायिकाः॥ मरुदेशं गह्नरं च कूलता भसमलं तथा। उपश्मशानमेवोक्तं च्लृळूजृझ्येषु नायिकाः॥ ^२चरित्रं हरिकेलं चैव विन्ध्यं कौमारिकापूरी। चतुर्घा पीलवं ख्यातं घिगुखुक्छषु नायिका॥ उपवेश्म विरजाः कोङ्कं त्रिपूरी श्रीहट्टकम्। चत्रविधमिदमाख्यातं क्लृख्गृघ्येषु नायिकाः॥ द्वादश व्यादयो दूत्यः शुन्यमण्डलनायिकाः। चतस्रो हादयो बाह्यश्मशानेषु च षोडश ॥ अ आ अं अः ह हा हं हः दूत्यः पद्मदलेषु ताः। अष्टस्वेव कपालानि कणिका खेट³नायिकाः॥ द्वादशाञ्जनिरोधेन लग्नाधारप्रत्यहतः । भमयो द्वादश ख्याताः पीठाद्याः परमार्थतः॥ अविद्याद्यनुलोमेन संवृत्या मकरादिष्। ता जरामरणादयः॥ धनुराद्या विलोमेन कायघातवः। डाकिन्य: निरावरणधर्मेण धर्मशुद्धप्रभेदतः ॥ द्वासप्ततिविधाः प्रोक्ता संवृत्या मन्त्रसिद्धा यास्ता वेश्मादिषु नायिकाः। अथ ^{*}बीजाक्षरं तासां पीठादेरादि संभवेत् ॥ इति ।

तद्यथा — का जा पू ओ इति पी[175b]ठेषु। गो रा दे मा इति उपपीठेषु। अ मु "ओ का इति क्षेत्रेषु। त्रि क को ला इति उपक्षेत्रेषु। कह च ल इति छन्दोहेषु। का को गृ इति मेलापकेषु। सी 'का मु सि इत्युपकां को हि ने इत्युपछन्दोहेषु। मा प्र को गृ इति मेलापकेषु। सी 'का मु सि इत्युप- को वि की मेलापकेषु। न म सि कि इति इमशानेषु। म ग कुस इत्युपश्मशानेषु। "च के वि की इति पीलवेषु। वि को ति श्री इत्युपपीलवेषु। तथा थोडशस्मशानेषु वायव्यद्वारे वाम-इति पीलवेषु। वि को ति श्री इत्युपपीलवेषु। तथा थोडशस्मशानेषु वायव्यद्वारे वाम-इति पीलवेषु। के कल ल कं एवं को ल हल ल को। अथ ंक ंक ल ल कं एवं को ल हल ल को। अथ ंक ंक ल ल ल हैं एवं को ल हल ल को। अथ ंक ंक ल ल ल के एवं को ल हल ल को। अथ ंक ंक ल ल ल के एवं को ल हल ल को। अथ

१. च. ममस्रम् । २. च. हरिद्रं । ३. भो. gTso Bo (नायकः) । ४. च. बीजाङ्कुरं ।

पटले, ३५-३६ वलो.]

25 T 422

ेषु सार्वशे स पिह्नमवायव्यदारे। अथ न ना क्लू क्लू उत्तरदारे बालमृत्यो वा ^{*}ईववरे। अथ म मा शवदहने शा घोरयुढे घ। अथ ण णा दक्षिणनैऋंत्यदारे शूलभेदे शू, अथ भ मा शवदहने शा घोरयुढे घ। अथ ण णा दक्षिणनैऋंत्यदारे शूलभेदे शू, उच्छिछरे उ। अथ ज जा पूर्वानेनयदारे आग्नेयदारवामदक्षिणयोः, भीमे भी, भयंकरे म । अथ ह हा नैऋंत्य-अथ ङ अ ईशानदारवामदक्षिणयोः, हहाकारे हे, अष्टुष्टहासे आ। अथ ह हा नैऋंत्य-द्वारवामदक्षिणयोः, रौद्रनादे रौ, केत्कारे के। अथ क्ष सा इति पोडश्यसम्भानदेवी-वीजानि। एवं द्विगुणं झाकिनीजालसंवरं लीकिकदेशव्यवहारेण वालजनावतारणा-योक्तम्। विवायंमाणं कामरूपजालन्वरादिपीठादिकं मृषा, एकविषयेऽपि कोटिग्रामाधिदेवे पोठादीनामुक्तवात्। तथा भोटचीनमहाचीनादितु पण्णवितविषयेषु कोटिकोटिग्रामाधिदेवे व्यवत्वत्वताव्यापकत्वं दूतीनाम्। तेन मूलतन्त्रं भगवतोक्तम्। तद्यथा—

पोठं पूर्वविदेहं स्याज्जम्बूहीपं च दक्षिणे। पश्चिमेऽपरगोदानी उत्तरकुरुरुत्तरे॥ उपदीपं विदिक्षु स्यादुपपोठं पृथ्वीतले। एवं क्षेत्रादिकं सर्वं समुद्रबलयादिषु॥ इति।

अतिस्त्रचक्रसंवरे हेवच्ये पूर्वापरवचनविरोधो भगवतो यः, स सत्वानां ग्रहमोचनाय तीक्ष्णेन्द्रियाणाम् । इह हि यानि पोठोपपीठादीनि चक्रसंवरे उक्तानि, तानि हेवच्ये क्षेत्रोपत्रेत्रादीन्यस्तव्यस्तानि प्रोक्तानि । यथा लौकिकसिद्धयोऽपि योगिनां बाह्यपीठादौ न संभवन्ति । अध्यात्मनि द्वादशलग्नानि द्वादशाविद्याद्यङ्क्षानि निरुद्धानि जरामरणादिनिरोधेन धनुरादिना पोठादीनि बोद्धव्यानि । तेषु पीठादिषु तथागत-विशुद्धस्त्रन्थधात्वायताचिद्यात्नूतां देवतारूपेणागमनं गमनं वाऽतीतकाले अभृतम्, वर्तमाने भवति, अनागते भविष्यत्यधिकारभोगलयभेदेन च । संवृत्या पुनस्त्रिचक्रसंवरे भोगलया-धिकाराधिपतित्वं सन्ध्याप्रहरलग्नाधंभेदेन चतुरष्टचतुविशतिदेवीनामुक्तम् । अत्र पद्चक्रमहासंवरे लग्नाण्डलप्रवाहिष्यातिक्रं च नत्रप्रचक्रमहासंवरे लग्नाण्डलप्रवाहिष्याधिकारो भोगो लयदचित । अत्राधिकारो नाम प्राणाधिष्ठानम्, स एव भोगोऽधिपतित्वं च, लय इति गम्यस्थानम् ॥ ३५॥

देवीपृष्ठेऽधिकारो लय इह पुरतः पञ्चतत्त्वस्वभावे-र्वास्त्रीशे दैत्यवह्नघोरधिस च खसुरे याम्ययक्षापरेषु । उष्णीपे हत्प्रदेशे गलिशारिस गते नाभिगृह्ये तु चके चकेऽष्टारे तलोध्वं प्रतिदिनमकराद् द्विद्विलग्नान्तराले ॥ ३६॥

25

तेन वेबोपुर्व्डेडिकारो लय इह पुरतः पञ्चतत्त्वस्वभावेरित्यादि वितन्यते । इह मकरलम्ने पञ्चरण्डात्मके प्रयमदण्डे पृथ्वीमण्डलं दक्षिणनाड्यां नाभौ [176#] द्वादश-दलेषु भकरदलस्य परिचमदिग्विभागे प्राणप्रवाहोऽधिकारो वाय्वार इति कत्पना । इह यदा प्राणशक्तेर्देग्याः पृथ्वीमण्डलेऽधिकारः स्थितिस्तदा भेमध्यतोयमण्डले लयः। पुनर्जनमग्रहणं पूर्वस्य निरोघोऽपरस्य उत्पादः स्वाध्यायदीपादिदृष्टान्तवदत्रापि मार्णान्तिकौपपत्यिङ्गिकधर्मणोरिति । तेन पृथ्वीमण्डलेऽधिकारस्तोयमण्डले लयः, तोयमण्डलेऽधिकारस्तेजोमण्डले लयः, तेजोमण्डलेऽधिकारो वायमण्डले लयः, वाय-मण्डलेऽधिकारः श्नयमण्डले लयः, श्नयमण्डलेऽधिकारो ज्ञानमण्डले लय इति मकरे। ततः कम्भदले ^९मध्यमायां यः संचारः, स चक्रे ऊर्ध्वे उक्त इति । इह ज्ञानमण्डले यदा अवधत्यामधिकारस्तदा वामनाड्यामाकाशमण्डले लयः, यदा ^अआकाशेऽधिकारस्तदा वायौ लयः, एवं वायावधिकारस्तेजसि लयः, तेजस्यधिकार उदके लयः, उदकेऽधिकारः पथिव्यां लयः, पृथिव्यामधिकारो ज्ञानमण्डलेऽवधत्यां लयः। एवं मीनमेषमण्डलेषु, तथा वृषमिथुनयो:, कर्कर्टीसहयो:, कन्यात्लयो:, वृध्चिकधनुषोरिति पष्टिमण्डलेषु भोगलयाधिकारास्त्रिलग्नान्ते चत्वारो मध्यमायां वेदितव्याः। 'एवं वाय्वीशे दैत्य-बह्नचोरधिस च खसुरे याम्ययक्षापरेषु दशसु मण्डलेषु, चकारात् ज्ञानमण्डलेऽपि। मकरे कुम्भे, एवमन्ये[ब्व]पीति । इदानीं मकरादीनामाधारचक्रनाड्य उच्यन्ते-उष्णीष इत्यादि । इहोष्णीयचक्रप्रथमपरिमण्डले चतुर्नाड्यः, मध्ये एका । एवं हृदयादिचकाणाम् । तेनोऽणीयचके मकरकुम्भयोर्वायव्यारादिसंचारः, "पूर्वे चक्रस्याकाशशृद्धितो वच्चचिह्नम्। तेन मण्डले आकाशचके 'वज्ञावली। एवं हृदयस्वभावतो वायुचके खङ्गावली मीनमेषयोः । एवं गलगते तेजःस्वभावतश्तेजश्चके रत्नावली वृषमिथुनयोः । शिरसि गते तोयस्वभावतस्तोयचके पद्मावली कर्कटसिंहयोः । नाभिचके पृथ्वीस्वभावतः चकावली कन्यात्लयोः। गुह्यचके ज्ञानस्वभावतः कर्तिकावली वृश्चिकघनुषोरिति। एप चक्रेब्विटाष्टारेपु तलोध्वं च प्रतिदिनं मकरलग्नादारभ्य एप सञ्चारों योगिना प्राणस्य वेदितव्यः । इह यत्र यत्र प्राणोऽधिकारं करोति, तत्र "तत्र मण्डलनायिकाया नाम्ना सार्धं भगवतोऽष्टचत्वारिशत्पदिकस्यैकपदं गृहोत्वा जपेत् प्राणप्रवाहेण, नाक्षसूत्रेणेति । एवं षोडश^रपदिकस्यैकपदं गृहीत्वा रमशानदेवीनामसहितं जपेद अष्टपदिकं कमलदलाष्टदेवोभिः सहेति वक्ष्यमाणम् । एवं मकरादिद्तीनां द्विद्वि-लग्नान्तराले चक्रसंचारो दश दश दण्डेष्। एवमहोरात्रेण पष्टिदण्डै: पष्टिमण्डलेष् संचारः प्राणस्येति । एव^भेमत्र दनुजनरभूतदेवासुरादीनां स्वस्वदिने स्वस्वमण्डलेषु योगिनीसंचार उत्पादप्रलयहेतुभूतः -

महामाया महारौद्रा भूतसंहारकारिणी। यथा तथा स्वयं कर्ता हर्ता वज्ज्ञघरः स्मृतः॥

र. च. मध्ये । र. च. मध्ये । ३. भो. michahi dKyil hKhor (आकाषमण्डले) । ४. भो. 'एवं' नास्ति । ५. भो. Dan Po La (प्रथमे) । ९. ग. 'वध्यावली''' वायुचके' नास्ति । ७. ग. 'तत्र' नास्ति । ८. ग. पदस्य, भो. rKan Pa Re Re स्पैकेकपदं) । ९ ग. सकमलदले । १०. ग. मण्डलनु, भो. Lus Las sKyes Pahi Phra Mo (एवमणुवनुन) ।

१. च. स्लु । २. भो. dBan iDan Du (ईहो) । ३. च. कृतं । ४. च. लखे मकर ।

पटले, ३७-३८ क्लो.]

प्रज्ञापारमिता कर्त्री कर्ता बुद्धो न देहिनाम्। हन्त्री हर्ता न बौद्धानां देशितो भूतवादिना॥ कायवाङ्मानसं कर्म यः करोति शुभाशुभम्। सत्त्वस्तस्य फलं भुङ्क्ते कर्ता नान्योऽस्ति कस्यचित् ॥

इति भगवतो नियमः ॥ ३६॥ इदानीं नायकासनम्च्यते[176b]— भन्नंब्जं सर्वंवज्ञेः कुलिशमणिगतैश्चाक्षरैविन्दुभिश्च सर्वानन्दं समन्तात् समसुखनिलयं विज्ञणः सर्वेकालम् । तस्मिन् चन्द्रद्रवे यो विशति गुरुमुखे कालचकः स एव माराणां कालमुक्तं मरणभयकरं डाकिनीचक्रमेतत् ॥ ३७॥

भित्रत्यादि । इहोब्णीषादिषट्चक्रेषु योगिनीसंचारः ककारादिवर्णेः, तेन **भत्रंब्ज** ैमध्यकमलं मण्डले यत्तत्, सर्वेवज्रैरिति चतुर्विन्दुभिरक्षरैरित्यच्युतैः, कुलिशमणिगतैः कुलिशमणिगतं कमलं सर्वानन्दं समन्तात् समसुखनिलयमच्यतत्वाद् विज्ञणः सर्वकालं योगिनीनामानन्दजनकम् । अतस्तरिमश्चन्द्रद्रवेऽच्युते सुखे यो विशति गुरुमुखे ज्ञानवक्त्रे कालचकः स एव योगी भवतीति नियमः। एवमेतच्चकं कालमुक्तमित्यविद्यादि-धर्ममुक्तम् । माराणां स्कन्धादीनां चतुर्णां मरणभयकरं डाकिनीचक्रमेतदिति सर्वावरणविनिर्मक्तं नान्यदेवतागणं कल्पितमिति ॥ ३७ ॥

इदानीं लौकिकसिद्धिसाधनाय मन्त्रजाप उच्यते-प्रज्ञोपायाक्षराभ्यामुभयकूलवंशाद डाकिनीडाकनाम वज्रत्रयेणापरपदसहितेनादिमध्यान्तभिन्नम । प्राणेनाधिष्ठितं यद् ह्यभयगतिवशात् स्वस्वकर्मानुरूपं सिद्धि गच्छन्ति शीघ्रं रसगतिषु गता डाकिनीवच्चडाकाः ॥ ३८ ॥

प्रज्ञोपायेत्यादि । इह कालचके प्रज्ञो**पायाक्षराम्यामि**ति । **इह यत्र ³प्रज्ञाया** हस्ववीजं तदोपायस्याभिम्खकुलवशाद्दीर्धं भवति, यदा प्रज्ञाया दीर्घस्तदोपायस्य हस्वम् । एवमुभयकुलवज्ञाद् डाकिनीडाकनामेति शिवच्या स्लूवच्य इत्यादि । एवं स्लृबचा शिवचः। पृथ्वीवायुः(यू) परस्परं प्रज्ञोपायभेदतः। एवं तोयतेजसोः पृ-वचा र्पृवच इति । तथा र्पृवचा पृवच इति सर्वडाकिनीडाकानां नाम जाप्यमिद ब चत्रयेणापरपदसिहतेनादिमध्यान्तभिन्नमिति । आदावोङ्कारः, मध्ये मालामन्त्रस्या-दिमं पदादिकम्, ततो वच्चदूतीबीजं वच्चडाकसहितम्, ततो हस्व^रहुंकारं चित्तव**च्चम्**,

द्वासप्ततिपदेष्वष्टपदान्यादौ पद्मदलदेवीभिः सार्धम्, षोडशपदानि इमशानदेवीभिः सार्धम्, अष्टचत्वारिंशत्यदानि षट्चकवीरवीरेश्वरीनामसहितानि जाप्यानीति । अत्राष्टपदानि चतुःश्मशानपदानि मध्यमायां द्वादशप्रवेशेषु जाप्यानि प्राणेनाविष्टितानि । मकरादौ संक्रान्तिकाले शेषाणि षष्टिपदानि पञ्चमण्डलाधिष्टानेन प्राणाधिष्टतं यन्मण्डलं तस्या-धिदेवतासहितं मालामन्त्रं योगिनां सिद्धयति । वाहमेदे सिद्धि गच्छन्ति शीघ्रं रसगतिषु गताः पड्गतिषु गता भगवतः 'सर्वडाकिनीवज्रडाका इति नियमः। अत्र संवृत्योप-पीलवादिन्यासो मकरादिना कवर्गीदिना देवीमालामन्त्रे । तत्र द्वादशसंक्रान्तिपदानि । तद्यथा ॐ आः हुं होः हं क्षः हं क्ष्मल्ब्र्य कालचक्र हा वच्चे हुं हूं फडिति मकरसंकान्तो सपादधट्पञ्चाशत् स्वासजापः । एवं कुम्भसंकान्तो ॐ दुर्दान्त³दमक जातिजरामरणान्तक ³स्वा वच्चे हुं हूं फट्। ॐ त्रैलोक्यविजय ^{*}हः वच्चे हुं हूं फडिति मीने। ॐ महावीरेश्वर "अः वर्ष्ये हं हुं फट् मेषे। ॐ वर्ष्यभैरव हः व**र्ष्ये** हं हुं फडिति वृषे। ॐ वस्त्रकाय अ: वज्जे हुं हूं फडिति मिथुने। ॐ वज्जगात्र हुं वज्जे हुं हूं फडिति ककंटे। ॐ वज्जनेत्र अं वज्रे हुं हुं फिडिति सिंहे। 🕉 वज्रश्रोत्र हा वज्रे हुं हुं फिडिति कन्यासंक्रान्ती। ॐ वज्राघाण 'ह वज्रे हं हं फडिति तुलायाम्। ॐ वज्रजिह्न क्षा वज्रे हं हं फडिति वृष्टिचके। ॐ वष्प्रदन्त क्ष वच्चे हुं हुं फडिति धनुःसंक्रान्ती श्वासेन साध जपेत्। [177a] इति द्वादशसंकान्तौ ज्ञानमण्डलजापः। ॐ वज्जनख क्लृ वज्जे चिवज्ज हं हूं फडिति मकरपृथ्वोमण्डले सपादैकादशोनषष्ट्युत्तरत्रिशतजापः। एवं सर्वत्र पष्टिमण्डलेषु । ॐ वज्जनेश खू वच्चे गृ वज्ज हुं हूं फडित्युदने । ॐ वज्जलोम गॄ वच्चे खु वच्च हुं हुं फडिति तेजिस । ॐ वच्चाभरण घी वच्चे क्छ वच्च हुं हुं फडिति वायौ । యి वफ्रहास 'दा वफ्रे हुं हुं फडिति आकाशमण्डले श्मशाने भगवानुपायस्तेन द्वितीयबीजाभाव:। एवं सर्वत्राकाशमण्डले ज्ञेय:। ॐ वज्रगीत द वज्रे हुं हूं फडिति कुम्भाकाशमण्डले स्वासजापः। ॐ वज्जन्त्य घि वज्जे क्लू वज्ज हुं हुं फडिति वायौ। ॐ वज्रायुधक गृवज्रे खुवज्र हुं हुं फडित्यग्नौ। ॐ वज्रक्रोधाधिपते खुवज्रे गृ वच्च हं हं फडित्युदके। ॐ वच्चडाक वरू वच्चे घी वच्च हं हं फडिति पथ्वीमण्डले श्वासजाप:। एवं ^{१०}कवर्गो गतः। ततो मीने ॐ वच्चडाकिनीजालपरिवृत च्लु वच्चे िस वन्न हुं हूं फिडिति पृथ्वीमण्डले स्वासजापः। ॐ शोघ्रमागच्छागच्छ छू वन्ने ज् वन्न हुं हुं फडिति तोये। ॐ वज्जसत्त्वाज्ञया सर्वमारिवघ्नविनायकिकन्नरिकम्पुरुषगरुड-गन्धर्वयक्षराक्षसभृत भेप्रेतकूम्भाण्डापस्मारक्षेत्रपालवेतालपूतनादुष्टनागग्रहादयो ये सर्व-ज्वरसर्वव्याधिभिः क्षुद्रोपद्रवकारिणः सर्वसत्त्वापकाररताः, तान् सर्वान् जः शोघ्रं वष्णाङ्कशेनाकृष्याकृष्य ज् वस्त्रे छ् वस्त्र हुं हुं फडित्यग्निमण्डले । ॐ ऊर्ध्वदिशि गता-

दीर्घ बाग्वचम्, अन्ते फट्कारमिति । "ततो मालामन्त्रो ट्रामिति । ति प्राप्ति । ति । ति प्राप्ति । ति बज़ '''' बाक़ुष्य ढि' नास्ति । ८. च. हां । ९. च. हं । १०. भो. Ka sDe La १. ग. मर्वृदित्यादि। २. ग. मध्ये । ३. ग. प्रज्ञा । ४. च. हंकार । ५. ग. तत्र ।

१. भो. rDo rJe mKhah hGro Ma (वष्प्रदाकिनी)। २. भो. दमकः । ३. ग. मो हवर्जा ४. ग. ह, भो. आ । ५. ग. मो. अ । ६. ग. आ । ७. ग. 'स

38 नाक्रुष्याकृष्य सी वज्रे च्छ वज्र हुं हूं फडिति वायौ । ॐ पूर्वदिशि गतानाकृष्याकृष्य जा वच्चे हुं हूं फडिति आकाशमण्डले रमशाने। ततो मेषे ॐ दक्षिणदिशि गताना-कृष्यकुष्य त्र बच्चे हुं हूं फडित्याकाशमण्डले श्मशाने । ॐ उत्तरिदिशि गताना-कृष्याकृष्य झिवजे च्लु वर्ज हुं हुं फडिति वायौ। ॐ पश्चिमदिशि गतानाकृष्या-कृष्य जुबचे छूबच हुं हुं फडिति तेजिस। ॐ वायव्यदिशि गतानाकृष्याकृष्य छु बच्चे जुबच्च हुँ हूं फडिति तोये। ॐ ईशदिशि गतानाकृष्याकृष्य च्छ वच्चे झौँ वक्त हुं हुं फडिति पृथ्वीमण्डले स्वासजापः। ततो वृषलग्ने ॐ नैऋत्यिदिशि गताना-क्रव्याकृष्य ट्लू वर्ष्णे ढि वष्म हुं हूं फडिति पृथ्वीमण्डले श्वासजापः। ॐ आरनेय-दिशि गतानाकुष्याकुष्य ठूवच्चे डूवच्चे हुं हूं फर्डिति तोये। ॐ अधोदिशि गताना-कृष्याकृष्य इ वच्चे ठु वच्च हुं हूं फडिति तेजिस । ॐ आकाशमण्डलगतानाकृष्याकृष्य हो वच्चे ट्लृ वच्च हं हं फडिति वायौ। ॐ वाय्मण्डलगतानाकृष्याकृष्य णा वच्चे हुं हुं फडिति आकाशमण्डले श्मशाने श्वासजापः। ततो मिथने ॐ तेजोमण्डल-गतानाकृष्याकृष्य ण वच्चे हं हं फडिति आकाशमण्डले श्मशाने श्वासजापः। ॐ उदकमण्डलगतानाकृष्याकृष्य ढि वच्चे ट्रहू वच्च हुं हं फडिति वायौ । ॐ पथ्वीर मण्डलगतानाकृष्याकृष्य ड् वज्रे ठू वज्र हुं हुं फडिति [177b] तेजिस । ॐ काम-धातुगतानाकृष्याकृष्य ठ वच्चे ड वच्च हं हं फडित्युदके। ॐ रूपधातुगतानाकृष्याकृष्य ड्लू बज्जे हो बज्ज हुं हुं फडिति पृथ्वीमण्डले श्वासजापः। ततः कर्कटलग्ने ॐ अरूपघातुगतानाकृष्याकृष्य प्ल बच्चे भि बच्च हं हं फडिति पृथ्वीमण्डले इवासजापः। ॐ कायधातुगतानाकृष्याकृष्य फू बच्चे वृ बच्च हुं हुं फडिति तोये। ॐ वाग्धातुगताना-कृष्याकृष्य वृ वच्चे फु वच्च हुं हूं फडिति तेजिस । ॐ चित्तधातुगतानाकृष्याकृष्य भी बच्चे व्ह बच्च हुं हूं फडिति वायौ। ॐ पञ्चस्कन्धगतानाकृष्याकृष्य मा बच्चे हुं हुं फडिति आकाशमण्डले श्मशाने श्वासजापः । सिंहे ॐ पञ्चवातुगताना-कृष्यांकृष्य म वर्ष्मे हुं हूं फडिति आकाशमण्डले श्मशाने श्वासजापः। ॐ पञ्चे-न्द्रियगतानाकृष्याकृष्य भि वच्चे प्लु वच्च हुं हूं फडिति वायो । ॐ पञ्चविषयगताना-कृष्याकृष्य वृ वच्चे फू वच्च हुं हूं फडिति तेजिस । ॐ पञ्चकर्मेन्द्रियगताना-कृष्याकृष्य फु बच्चे वृ बच्च हुं हूं फडिति तोये। ॐ ैपञ्चकर्मेन्द्रियविषयगताना-कृष्याकृष्य प्रु वर्चे भी वच्च हुं हूं फडिति पृथ्वीमण्डले स्वासजापः। ततः कन्यालग्ने ॐ सर्वत्र यत्रकुत्रचिद्गतानाकृष्याकृष्य त्लू विश्वे घि वस्त्र हुं हूं फडिति पृथ्वीमण्डले इवासजाप: । ॐ महाश्मशाने वच्चारिनज्विलितभूम्यां निपातय ^वनिपातय यू वच्चे दृ बचा हुँ हूं फर्डिति तोये। ॐ बच्चपाशेन सर्वभुजेषु बन्धय बन्धय दृ बच्चे अधु वचा हु हूं फडित्यग्नो । ॐ वच्चन्यृह्मलया सर्वपादेषु निरोधय निरोधय धी बच्चे त्छ वच्च हु हूं फ़डिति वायौ । ॐ सर्वसत्त्वकायवाक्चित्ताक्षुद्रोपद्रवकाररतान् महाक्रोध 'बज्जेण चूर्णय चूर्णय ना बज्जे हुं हूं फडित्याकाशमण्डले श्मशाने। ततस्तुलालग्ने

ॐ वज्जखङ्गेन निकृत्वय निकृत्तय न वज्ज हं हं फडित्याकाशमण्डले इमशाने श्वासजापः। ॐ वच्चत्रिशूलेन भेदय भेदय घि वच्चे त्लू वच्च हुं हं फडिति वायौ। ॐ वज्जकितकया हन हन दृ वज्जे यू वज्ज हुं हूं फडिति तेजिस । ॐ वज्जवाणेन बिन्ध बिन्ध थुवर्च दुवच्च हुं हूं फडिति तोये। ॐ वच्चकीलकै: कीलय कीलय त्ख वर्चे घी वच्च हुं हुं फडिति भूमिमण्डले स्वासजापः। ततो वृश्चिकलग्ने ॐ वच्चमृद्गरेणा-कोटयाकोटय स्तु बच्चे शि बच्च हुं हुं फडिति पृथ्वीमण्डले श्वासजापः। ॐ बच्चचक्रेण छेदय छेदय 🔀 पूर्वाचे पूर्वाचा हुं हूं फडिति तोये। 🕉 वच्चकुन्तेन भिन्छ भिन्छ पुवर्जे 🔀 पुवर्ष्य हुं हूं फर्डिति तेजिस। ॐ वज्जदण्डेन ताडय ताडय शी वज्जे स्छ बच्च हं हं फडिति बायो। ॐ बच्चपर्श्ना छिन्द छिन्द 🄀 का बच्चे हुं हं फडिति आकाशमण्डले रमशाने स्वासजापः। ततो धनुलंग्ने ॐ सार्धित्रकोटिखण्डानि कृत्वा इमशानभूम्यां सर्वभूतेभ्यो वर्लि कुरु कुरु 🂢 क वच्चे हुं हुं फडित्याकाशमण्डले इमशाने रवासजापः। ॐ वच्चडमरुकेण वच्चडाकिनीरावाहयावाहय शि वच्चे स्लु वच्च हुं [178a]. हं फडिति वायो । ॐ वज्रडाकिनोभ्यो मारकायिकानां रुघिरं निवेदय निवेदय पु वज्रे 🔀 पू वच्च हं हं फडिति तेजिस । ॐ पञ्चामृतहारिणीभ्यः पञ्चामृतं निवेदय निवेदय र पुवक्र पुवक्र हुं हूं फडिति तोये। ॐ सर्ववक्रडाकिनीसहितः सर्वसत्त्वानां शान्तिकं पौष्टिकं रक्षावरणगुप्ति कुरु कुरु स्छ वच्चे शी वच्च हुं हुं फडित्य-विनमण्डले श्वासजापः। एवं मालामन्त्रं प्रतिदिनं 'श्वासचक्रसंख्यं जपेत् । अत्र नाक्षसूत्रं न मन्त्रोच्चारः, श्वासोच्छ्वासाभ्यां सह मन्त्राक्षराणां प्रवेशो निर्गमः पुष्पमालावदन्लोमविलोमेन चन्द्रसूर्यस्वभावेन द्रष्टव्यः। एवं पञ्चदिनैरष्टसहस्राधिको लक्षजापोऽध्यात्मनि योगिना कर्तव्यः। पञ्चशतदिनैः कोटिजापोऽष्टलक्षाधिकः व्वासानाम् । ततः कायशुद्धिरेवं वाग्विशुद्धिस्तथा चित्तविशुद्धिः । एवं पञ्चशतदिनैः व्वासो निष्कम्पो भवति । कुम्भकावस्थां प्राणः प्राप्नोति । ततः पञ्चाभिज्ञा जायन्ते योगिनामिति वज्रजापक्रमो नपंसकजापक्रमो वा वामदक्षिणमध्यमाप्राणसंचारेण भवतीति भगवतो नियमः ॥ ३८ ॥

इदानोमवध्तीश्वासैः कायवाक्चित्तज्ञानपञ्चचकैः सर्वबुद्धसंवरमुच्यते-

ये दवासा मध्यमायां सपदरसशरा जन्मकाले बभूवु-स्तैश्चकाण्यष्टके: स्युस्तलगगनवणाद् द्वारमध्यस्यदेव्यः। पादेनैकेन जाता त्रिभुवनजननी कर्तिकाशुक्तिहस्ता आलीडोऽर्केन्द्रमूर्षिन त्वमृतसुखकलालिङ्गितः कालचकः॥३९॥

ये श्वासा इत्यादि । इह मध्यमायां ये ³श्वासा जन्मकाले वालस्य सपादषट्-पञ्चाशत् श्वासाः सपदरसञ्चरा बभूतुः, तैश्वकाण्यष्टकैः स्युस्तलगगनवज्ञाद् द्वारमध्य-

१. घ. ग. 'पञ्च' नास्ति । २. ग. 'निपात्व' नास्ति । ३. ग. 'खू बुद्ध' नास्ति । ४. मो. बिखन् । Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

पटले, ३९-४२ क्लो.]

36

15

T 424

20

स्यदेव्य इति । एषां श्वासानां मध्ये कायवाक्चितज्ञानधर्मिणोऽष्टश्वासाः प्रज्ञोपायभेदतः, ते गर्भपद्मदलेऽष्टी देव्यः। अत्र कपालानि न भवन्ति वीरादच अष्टी रूपविशुद्ध्या पृथ्वीचके, अधी संज्ञाशुद्धवा तोयचके, अष्टी वेदनाशुद्धवा तेजश्चके, अधी संस्कार-विशुद्धवा वायुचके, अष्टो विज्ञानविशुद्धचाऽऽकाशचके, अष्टो 'ज्ञानशुद्धचाऽष्टरमधा-नेषु । एवं गुह्मनाभिहृदयकण्ठलाटोष्णीयचक्रेषु पट्सु अष्टचस्वारिशत् । एवं घ्राण-रन्ध्रयोद्दीं, नेवरन्ध्रयोद्दीं, श्रोवरन्ध्रयोद्दीं, जिह्वामुखोष्णीषरन्ध्रयोद्दीं—इति देवीगणः। एवं षट्पञ्चाशत् । शेषपादेनैकेन जाता त्रिभुवनजननी विश्वमाता **कर्तिकाशुक्तिहस्ता**, तया प्रत्यालीहया अमृतकलया आलीडोऽर्केन्दुमूब्नि मारक्लेशोपरि स्थित आलिङ्गितः कालचको भगवान् परमाक्षरसुख इति। एषां श्वासानां बीजानि वक्ष्यमाणेन रणलाचा यास्त्वष्टमात्रा" (का० त॰ ५.१२८) इत्यादिना वक्तव्यानि, तेनात्र न लिखितानि । अत्र नीतार्थः - सर्वकालं योगिना मध्यमायां प्राणो भाविय-तव्यः, प्रवेशनिर्गमतया यावत् स्थिरीभवति कुम्भकावस्थां गच्छति सर्वकालम्, ततो योगी पञ्चाभिज्ञालाभी भवति प्राणजापत इति भगवतो नियमः। एवं "जपेन्मन्त्र-मभिन्नाङ्गं प्राणयुक्तं मन" इति सर्वतन्त्रेषु वज्रपदं पूर्वोक्तम् । यद्यपि मन्त्रोच्चारणाक्ष-[1785]सूत्ररहितः प्राणजापस्तयापि जाप इत्युच्यते, प्राणिनगंमप्रवेशादिति ॥ ३९ ॥

इदानीं बाह्ये बाडच्यात्मिन देवतासनशद्धिरुच्यते-पञ्चन्यर्चीन्द्मूर्या विषयगुणवशादासनान्यव्धिचारा वाराः सप्ताकंपूर्णा दिनकरशशिनश्चापराण्यासनानि । कृष्णा क्वेताकंपूर्णा दिनकरशशिनक्चापराण्यासनानि वाराः सप्ताकंपूर्णाः समविष्मपदे सूर्यचन्द्रासनानि ॥४०॥

पञ्चत्यादि । इहैकवीरस्यासनं चन्द्रः व्हाकं सूर्यो रज इति, पञ्चधातूनां प्रज्ञाधमं-त्वात् चन्द्रगुणाः पञ्चविषयास्तेऽत्र लोचनादीनां चन्द्रासनान्याकाशघातुपर्यन्तम् । गुणत्रववशाद् रत्नसंभवामिताभामोधसिद्धीनां त्रीणि सूर्यासनानि । चतुर्भूतात्मकं महा-रूपमिति, चतुर्षातुर्घमित्वाद् वैरोचनस्य चन्द्रासनम्, ज्ञानाचिर्घमित्वात् सूर्यासनं वेद-नादीनाम् "अरूपित्वं तु शेषाणाम्" इति वचनात् । एवं पञ्च चन्द्रमण्डलानि, चत्वारि सूर्यमण्डळातीति सत्त्वरजस्तमःसमताभेदेन । एवं नवात्मकः समाजः स्कन्मधातूनां गुणविषयाधारतः, यथा गर्मे जातकविज्ञानादीनां तथा देवतायामपि पुनरपराणि चत्वारि क्रोधासनानि । **ब्रब्धिचारा** इति सूर्यस्य रविकाधनऋणवृद्धि**हानिवशात् क्रोधानां** सूर्वासनानि । एवं क्रोधानां चारा इति त्रयोदशात्मकः समाजः, एवं समवाराः सूर्या-सनानि, हादशपूर्णादचन्द्रमण्डलानि, एकोनिविशदात्मकः समाजस्तुतीयः, कृष्णपूर्णा अमावास्या प्रतिवर्षे द्वादश, इवेतपूर्णा पौर्णमास्यो द्वादश, एवं चतुर्विशतिः सुयंचन्द्रा-सनानि नायकस्य कुलवशाच्चन्द्रो वा सूर्यो वा । एवं पञ्चविशदात्मकः समाजो देवता-नामाधारभेदत इति । पुतस्तेषु मध्येऽपरसप्तवारासनानि क्षिप्तानि द्वात्रिशदासनानि भवन्ति । पञ्चस्कन्धचतुर्घातृनां द्वादशायतनानामेकादशकोधानामिति द्वात्रिशदात्मकः समाजः । पुनः समविषमपदे प्राणस्य गतिः सुर्यासनमागतिश्चन्द्रासनम्, तेन चतुर्स्त्रि-शदात्मकः समाजः। एवं षट्प्रकारो यथा गर्भे बालस्य धातुनामाधाराधेयमेलापकस्तथा देवतानां मीलनमितिन्यायात् षट्प्रकारः समाजः ॥ ४० ॥

इदानीं त्रिचकसंवरे आसनशुद्धिरुच्यते-आराश्चन्द्रार्कंचाराः कमलदलचतुर्द्वारकोणासनानि भयश्चारा द्विगुण्या दिनकरशिषानश्चासनान्येव तानि । पूर्णा वाराकंचाराः समविषमपदे चासनान्यव्यिचाराः सुर्ये वा पूर्णचन्द्रे भवति कुलवशान्नायकः संपूरे वा ॥४१॥

आरा इत्यादि । इह त्रिचक्रे आराश्चत्रिंकातिः, ते च "भूता भूतेषुवेदा गुणकर-হাহান" (का॰ त॰ १.३२) इति पूर्वोक्ताश्चन्द्रचाराः पञ्जविशतिः, तेषां चतुविशति-स्त्रिचकारा भवन्ति । एकः पद्मदलदेवतायाः पत्र्वविश्वतितमः, प्रेतासनमिति । अकंचारा रसयुगराशित इत्येकादश, तेषां गर्भपद्मदलेषु त्रयः, शेषा अष्टौ अष्टश्मशानेषु शबरूपेणा-वस्थिताः, आरा इत्याधारः। शवा इति शवानि देवीवाहनानि। एवं त्रिचक्रसंवरः। भूयः पूर्वापरभेदेन चारा द्विगुणा महासंबरे देवीनामासनानि द्वासप्तिर्भवन्ति । एवं षट्चक्रसंवर:। मायाजाले पूर्णाश्चतुर्विशतिः शुक्लकृष्णाश्चन्द्रसूर्यासनानि, तथा सप्त-'वाराः सप्तसूर्यासनानि, अर्कचारा एकादश सूर्यासनानि । अय भावभेदेन चन्द्रासनानि, एवं त्रयश्च(त्रिच)त्वारिशदासनान्येके । समविष[1794]मपदेन पूर्ववच्चन्द्रसूर्या-सनमिति पञ्चचत्वारिशदासनानि द्वितीये । अव्यिचारा इति रविकाभेदेन चत्वारि सूर्यासनानि चन्द्रासनानि वा कायभावभेदेन भवन्ति । एवमेकोनपञ्चाशदासनानि तृतीये मायाजाले देवतानाम् । यथा गर्भे बालस्य प्राणस्याधारभता धातवस्तथा बाह्येऽपि परेऽपि सिद्धाः। एवं समाजमायाजालत्रिचकवट्चकसंवरपरिशृद्धिनियमः। तेषु तन्त्रेषु नायक: सूर्ये(यों) बाडरूपस्कन्धधमित्वात्, प्रज्ञाधमें चन्द्रे(न्द्रो)वा भवीत रूपधर्मित्वात्, वैरोचनः करुणाधर्मे चन्द्रमण्डले भवति कुलवशात् प्रज्ञाकरुणावशाद् नायकः, संपुटे वा प्रज्ञाकरुणाढये कालचक इत्यादिवृद्धो निरन्वयत्वादिति सिद्धः ॥ ४१ ॥

इदानीं वाय्वादिदेवतानां वनत्रशुद्धिरूच्यते--वायोः स्पर्शास्यमेकं त्वपरगुणवशान्मुद्रणास्यं द्वितीयं रूपस्पर्शद्वयास्यं भवति च शिखिनो मुद्रणास्यं तृतीयम् ।

१. ग. विज्ञान । २. मो. लाद्या । ३. च. शुक्लं ।

१. च. चारा।

स्पर्शो रूपं रसास्यं मुखमिप पयसो मुद्रणास्यं चतुर्थं गन्धाद्यं स्पर्शजान्तं गुणमुखमवनेः पञ्चमं मुद्रणास्यम् ॥४२॥

वायोरित्यादि । इह वाध्वादिदेवतानां द्विधा वक्त्राणि – एकानि विषयशुद्धधा, द्वितीयां गुणत्रवशुद्ध्वा । तत्र वायुधातोः स्पर्शगुणात्मकमेकं वक्त्रं भवति, द्वितीयं शब्दगुणात्मकं मृद्रणम् । एवं वायोः शब्दगुणात्मकं मृद्रणम् । एवं वायोः शब्दगुणात्मकं मृद्रणम् । एवं वायोः स्पर्शास्यमेकं त्वपरगुणवशान्ष्रवणास्यं द्वितीयं शिरित्तं, न मुखस्थाने । एवं 'रूपस्पर्शन्यवायममं मुख्ययं नेकत्तो मृद्रणास्यं तृतीयम् । गुणेन तेन वेदनयाऽपि विज्ञानमृद्रणम् । विषययममं पृख्ययं प्यम् आकाशलक्षणः शब्दो मुद्रणास्यं चतुर्यम्, तेन संज्ञाविज्ञानमृद्रणम् । गन्धाद्यमिति गन्धरसरूपस्यस्यप्रिययधर्मेण वक्त्रचतुरुद्धं पृष्यव्या भवति । तेन रूपस्कत्यस्यापि विज्ञानस्कन्द्यो मृद्रणमिति सिद्धम् ॥ ४२ ॥

शून्यं पञ्चप्रकारं मुखमिष तससो मुद्रणास्यं च षष्ठ, मेवं वै ज्ञानधातोर्भविति गुणवशाच्छून्यषट्केन वक्त्रम्। एकं मिश्रं चतुष्के समसुखफलदं पञ्चकं द्वित्रिमिस्रं प्रजोपायं दशास्यं त्रिविवगुणवशाद् द्वादशास्यं चतुर्घा॥४३॥

श्चलं पञ्चमकारं 'पञ्चाक्षारो महाशून्यः' (ना॰ सं० १०.२) इति वचनाद् मुखपञ्चकमाकाश्यातीविज्ञानस्कत्यस्य मुद्रणास्यं पच्छं ज्ञानस्कत्यस्य । एवं वे ज्ञानधातोभंबति गुणवशान् शून्यषट्केन वक्त्रं पण्मुखस्य, तस्यापि विज्ञानधातुमुद्रणमिति
मुद्रानियमो धातुविषयगुणवशाच्छुद्धम् । अयेकं मिश्रं चतुष्केण समसुखफळवं पञ्चकं
द्वित्रिमिष्मिति । इहैकस्पर्शगुणात्मको वायुधातुराकाशामृद्रितो गन्धादिचतुर्गुणात्मके
पृष्वीधातावाकाशं गुणमृद्रिते यदा मिश्रो भवति, तदा समसुखफळदः प्रज्ञोपायात्मको
योगो भवति । एवं ^३स्पर्शस्यद्विगुणात्मकोशंनराकाशगुणमृद्रितः, तोयधातुस्त्रगुणात्मक
आकाशगुणमृद्रितः परस्परमिळितः पञ्चकं भवति । 'एवं पृथ्वीधाय्वोः पञ्चकम् । एवं
प्रज्ञोपायां वशास्यं पूर्वीपरं वामदक्षिणं परस्परमिळितम् । अस्याध्यात्मपटळे प्रपञ्च
चक्तः—"क्ष्रगोषायोऽस्थिमांसं ससिळळहिष्टं पावको मूत्रमेव" (का० त० २.३०)

पुनरपरगुणत्रबभेद उच्यते—त्रिविधेत्यादिना । इह सर्वधातूनां सत्त्वर**जस्तमोगुणाः** सन्ति, तै: सर्व धातवस्त्रिमुखाः । गन्धादिधर्मधात्वन्ताः षड्विषया धातूना**म्, तैः** षड्मुजाः । एवं त्रिविव**गुणवकात् द्वादशास्यं ^तचतुर्धा प्रकोपायं पूर्वापरं वाम[।79b]-** दक्षिण ऊर्ध्वमिति नियमः। समाजे सर्वेषां चिह्नं शुक्रनाड्यस्थिविशुद्ध्या वच्चं पद्मं चक्रं दक्षिणे, रजो रनतं मांसं वच्चषण्टा मणिः खङ्गो वामेञ्जोभ्यस्य। इह यस्य। देवतायाः स्विच्ह्नं दक्षिणे प्रथमकरतले गच्छिति, तस्य स्थाने वच्चचिह्नं याति। एवं समाजन्वयमः। यथा समाजे यो बुद्धो मध्ये विश्वति तस्य स्थानेञ्जोभयो गच्छिति, तथा चिह्नेऽपि नियमः। एवं पञ्चमुखपणुखयोरेकादशास्यं विज्ञानज्ञानघात्योः पञ्चाननपणुखयोः पञ्चाक्षरमहाशून्यविन्दुशून्यपदक्षरयोः। पुनस्तयोः परस्परापेक्ष-कत्वेन द्वार्यिश्वरास्यः समाज इति नियमः॥ ४३॥

इदानीं कालभेदेन वक्त्रादिशुद्धिरुच्यते-

सन्ध्याभेदाच्चतुर्धा त्रिविधमपि मुखं लग्नभेदात् त्रिवणं लग्नार्धाद् बाहुभेदो विषममपि समालिङ्गनं कायचित्ते । सन्ध्याङ्गे पूर्वपृष्ठे त्रिमुखरसभुजालिङ्गनं मध्यमाङ्गे प्रजासङ्गः समापत्तिरपि हि हसिताद्यानि यामाभिसन्धौ ॥४४॥

सन्ध्येत्यादि । इह "दिनस्तु भगवान् वज्जी नवतं प्रज्ञा प्रकीतिता" इति नियमात् ेप्रहरप्रहर**सन्ध्याभेदे**न भगवांश्चतुर्म्बोऽष्टभुजोऽर्धप्रहरभेदेनार्धरात्रान्मध्याह्नं यावत्, एवं प्रज्ञाऽपि मध्याह्नादधरात्रं यावच्चतुर्मखा अष्टभुजेति। समालिङ्गनं मध्याह्ने दिवारात्र्योः, विषममिष पूर्वसन्ध्या-अपरसन्ध्ययोदिवारात्र्योहींनाधिकवशतः, तत्र कत्र-चिद् भगवान् पञ्चमुखो दशभजो भगवती त्रिमुखा षड्भुजा दिवावद्धितः। निशावद्धितो भगवती पञ्चमखा भगवांस्त्रिमख इत्यादिसिद्धः, इत्येका कालचक्रविशिद्धः। तथा द्वितीयो-च्यते - त्रिविधेत्यादि । इह द्वादशराशयो मकरादयः, तेषां मध्ये मकरकूम्भमीन-राशयश्चित्तवष्त्रस्य तमोरजःसत्त्वभेदेन कृष्णरक्तसितमुखानि लग्नभेदात् त्रिवर्णानीति । एवं मेषवृषमिथुनमुखानि रजःसत्त्वतमोभेदेन रक्तसितकृष्णवर्णानि वाग्वज्रस्येति। कर्कटसिंहकन्याम्खानि सत्त्वतमोरजोभेदेन शुक्लकृष्णरक्तवदनानि कायवज्रस्येति। तुलावृध्चिकथनुर्लग्नमुखानि ^३तमोरजःसत्त्वभेदेन पोतरक्तसितवर्णानि ज्ञानवज्रस्येति । लग्नार्घाद्वाहुभेदो भवति त्रिवर्णः। पण्णां द्वयोर्द्वयोर्यथासंख्यं मुलवक्त्रादिना वामदक्षिणयोः। एवं द्वादशास्यश्चत्विंशतिकरो भगवानेकः कालचकः। अत्र पूर्वोक्तानां देवतानामेक-मुखचतुर्मखादोनां यद्विषमसमालिङ्गनम्, तत्सन्ध्याङ्गे पूर्वपृष्ठे पूर्वसन्ध्याया अपरसन्ध्याया मेलापकः, त्रिमुखषड्भुजानां यत्परस्परमालिङ्गनं तन्मध्यमाङ्गः मध्याह्नसन्ध्याया ³अर्धरात्रसन्ध्यायाः । एवं कायवित्ते इति पञ्चम्यर्थे सप्तमी कायभावभेदादिति । एवं पूर्वापरसन्ध्या योगिनीतन्त्रालिञ्जनं विषमसमापत्तित एकमुखचतुर्मखयोरेकमुखाद्यष्ट-मुखाद्योर्वेति योगतन्त्रे सममुखभुजयोरालिङ्गनं तुल्यदिवानिशाकाले इति नियमः कालविशेषेण। एवम् -

१. मो. Ro Dan Reg Byabi (रतस्पर्धस्य)। २. मो. 'गुण' नास्ति । ३. भो. Reg Bya Dan Rohi (स्पर्धरस्य) । ४. ग. 'एवं """ कायजिते' पुटितः । ५. च. 'जुप्पी' नास्ति ।

र. भो. 'प्रहर' नास्ति । २. च. तमोऽन्तरणः । ३. च. 'बपंराप्रवन्क्यायाः' नास्ति । Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

पटले, ४४-४७ इलो.]

10 T 426

15

25

32

15

20

30

शुभाशुभन्नः कालजः समयज्ञः समयो विभुः । सन्त्रेन्द्रयज्ञो वेलज्ञो विमुक्तित्रयकोविदः ॥ सन्त्रेन्द्रयज्ञो वेलज्ञो विमुक्तित्रयकोविदः ॥

इति नामसङ्गीत्वां भगवतो नियमः।

इदानीं क्रियातन्त्राष्णुच्यन्ते—[180३] प्रज्ञेत्यादि । इह प्रज्ञासङ्को योगिनीतन्त्रे, समापत्तिरिप योगतन्त्रे, पूर्वीपरसन्दः ग्रायोगो मध्याङ्काधरात्रसंयोग इति सिद्धस्तन्त्रद्वये, समापतिरिप योगतन्त्रे, पूर्वीपरसन्दः ग्रियागो हिति सिद्धस्तन्त्रद्वये, हिताद्यानि यामाभिसन्धाविति । इह प्रथमप्रहरानिसन्धौ हिततन्त्रम्, सप्तमप्रहरसन्धौ पाणिप्रहण-भिसन्धौ ईक्षणतन्त्रम्, प्रवान्त्रम् । तत्कस्य हेतोः ? इह वायुक्कस्तानां प्रज्ञाहसितमात्रेण तन्त्रम्, एवं चतुर्धा तन्त्रम् । तत्कस्य हेतोः ? इह वायुक्कस्तानां प्रज्ञाहसितमात्रेण स्थन्त्यस्थ भवति । त्रव्यक्तस्त्रानां पाणिप्रहणेत सुखं भवति । उदकक्तस्तानां स्तनस्पर्धान [मुखं भवति ।] पृथ्योक्कस्त्रानां पाणिप्रहणेत सुखं भवति । ौएवं षोडद्या रूपावचराः । अकनिष्ठादिना ब्रह्मकायकपर्यन्तमेषां विस्तारो वक्ष्यमाणे परमाक्षरज्ञानसिद्धौ वक्ष्यमाणे परमाक्षरज्ञानसिद्धौ वक्ष्यमाणे हित्रति । कामावचराणां समापत्तिर्द्वन्द्वयोग इति सिद्धान्तः । सर्वत्रारूपे वीतन्त्राणां स्थिति ॥ ४४ ॥

इदानीं कायभावप्रवेश उच्यते—
प्रज्ञाङ्को रक्तपीते प्रविशति नियतः कालचकस्य भावः
प्रज्ञाभावः सिताङ्को कषणधननिभे विज्ञणो वामपूर्वम् ।
प्रज्ञाभावेन भिन्नं भवति वरतनौ वामपूर्वाङ्कोसीस्यं
रौद्रं सब्यापराङ्कां परमजिनपतेर्भावभिन्नं तथैव ॥४५॥

प्रज्ञाङ्ग इत्यादि । इह प्रज्ञाङ्गे रक्ते ते जोधाती पीते पृथ्वीधाती प्रविश्वति नियतः कालकस्य भावः प्रज्ञोपायो प्राष्टाः, यतः समापत्ती या प्रज्ञा सा उपायभावग्राहिका, यहवोपायः स प्रज्ञाभावग्राहिकः। तेन भावग्रहणेन सुखोत्पत्तिः, तेन कालचकस्य प्वेतं तोयधातु रक्ताङ्गेजन्यञ्जे प्रविद्याते समरसो भवति । एवं कृष्णः पीताङ्गे पृथ्विव्यां समरसो वायुर्भवति । एवं प्रज्ञाभावः सिताङ्गे तीयधाते रक्तावः प्रविद्यति । बिद्याणो बामाङ्गे देवतानां कृष्णवर्णवायुधातौ पृथ्वीभावः पाते रक्तावः प्रविद्यति । बिद्याणो बामाङ्गे देवतानां कृष्णवर्णवायुधातौ पृथ्वीभावः पीतः पूर्वे विवर्ति । एवप्रव्याभावेन भिर्मे भवति बरतनौ सर्वसत्वानां बामपुर्वे च सोम्यम्, रौद्रं सब्यावराङ्गे परमजिनवतेर्भाव-मिन्नं तपेवति, कन्त्रे सौम्यमधो रौद्रं सिद्धम् ॥ ४५ ॥

प्रज्ञाभिन्नं जिनस्य प्रवरगणकुलं द्विस्वभावत्वमेति प्रज्ञाया भर्तृभिन्नं विदिशि च नियतं योगिनीवृन्दमेव ।

१. च. एवां ।

युग्मं सव्यावसव्यं रविशक्षिवपुषाप्येव पूर्वापरंच कृष्णं पीतंच नीलंहरितमपि तथाकाशपातालसंस्यम् ॥४६॥

एवं 'प्रजाभिन्नं जिनस्य प्रवरगणकुळं 'शुक्रधातुभूतं तोयवाय्वाकाशळक्षणं कायभेदेन यत्त्रदेव भावभेदेन रजीधातुर्निमिन्नं पृथ्वीतेजीज्ञात्त्वभावं भवतीति द्विस्त्रभावं प्रवरगणकुळमिति देवतावृत्वं रक्तं शुक्लं च भवति, 'वामदिश्यं पीतं कृष्णं च भवति, पूर्वापरमूख्विधो नीलं श्यामं च भवति। एवं प्रजाया गणकुळं भर्तृभाव'भिन्नं विदिश्चित्र च नियतं द्विस्त्रभावत्वभेति । नेक्ट्रंप्येशाने श्वेतं रक्षं च भवति, वायव्ये अग्नी कृष्णं पीतं च भवति द्विस्त्रभावति नियमः। एवमुपायवृत्वं दिश्चिगतं विदिश्चिगतं योगिनीवृत्वं प्रजावृत्वं छोचनादिकं तारादिकं चेति । एवं प्रुपमं सव्यावसव्यं रिवशिवाव्ययेव पूर्वापरं च कृष्णं पीतं च नीलं हरितमित त्वारऽकाशपातालसंस्यं देवतागणमिति नियमः॥ ४६॥

प्रज्ञा रक्ताः सितानां शशधरधवला लोहितानां तथैव पीतानां कृष्णवर्णा वरकनकिनभाश्चासितानां कुलानाम् । नीलानां विश्ववर्णाः पुनरपि हरितानां च नीलास्तयोक्ता एवं वै देवतीनां स्वकुलदिशिगता देवता वेदितव्याः ॥४७॥

अतः परकुलालिङ्गततः प्रज्ञा रक्ताः सितानामुपायानां भवित(त्ति), शशधरधव(180b)लाः प्रज्ञा लोहितानामुपायानाम् । तयैव पीतानामुपायानां कुल्यवणीः प्रज्ञा
वरकनकिमाः पोताः प्रज्ञाश्चासितानामिति कुल्यानामुपायानां कुल्यानां नीलानां
विश्ववणीं इति हरिताः प्रज्ञाः । पुनरिष हरितानामुपायानां नीलाः प्रज्ञास्तयोक्ता इति
त्यायः । परकुलालिङ्गनतः कियानिल्पत्तिः स्वकुलालिङ्गनेन कियासिद्विनिस्ति, स्वात्मनि
कियाविरोधात् । निह भगजातीयानां धातूनां भगविन्तया सुल्लोत्पादः, एवं पुरुषलिङ्गजातोनां वा लिङ्गचिन्तया सुल्लोत्पादः । अतः कालचक्रे स्वाभाः प्रज्ञा न भवन्ति,
स्वात्मनि कियाविरोधादिति । अधादशंप्रतिविम्बधर्मेण स्वाभग्रवृलं चित्तयात्वेति विवायते । इहावशें पुरुषप्रतिविम्बं स्तन्योनिरिहतम्, तेन 'स्वाभता नास्ति । तथा अपरोऽपि विरोधः । इह यद्विम्बस्य वाममुजेषु
चिल्लानि तान्यावशंप्रतिविम्बस्य दक्षिणमुजेषु गतानि । एवं यद वाममुलं वद्विणम्

१. ग. च. प्रज्ञाभावभिन्नं । २. ग. 'शुक्रं' इत्यधिकम् । ३. ग. वामं, भो. Byan (उत्तर) । ४. ग. इतः परं 'ग' मातृका नोपलम्यते, कानिचन तृदितपत्राणि सन्ति तत्र । ५. च. विद्यायते । अत्रेदमवधातस्यं यदितः परं टिप्पच्यां यत्र च. पाठः स्थात्तत्र मुले भोटानुसारी पाठोऽवगन्तस्य: । ६. मो. Ro Sig (केचित्) इत्यधिकम् ।

पटले, ४७-५८ इलो.]

तद्वर्णतापि स्वाभेति न भवति, तेन मण्डलचकभावना परकुलालिङ्गनेन कालचक-न्यायतः। अपरतन्त्रान्तरे ^९पुनः--

येन येन हि भावेन मनः संयुज्यते नृणाम्। तेन तन्मयतां याति विश्वरूपो मणिर्यथा॥ (यो० सं० ११.२)

तेनास्तब्यस्तकरं(रा) वाचो न विचार क्षमा इति । परमार्थतः पुनः शून्यताबिम्ब-भावनायां रूपविभ्वकल्पना नास्ति, तेन स्वाभास्वाभ इति नास्ति। सर्वाकारतः सर्ववर्णतो ज्ञानजेययोः परमाणुद्रव्यविकल्परहितयोः स्वभावो नास्ति । अतो निःस्वभाव-भवभावना घटपटशकटसेनादिकानां कार्या, न प्रादेशिकी सकललोकव्यवहाररहितेति सिद्धान्तो माध्यमिको मन्त्रनये तत्त्वपटले न्यायत इति ॥ ४७ ॥

प्रज्ञातन्त्रं हि पूर्वात् पुनरपरमुखादेव योगानुविद्धं सव्यास्याद् योगतन्त्रं गदति जिनपतिर्वामवक्त्रात् क्रियाद्यम् । योगाचारं हि पूर्वात् पुनरपरमुखान्मध्यमं वै समस्तं सूत्रान्तं सब्यवक्त्राद् गदति सितमुखाच्छ्द्धवैभाषिकं च ॥४८॥

ऋग्वेदं पश्चिमास्यादपि गदति यजुर्वामवक्त्राजिजनेन्द्रः सव्यास्यात सामवेदं परमहरिक्लेऽथर्वणं पर्ववक्त्रात्। पर्वास्यात कोलतन्त्रं पूनरपरमुखाद गारुडं भूततन्त्रं सिद्धान्तं वामवक्त्राद्दयरविनिभाद् विष्णुधमं च सव्यात् ॥४९॥

पृष्ठात् सद्यो निवृत्तिः परमसितमुखाद् वामदेवः प्रतिष्ठा सब्याद विद्यात्वघोरः पुनरनिलम्खान्मारुतब्रह्मशान्त्यौ (न्ती?)। शुन्यास्यात् शुन्य-ईशौ त्रिभुवनपतिना स्फारिता लौकिकार्थं कृत् त्रेता द्वापरं वै कलियुगमपरं पृष्ठवक्त्रादिभेदात् ॥५०॥ एवं वीरकमाद्यं

रविगमनवशादेव सन्ध्याचतुष्क-माहारं सव्यवक्त्रात् परममपि भयं स्फारितं पृष्ठवक्त्रात् । पूर्वास्यान्मैथ्नं वे परमसितम्खात् स्वप्नतिद्रे च राजन् पृष्ठाद् वैद्यो द्विजः स्यान्नृपतिरपि तथा शूद्रजातिः ऋमेण ॥५१॥

20

पूर्वात् सर्वास्तिवादं गदति जिनपतिः साम्मितीयं च सव्यात् पृष्ठास्यात् स्थावरीयं पुनरपि च महासांघिकं वामवक्त्रात् । मान्ष्यं पूर्ववक्त्रात् पूनरपरम्खात् स्फारितास्तियंगा वे सव्यास्याद् भूतदेवाः परमसितमुखान्नारकाश्चासुराश्च ॥५२॥

34

25

हुच्चकात् पूर्ववक्त्रात् स्फरणमपि भवेन्नाभिचकात् परास्यात् संभोगात् सव्यवक्त्राद् भवति च सहजाद् वामवक्त्रात् समन्तात्। चकाणां वक्त्रमध्यात् स्फरणनिधनता याति भावः शरीरे त्रैलोक्यं चापि कृत्स्नं खलु जिनजनकस्यास्यभेदैश्च सम्यक् ॥५३॥

श्रीचन्द्राच्चन्द्रकान्ते स्रवति हि सलिलं निविकल्पस्वभावात तद्वत् सर्वज्ञधर्मः स्रवति जिनपतेः स्कन्धमाश्रित्य लोके । धर्मस्तोयं यथैव वजित समरसं बीजघात्वाश्रयेण सत्त्वानां चित्तशुद्धचा भवति बहुविधं पूर्वकमंप्रभावात् ॥५४॥

चिन्ता सर्वार्थं कर्तु स्त्रिभुवननिलये नास्ति चिन्तामणेश्च चित्तस्थं तन्न पश्यन्त्यशुभफलवशात् कर्मणः पापसत्त्वाः। दोषश्चिन्तामणेर्न ह्यशुभशुभफलं सर्वसत्त्वः प्रभुङ्क्ते शद्धे सत्त्वे जिनेन्द्रः स च भवति नरः कि जिनेनापरेण ॥५५॥

जातो येनाङ्करोऽसौ वजित स जनको जातभावाद विनाशं जातो नष्टस्य तस्य प्रभवति जनको बीजराजस्य भूयः। यः पूर्वः सोऽन्यभावान्मृत इति वचनं न स्वरूपेण जातः शून्याद् येनागतः क्ष्मां व्रजति दशबलस्तेन सौस्यक्षणेन ॥५६॥

सौख्यात् सौख्यानुरक्तः क्षण इह सहजो नान्यभावानुरक्तः स्कन्धा ये तेन जाताः पुनरपि जनकास्तेऽस्य सौख्यक्षणस्य । शुद्धाद्धर्मस्ततोऽन्यः पुनरपि च ततोऽन्यश्च तस्माद्विश्द्धो बीजान्मूलानि शाखाः कुसुमफलमिनारोपिताच्छुद्धभूम्याम् ॥५७॥

भूवार्यग्निश्च वायू रसपरमरसौ चाणवः षट् प्रकारा गन्धाद्येकैकहीना विषयविरहिताश्चान्तिमा ज्ञानवृश्याः।

THE RESERVE OF THE PARTY OF THE

१. च. कालचक्रे । २. भो. 'पुनः' नास्ति । ३. च. क्रम।

कामा रूपास्त्वरूपा यमयमशशिनश्चान्तिमो धर्मेषातुः सर्वाकाराः सदा तेऽच्यृतसुखसहजाधारभूताः समन्तात् ॥५८॥

अन्योन्यं स्कन्धभूता विषयविषयिणोऽन्योन्यमारास्त्वविद्याः पञ्चान्योन्यानुरक्ता रसगतिषु गता दुःखसौस्यक्षणस्य । सर्वाकाराः समन्तान्न परगुणरताः संस्थिताऽभेदवज्ञा अन्योन्यं क्ष्मादिधातौ पुनरपि च गता मुख्यभावेऽन्यभावाः ॥५९॥

तैश्चिंघ कालचकः प्रकटयित महानेकिनिर्माणकायै-वंज्ञज्वालास्फुरद्भिस्त्वसुरसुरनृणां कामधातौ स्थितानाम् । संभोगे रूपिणां वै नभिस जिनसुताद्यहंतां धर्मकायैः शून्यांशैः शून्यकृत्स्नं त्रिभुवनसकलं वायुभिर्वायुकृत्स्नम् ॥६०॥

तेजोंऽशैर्विह्नकृत्स्नं ह्युदकमिं जगत्स्फारितैश्चोदकांशैः पृथ्वीकृत्स्नं घरांशैः समुदितिवषयैः सर्ववस्तुस्वभावम् । एकात्मानं समन्ताद् गगनसमित्रं दर्शयेच्छुद्धभूम्या-मेवं बुद्धस्य कायो भवति न स्त्रियतेऽप्येकसौक्यस्वभावात् ॥६१॥

पञ्चाकारात् तदेकात् सकलिजनवरैश्चाभिसम्बोधिरेषा विश्वत्याकाररूपा पुनरिप च ततोऽनेकमायास्वरूपा। तस्या एकक्षणा स्यात् समसुखफलदा नान्यकर्मस्वभावा अत्रोपायोऽच्युतो यः क्षण इह सहजो धर्मधानुप्रवेशे ॥६२॥

बुद्धक्षेत्राण्यनन्तान्यपरिमितगुणा घातवश्चाम्बराद्याः स्थित्युत्पत्ती विनाशस्त्रिविध इति भवः षड्गतौ सर्वसत्त्वाः । बुद्धाः कोघाः सुराद्याः सकरुणहृदया बोधिसत्त्वाः सभाया एतच्चकं जिनस्य त्रिभुवननमितस्यैकमेकस्य शम्भोः ॥६३॥

ेश्रतोऽष्ट्रभत्वारिंशद्वृत्तमारस्य त्रयष्पिष्टमं वृत्तं यावत् षोडश वृत्तानि सुबोधानि ॥ ४८–६३ ॥

इदानों शरीरे दशाकारशुद्धिरुच्यते— लोमत्वप्रक्तमांसं सरसमित तथास्थीनि मज्जा च नाडच-स्तासु प्राणादिवाता रिवशिशगमनं वायुमध्ये समन्तात्। विज्ञानं चन्द्रमध्ये विमलमणिरिवालिङ्गितं सर्वभावे-भीवाभावाद्वयत्वं परममृतपदं व्यापकानाहतं तत्॥६४॥

लोमेत्यादि । इह लोम केश आकाशघातुः, त्वग् मांसं वायुघातुः, रक्तं द्विचा तेजो-घातुः, स्वेदं मूत्रं तोयघातुः, अस्थि मज्जा पृथ्वीघातुः, नाट्यः प्राणादयो ज्ञानघातुः । राहुपुच्छं ज्ञानवच्यम्, राहुदिचतवच्यम्, रविविश्वच्यम्, चन्द्रः कायवच्यम् । एवा चतुर्णां प्राणमध्ये गमनं समन्तात् । विज्ञानं चन्द्रमध्ये शुक्रमध्ये, विमल्रमणिरिव स्फटिक इव, आलिङ्गितं सर्वभावेरपधायोगतः । भावाभावयोरद्वयत्वं मायोपमं शृत्यताविस्वमत्राक्षरस्युखं परममृतपदं व्यापकानाहतं तदिति नियमः । शरीरे दशाकारणुद्धिः ॥ ६४ ॥

इदानीं दशभूमिभिस्ते । धातवः शोध्यन्ते —

पटले, ५८-६६ क्लो.]

लोमाद्याश्चन्द्रमोऽन्ताः सकलतनुगता भूमयो या दशोकाः षड्वर्गा लादयोऽन्याः समसुखफलदा योगिनां सर्वकालम् । तस्मादन्वेषणीया गुरुचरणगतैयोगिभिमोक्षहेतो-नन्यो बद्धोऽस्ति कश्चित्त्वपि तन्विरहाद् व्यापको मोक्षदो यः ॥६५॥

15

लोमाधा इति । इह लोम केशाः प्रमुदिता, वर्म मांसं विमला, रक्तं द्विधा प्रभाकरी, रससलिलमर्विष्मती, अस्थि मज्जा सुदुर्जया, नाडी प्राणोऽभिमुखी, कालाग्नी रागधातुर्द्ररङ्गमा, राहुरचला, रिवः साधुमती, चन्द्रो धर्ममेषा, रागत(स्त)-मोरजःसत्त्वधर्मेण संवृत्यावतारः । एवं लोमाधाश्चन्द्रमोऽन्ताः सकलतनुगता निरावरणगताः । [1814] तेषां दशभूमवस्ता दशोक्ता या भूमयः, ताः पुनः बद्वर्गा लावयो न्यासमात्रिका उक्ताः। तत्र कवर्गः प्रमुदिता। एवं यथासंख्यं च ट प त स इति पड्वर्गाः, ल व र य ह अल् ओ अर् ए अ छ उ ऋ इ अ हः अमिति । एवं विलोमेनापि दीर्घादिवाः प्रमाभूमयः । अमी समसुखफलवा योगिनां सर्वकालम् । तस्मावन्ववर्णया गुरु-चरणातैरवधूतीचारगतेर्वोगिभिर्मोक्षहेतोरिति भगवतो नियमः । नान्यो बुद्धोऽस्ति किद्ववर्षि तनुविरहाद्व व्यापको मोक्षदो य इति । इह शरीरधातवो निरावरणा बुद्धत्यना मोक्षदाश्चिति ॥ ६५ ॥

सत्त्वा बुद्धा न बुद्धस्त्वपर इह महान् विद्यते लोकधातौ तेषामाराधनेन त्वपरिमितभवश्छिदते निर्विकल्पात्।

र. भो. hDir (Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivedijin(विक्रीया 1926 - 17 Feb 2012)

पटले, ६९-७६ इलो.]

10

15

25

विमलप्रभायां 36

ब्रोहं कुर्वन् हि योगी व्रजति हि नरकं रौरवाद्यं महान्तं तस्माच्चित्ते विशुद्धेऽप्यवृधवृधजनानां विरुद्धं न कुर्यात् ॥६६॥ लक्वा सत्त्वप्रसङ्गं भवति नरपते शुद्धमैत्र्यादिचित्तं यद्वा संसारिणां स्यादकुशलगुणिनां द्वेषरागादिचित्तम्। गच्छन्तं गन्तुकामं द्विविधमिप भवेत् सर्वदा बोिधिचित्तं मोक्षप्रस्थानहीनं प्रणिधिविरहितं सर्वदा मारचित्तम् ॥६७॥

माराः कूर्वन्त्यशान्ति त्रिभ्वननिलये बोधिसत्त्वाश्च शान्ति परमभयकरश्चिद्धमानेकशास्ता । मारेन्द्रश्चद्धिहीनः माराणां मारबुद्धिः परहृदयगता तायिनां सौख्यबुद्धि-स्तस्माद् बुढानुभावैस्त्रिभुवनसकलं वतंतेऽनन्तकालम् ॥६८॥

यन्मानं लोकघातोः कथितमपि जिनैस्तन्नृणां जानतां न बद्धानां नास्ति मानं सहजतनुवशादेकहस्तं ह्यनेकम्। मानं सत्त्वानरूपं प्रकटयति सदा प्राणिनां कर्मभुमा-विच्छामानं त्विदं मे यदि वदित सूरा नास्तिकोऽयं वदिनत ।।६९॥

येनोत्पन्ना जिनेन्द्राः प्रतिदिवसवशान्निगंता येन गर्भात् सिद्धा येन क्षणेन क्षरणविरहिता स्पन्दिन:स्पन्दभृता:। त्यक्तवा तद् बुद्धकृत्यं समस्खरिहतं भावयेद योऽन्यशन्यं बद्धत्वं तस्य दूरं सहजमिप सूखं कोटिकल्पैरनेकै: ॥७०॥ न द्राक्षा निम्बवृक्षादम्तमपि विषात् पङ्काजं ब्रह्मवृक्षात् श्च्यान्निर्वाणसौख्यं शुभमशुभवशात् सिद्धयः प्राणिघातात् । यज्ञात स्वर्गः पश्चनां परमशिवपदं नेन्द्रियाणां निरोधाद् वेदात् सर्वज्ञभाषाऽक्षरसुखमचलं न क्षराशुद्धचित्तात् ॥७१॥

सत्त्वानां पापचित्तं भवति नरपतेऽधिष्ठितं मारकायैः पुण्यज्ञानान् रक्तं सुखदमिप सदाधिष्ठितं बोधिसत्त्वै:। निर्वाणं यान्ति यस्मात् सुखसमयवशात् क्लेशमारान्निहत्य

सेव्याऽऽदौ कर्ममुद्रा जिनसहजसुखस्यास्य वृद्धचर्यहेतो-स्तस्मादादित्यरूपा तनुमुखचरणोष्णीषसर्वाङ्गपूर्णा । विद्युदण्डानुरूपाऽच्युतसुखजननी लक्षणाञ्जप्रपूर्णा व चेरु.द्भासयन्ती त्रिभवगततनुर्धमधातुस्ततः स्यात् ॥७३॥

एता मुद्राइचतस्रोऽक्षरसुखफलदा योगिना भावनीयाः सर्वस्मिन् सर्वकालं स्रतरितगतैलींकमागंप्रयुक्तैः। ग्रामारण्यश्मशानेऽशुचिशचिनिलये वेश्मदेवालये च वर्णावर्णाभिचारैस्तनुबलसुखदैरन्नपानादिभोगैः 119811

अतः पञ्चषष्टिवृत्तादपराणि नव वृत्तानि सुबोधानि चतःसप्तति-पर्यन्तिमिति ॥ ६६-७४ ॥

इदानीं शून्यताबिम्बे दृष्टे सति प्राणिनरोधेन योगिनां क्षणलाभ उच्यते-वातैः संघट्टमानैस्तडिदनलशिखा द्रावयेद् मूब्ति चन्द्रं यो यो बिन्दूर्द्तोऽस्माद् गलहृदयगतो नाभिगृह्ये निरुद्धः। बिन्दोः स्पन्दद्रवं यत कुलिशमणिगतं सन्निरुद्धं ध्वजाग्रे प्रज्ञाज्ञानक्षणं तद् यदि ददति सुखं बिन्द्रमालाच्यतेन ॥७५॥

वातैरित्यादि । प्राणायामेन दशवातानां संघट्टनं भवति । प्राग्बम्बे दृष्टे सति तैः प्राणापानादिभिदंशभिः संघटमानैनिभिकणिकायां चण्डाली तिडदनलस्तस्य शिखा रिक्मः, सा शिखा मूर्धिन ललाटे द्वावयेच्चन्द्रमिति बोधिचित्तं जन्मस्थानीयम् । यो यो बोधिचित्तिबन्दुर्दतोऽस्माद ललाटाद् गले हृदये नाभी गृह्ये गतो निरुद्धो भवति, प्राणापानबलेन कायबिन्दुर्गुह्ये निरुद्धः, एवं वाक्चित्तज्ञानबिन्दुर्नाभी हृदये कष्ठे निरुद्धः, अस्माद् विन्दोः स्पन्दद्रवं यदिति । इह गृह्यगतस्य कायविन्दोह्यंवरुद्धस्य यदपरं स्वच्छद्रवं स्पन्दद्रवं तदुच्यते । तत्र कुलिशमणिगतं सन्निरुद्धं व्वजाग्रे लिङ्गमुखे। प्रज्ञाज्ञानक्षणं स्पन्दं तद् यदि ददति मुखं बिन्दुमालाच्युतेन हेत्ना, तदा न कर्ममुद्राज्ञानम् । प्रज्ञाज्ञानमिति सिद्धम् ॥ ७५ ॥

तस्मान्तिःस्पन्दसौरूयक्षणमिह सहजं धर्मधातुर्ददाति प्राणेनाकृष्य सर्वान् रसगतिषु गतान् क्लेशमारान्निहत्य । ऋदि सर्वज्ञभूमि त्रिभुवनगुरुतां योगिनां जन्मनीह तस्मात् कुर्वन्ति माराः प्रतिकित्तसम्प्रोधोत्पर्कितातेष्ठधारूपाणकेषु Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

はいます

15

H-p. 90. 119-22.

80 तस्मादच्युताद्वेतोर्यिन्नव्यन्दसौख्यक्षणिमह धर्मधातुः प्रज्ञापारिमता ददाति । तेन महामुद्रासुखं परमाक्षरं कर्मज्ञानमुद्रासुखं स्पन्दमुपायसुखं क्षरं ैस्पन्दं बालं ैप्रौढं चेति। यया रसो बालो युवा वृद्धो बद्धरेचेति, एवं शुक्रमपि बालं प्रौढं वृद्धं निरुद्धं सर्वावरणक्षयतः। आवरणं मल इति। तदेव बोधिचित्तमुध्वं यदा याति ललाटे तदा ययागतं तथागतं भवति। तिच्चतं प्राणेनाकृष्य सर्वान् द्वथयुतद्वयष्टशतान् रसगतिषु गतान् पृथिव्यादिषण्मण्डलगतान् । एवं क्लेशमारान्निहृत्य ऋद्धीः सर्वजस्य हादश भूमीर्वक्ष्यमाणाः, त्रिभुवनगुरुतामिति सर्वज्ञता-सर्वाकारज्ञता-मार्गज्ञता-मार्गा-कारज्ञतादिविभृतीदंदाति, योगिनां जन्मनीह वीर्यवताम्। अतः प्राप्तयोगो यदा मृत्यं याति मार्गप्रविष्टः सत्, तदा तद्ग्रहेण वासनावलेन पुनर्मनुष्यजात्था अन्यया सर्व प्राप्नोति, सप्तजन्मपर्यन्तेनावीर्यवानिप सन् ज्ञानमभावयन्निति नियमः॥ ७६॥

T 427

इदानीं बोधिसत्त्वाधिष्ठानोत्पाद उच्यते — या नेर्गुण्याल्पभावा विषयविरहिता कायमुद्रा द्विधा सा तस्या रागान्रका गुणनिधिरपरा वाक्स्वरूपा द्विधा च। कृष्णा व्वेताऽनरक्ता विषयगणरता चित्तमुद्रा द्विधा स्याद अष्टी द्वी पञ्च पञ्च स्फुटमपि खयुगं शून्यवेदं च वर्षम् ॥७७॥

या नैर्गण्येत्यादि । इह या कुमारी नैर्गुण्या धर्मधातुगुणरहिताऽच्यवनात्, साज्ल्यभावा कायधात्व[181b]पूर्णाऽपतितदन्ता एका अष्टवर्षावधिः। ततो द्वितीया पतितदन्ता दशवर्षाविधका । एवं कायमुद्रा अक्षतयोनिः । तदवधेरेकादशवर्षमारभ्य पञ्चदशवर्षं यावद् एका रागानुरक्ता, गुणितिधरपराऽपरपञ्चवर्षाणि यावद् वाङ्मुद्रा द्विधा स्यात्। एवमष्टी वर्षाणि द्वी संवत्सरी, ततः पञ्च पञ्च वत्सराः। ततो विशद्वपदिध्वंमपरं खयुगिमिति चत्वारिशद्वर्षाणि । एवं चित्तमृद्रा एका कृष्णभावानुरक्ता । एवं षष्टिवाषिका स्त्री । पुनरपरा शून्यवेदिमिति चत्वारिशद्³ वर्षं यावत् इवेतभावा-नरक्ता वृद्धा जरापछितवती वर्षशतपर्यन्तम् । एवं चित्तमद्रापि द्विधेति । आसां तिसुणां मध्ये कायमुद्रातिवाला, *वाङ्मुद्रातिप्रौढा, चित्तमुद्रातिवृद्धा । एतास्तिस्रो वर्जयित्वा एकादशर्वार्षिका सर्वलक्षणसंपूर्णा रक्षणीया राजगुरुणा राज्ञा वा अभिषिवतेन, अन्यैर्वा ईश्वरेरभिषिक्तैः ॥ ७७ ॥

रत्नेशो यावद-स्याज्जिनवरजन्नी योगिभी रक्षणीया रत्नेशोद्भतकाले सकलगुणनिधि मण्डलं वर्तयित्वा।

वृद्धाधिष्ठानमन्त्रैः सृजति समसुखं गुह्मपद्मे समन्त्रं गुह्ये रक्षां प्रकृत्य कुलिशमणिगतं स्वादयेद् बोघिचित्तम् ॥७८॥

रत्नेज्ञो यावद-स्वात् । अ-स्वादिति न भवति रजो यावद् रक्षणीया । रत्नेज्ञो-द्भृतकाले सकलगुणनिधि मण्डलं वर्तयित्वा कालचक्रम्, पूर्वं सुशिक्षितां कृत्वा तत्र तामभिषिच्य बुद्धाधिष्ठानमन्त्रैः षड्वचीमंञ्जूश्रीसमाधिना तामपि प्रज्ञां निष्पाद्य मुजति समसुखं दक्षिणनाडीप्रवाहकाले बोधिचित्तम्, तस्या गृह्यपद्ये समन्त्रं कायवाक्चित्तज्ञानमन्त्रसिंहतं 'स्फारयेत् । ततस्तस्या गुह्ये रक्षां प्रकृत्य वडङ्गेस्ततः स्वकृलिशमणिगतं बोधिचित्तमास्वादयेत्। तं योगी तस्या अपि ददाति। तस्याः पद्मवाह्मं यत्तदनामिकाङ्गध्टाभ्यां गृहीत्वा आस्वादयेत् सर्वरक्षार्थमिति, अनेन विधिना ॥ ७८ ॥

तस्मिन् पुत्रो भवेद् यो जिनजनकसुतो मञ्जुबज्यः स एव प्रज्ञाधिक्यात् कदाचित् प्रभवति दुहिता बुद्धमाता ध्रुवं स्यात् । तस्मादन्यैस्त्रिपूष्पैः सितकमलघरो जम्भलो वज्रपाणि-रन्येऽष्टावष्टपुष्पैदिशिविदिशिगता महद्धिकाः क्रोधराजाः ॥७९॥

तस्मिन्नाधाने यः पुत्रो भवति मञ्जुबज्तः, स एव प्रज्ञाधिक्यादिति रज आधिक्याद् यदि दुहिता भवति, तदा विश्वमाताधिष्टानं भवति । तेन बुद्धमाता ध्रुवं सेति मञ्जुश्रोविश्वमाताऽधिष्ठानविधिः । तस्मादन्येस्त्रिपुष्पेरिति । इह यदि प्रयमरजसि गर्भो न जात:, तदा पुन: पुन: प्रत्येकरजोदर्शनेन मण्डलं वर्तयित्वाऽपरसमाधिभि-र्बोधिचित्तमृत्सुजेदिति। एवं द्वितीये सितकमलधर इति लोकेश्वरिनर्माणं भवति। त्तीये जम्भलनिर्माणम्, चतुर्थे 'वज्रपाणि: पुत्रविषये। दुहिताविषये पाण्डरावसुधारा-शब्दवज्याचिष्ठानं भवति । ततोऽन्ये ^३ऽब्दावष्टपुष्पेदिशिविदिशिगता महद्धिकाः क्रोधराजा इति ।

इह पूर्वजम्भलाधिष्ठाने उष्णीषसमाधिनोष्णीषाधिष्ठानं भवति । अतिनीलाया वाग्वज्रपाणिस्थाने शुम्भराजो वा रौद्राक्षी वा भवति । ततः पञ्चमे रजिस विघ्नान्त-कोऽनन्तवीर्या, षष्ठे प्रज्ञान्तको जम्भी, सप्तमे पद्मान्तको मानिनी, अष्टमे यमान्तकः स्तम्भीति । ततो नवमे महाबलो मारे(री)ची, दशमेऽचलश्चन्दा, एकादशे टिक्कमूँकुटो, द्वादशे नीलदण्डो वज्रशृङ्खलेति विदिक्ष् । एवं क्रोधसमाधिना क्रोधाधिष्ठानं भवति गर्भस्य[1824]ति । ततस्त्रयोदशमो "रजः पुनः प्रथमो यथा अविद्या-चङ्गम्।। ७९॥

१. भो. 'स्पन्द' नास्ति। २. भो, Lan Tshoho (युवा)। ३. च. श्वदन्तानि। ४. भो. 'बाङ्मुद्रा' नास्ति ।

च. 'स्फारयेत्' नास्ति । २.च. वज्रयोगः । ३. भो. 'अष्टी' नास्ति । ४. च. सत्त्वः ।

T 428

25

तस्मिन् मासे रजो यत् प्रभवित हि पुनर्मञ्जुघोषोद्भवं तद् विश्वद्वर्षाणि यावत् प्रतिरजसि महासात्त्विको बोधिसस्वः । किञ्चित् सत्त्वांशहीनः प्रभवित च ततः शून्यवेदानि यावद् विश्वद्वर्षाणि यावत् पुनरपि च ततश्चान्यसत्त्वोऽल्पवीर्यः ॥८०॥

तेन तिस्मन् मासे रजो यत् प्रभविति हि पुनर्मञ्जूघोषीःदुवं तद्वजः। एवं तदुपिर यं समाधिमालम्बयित्वा योगी बोधिचित्तं विसर्जयेत्, तदिधिष्ठानं गर्भस्य भविति विश्वद्यपिणि यावत् प्रतिरजिस यदा बोधिसत्त्वो भविति, एको वा द्वौ वा इत्यादि, मातुर्महासात्त्विको भविति । किञ्चित् तत्रवात्यसत्त्वोऽल्पवीर्यः। एवमशीतिवविणि मातुः सत्वरजस्तमोभेदेन गर्भस्याधिष्ठानम् ॥ ८० ॥

तस्माद् योनौ रजो न प्रतिहतविषयस्तद्विनाशान्न सेकः किन्तु प्रज्ञाभिषेको जिनपतिवचनैनैष्टवीजस्य देयः। तासां भूतोयतेजोऽनिलगगनगुणान्वेषणीया जिनाङ्कौ-रेषा सत्त्वार्यकर्त्री भवति बहुफला बोधिचित्तस्य सेवा।।८१॥

तस्माद्योनो रजो न प्रतिहृतगर्भविषयः, तद्विनाशास्त्र सेकः प्रज्ञाया उपायस्य च बोजामाव बोजिमिति प्ररोहात् यत्किन्तु ः ज्ञाभिषेको जिनपतिवचनैनंष्टबोजस्य वृद्धस्य वेयो यथा भिक्षोः, तथा प्रज्ञायामिष यथा भिक्षुण्याः। एवं विशद्वाधिकाः शोभनाः सेकार्थमधिष्ठानार्थं भूषातुविशतिविशतिवर्षेस्तयैव तोयतेजोऽनिस्रगनमृणा वर्षशतं याविज्जनाङ्गेरन्वेषणीया इति।एषा सत्त्वार्थकर्त्री भवति बहुकस्रा बोधिचत्तस्य सेवा बोधिमत्त्वोत्यादनत् इति।।८१॥

इदानीममृतपानमुच्यते-

82

याऽसृक्षानं करोति प्रवरसुरनृणां मक्षिका साऽमृतैका र्छार्दगुँह्यादिवक्त्रात् कुल्शिकामणिगतं नाब्जमध्ये प्रविष्टम् । विष्मूत्रं रक्तमांसं परमसमरसं र्छादमध्ये प्रविष्ट-मेतज्ज्ञानामृतं च त्रिभुवनपतिना देशितं सर्वंतन्त्रे ॥८२॥

याऽनुक्पानीमत्यादि । इह बाह्ये नेयार्थेन याऽमृक्पानं करोति मक्षिका, सा नोतार्थेनावधूतो । या च्यवनकाले रजोधातुं पिवति प्रवरसुरन्णां सा मिक्षकाऽमृता, एकाऽवधूती, रुद्धेत्यर्थः । या बाह्ये भुक्तच्छदिः सा नीतार्थेन छर्दिबॅधिचित्तम्, गुह्यादिवक्त्रात् कुलिशमणियतं न बाह्ये प्रज्ञाब्जमध्ये प्रविष्टम् । एवमच्युतं विण्मुत्रं रक्तमांसं परमसमरसम् अधानं छविमध्ये प्रविष्टं निरुद्धं निरावरणं भवति । एत-ज्ज्ञानामृतं स्यादच्युतं पञ्जामृतं त्रिभुवन पतिना देशितं सर्वेतन्त्रे, न बाह्ये विष्टादिकं सिद्धये देशितमित्यमतिवयमः ॥ ८२ ॥

इदानीं बाह्ये समयरक्षणभक्षणमुच्यते-

प्रज्ञाधर्मोदये यत् पतितमिप सुखं रक्षणीयं प्रयत्नाद् यः कश्चित्तेन सत्त्वो भवति जिनकुले बोधिसत्त्वः स एव । तस्मात् तं भक्षयन्ति प्रतिदिनसमये राक्षसा मारभूताः प्रज्ञापुष्पेण युक्तं शिवसुखफलदं भक्षितं देशयन्ति ॥८३॥

प्रजेत्यादि । इह समापत्ती भावनां कुवंतो योगिनोप्यन्त्रितं बोधिचित्तं ^वयदि प्रज्ञाधर्मोदये पतित, तदा प्रजाधर्मोदये पतितमिष सुखं रक्षणीयं प्रयत्नात् । तत्कस्य हेतोः ? यः किंघचत्तेन बोधिचित्तेन समाधिनोत्सुष्टेन भवित, स जिनकुळे बोधिसत्त्व एव सुगतवंशप्रवर्धनो यस्मात् तस्मात् तं बोधिचित्तं सौगतानां रक्षारहितमसमाहितानां प्रतिदित्तसमये भक्षयन्ति वैमारभूता राक्षसाः शुक्राहारिणः, योगिव्यपदेशेन नरा अपि प्रज्ञायुष्पेण युक्तं शिवसुखकळदं भक्षितं देशयन्ति । अन्येषां वालजनानां नरकन्मनायेति ॥ ८३ ॥

नाकटचं वज्जमञ्जात् परमसुखगतं संकुचं नैव यावद् बुद्धाधिष्ठानमेवं प्रभवति हि यदा कामसिद्धिस्तदा वै। बज्जाञ्जाभ्यां प्रविक्य स्वकुलिशहृदये ज्ञानचकं प्रविष्टं चकाकारं करोति ह्यभयतनुमिमां रिक्मिभिः पूरियत्वा॥८४॥

ततो <u>बौद्धमन्त्रिणा नाकट्यं</u> वच्चमन्त्राद् यावन्त संकोचो भवति, बुद्धाघिष्ठानमेवं प्रभवति हि यदा कामसिद्धिस्तदा वे वच्चमार्गेण उपायहृदये प्रविष्य पद्ममार्गेण प्रज्ञाहृदये प्रविदय 'स्वकुलिशहृदये देवताचक्रं प्रविष्टं चक्राकारं करोत्युभयतनुमिमां रिश्मभि: पुरिवत्वेति ॥८४॥

एषा सिद्धियंदि स्यान्नहि कुलिशमणौ संस्थितं भक्षणीयं प्रज्ञाधर्मोदयस्थे सकलजिनकुलं स्थापयेद् रक्षणार्थम्।

१. भो. bLa Ma Yis (गुरुणा) । २. ज. 'यदि प्रज्ञापमंदय' पतित तदा' नास्ति, गृहीतस्तु भोटानुसारी । ३. भो. bDud Kyi Pho Na (मारदूताः)। ४. भो. Ran (स्तर्व)।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

प्रज्ञायुक्ते त्वर्थेके पुनरपि वचनं प्रोच्यते बुद्धकायो यः कश्चिच्चास्य नाशं ह्यभिलषितिशठो मार्यते विज्ञणा सः ॥८५॥

एषा सिद्धिनंहि स्याद्यदि, तदा कुलिशमणौ संस्थितं बोधिचित्तमनामाञ्जुष्टाभ्या गृहोत्वा भक्षणीयम् । एवं प्रज्ञायाः[182b] पद्मवाह्ये आगतं तदेव द्वाभ्यामपि भक्षणीयम् । प्रताधर्मोदयस्ये पुतः सकलजिनकुलं स्थापयेद्रक्षणार्थं वड्वज्ञाणि ललाटादिषु हृदयादिषु पडङ्गिमिति । प्रज्ञायुक्त इति रजोयुक्ते, अधैके बोधिचित्ते रिक्षिते महत्पुण्यं भवति । पुनरिष वचनं प्रोच्यते बुद्धकाय इदं बोधिचित्तम् । यः किद्मद् मारकायिकोऽस्य नाज्ञ-मभिल्पति शठो मार्यते विज्ञणा स हेरुकेणेति बोधिचित्तस्य समयरक्षणभक्षण-नियम: ॥८५॥

ये प्रोक्ताऽनेकमन्त्रास्त्रिभुवनपतिना क्रूरकर्मस्वभावा-स्ते सर्वे मारपक्षक्षयभयजनकाः प्राणिनां नो कदाचित्। कर्तारो ये स्मृतीनां रणविषयरता मारकान्येऽपि तीर्थ्या-स्तेषां ते योजनीयाः परमजिनस्तैः प्राणिनां रक्षणार्थम् ॥८६॥

इह मन्त्रनये ये प्रोक्ता अनेकमन्त्रास्त्रिभुवनपतिना क्रूरकमंस्वभावाः, ते सर्वे मारपक्षक्षयभयजनकाः प्राणिनां नो कदाचित् । अत्र माराः कर्तारो ये स्मृतीनां रण-विषयरता मारका अन्येऽपि तीथिकाः, तेषां ते योजनीयाः परमजिनसूतैः प्राणिनां रक्षणा-यंम । तेषां पक्ष इति वेदधमीदिकः, तस्य धर्मस्य क्षयभयहेतोः, न तेषां प्राणहानये ॥८६॥

डाकिन्यो वज्रपूर्वाः पशुजननिधनेऽध्येषणीया न विद्धिः सत्त्वानां रक्षणार्थं त्रिभुवनपतिना स्फारिता लोकघाती। तस्मात् ता रक्षयन्ति प्रतिदिनसमये साधकं द्वेषयन्ति साध्यः कर्मप्रभावाद् व्रजति हि मरणं साधकस्यैष मारः ॥८७॥

इह योगिनीतन्त्रे या वज्रडाकिन्यस्ताः पश्चनानामज्ञानिनां मारणार्थं नाष्येषणीया बौद्धेविद्वाद्भिः। कृतः ? यतस्ताः सत्त्वानां रक्षणार्थं त्रिभुवन पतिना स्फारिता लोकघातौ। तस्मात् ता रक्षयन्ति लोकान्। परमकारुणिकाः साधकं द्वेषयन्ति लोकविसंवादकम्, अथ मारणादिकमंणि कृते सति यदि साध्यः कर्मप्रभावाद वर्जात हि मरणम्, तदा साधकस्यैष मारो सया हत इत्यहङ्कारतः साधको नरकं याति क्षुद्रकर्मणिति निर्ममो निरहङ्कारः क्षद्रकर्म न करोति, यथा आत्मानं तथा पश्यति सत्त्वान् ॥८७॥

पंसां चित्तं समन्तादशुभफलवशात् क्षुद्रविद्यानुरक्तं करोति त्रिभुवनसकलं वश्यमेकक्षणेन। विद्येयं मे इत्याशालुब्धचित्तः प्रविशति नरकं ज्ञानदानं विहास पष्टे द्रव्यं स्वभार्या भवति परवज्ञाऽहो कुघमंप्रवृत्तिः।।८८॥

इह संसारिणां पुंसां चित्तं समन्तादशुभफलवशात् क्षुद्रविद्यानुरक्तम् । विद्येयं मे करोति त्रिभवनसकलं वश्यमेकक्षणेनेत्याशालुब्बवित्तः प्रविशति नरकं ज्ञानदानं विहाय मरणमपगतः। पृष्ठे मरणमुपगते सति परवशं द्रव्यम्, स्वभार्या परवशा भवति अन्या-सकता । अहो संसारिणां कूधमंत्रवृत्तिः ॥ ८८ ॥

> ⁹इति मुलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां द्वादशसाहस्त्रिकायां विमलप्रभायां योगिनीतन्त्र।दिस्फरणमहोद्देशः प्रथमो ज्ञानपटले ॥

(२) चतुःकायादिशुद्धिनिणंयमहोहेशः

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्। चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं नत्वा कायं महासुखम् ॥ उद्धतं मञ्जुवच्चेण आदिवुद्धान्निरन्वयात्। लक्षणं बुद्धकायानां चतुर्णां तद्वितन्यते॥

सहजतन्रियं धर्मकायो बभ्व न प्रज्ञा नाप्युपायः ज्ञानविज्ञानभेदात्। प्रज्ञोपायस्वरूपः खलु विगततमो संभोगकायः प्रतिरवक इवानेकसत्त्वार्थकर्ता सत्त्वानां पाकहेतोभविति पुनरसौ बुद्धनिर्माणकायः ॥८९॥

हानिरुपायः। एवं शुक्लो रात्रिः कृष्णो दिवा। अतः सहजकायो **न प्रज्ञा नाप्युपायः** सहजतनुरियं बृद्धानाम् । एवं न सच्छुक्तपक्षः, नासत्कलाभावः कृष्णः, न सदसद् अनयोः परस्परविरोधतो मेलापको नास्ति। न चाप्यतुभयात्मकर्मिति न चाभ्या शुक्लकृष्पक्षाभ्यां विना तत् सहजसुबस् । एवं चतुष्कोटिपरिशुद्धा षोडशी कला शून्यता-

न ^२प्रज्ञेत्यादि । इह प्रज्ञा पञ्चदशकलात्मकः शुक्लपक्षः, कृष्णपक्षश्चन्द्रकला-

t. मो. bLa Mas (ग्रह्मा)। Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

25

T 429

र्घामणी सहुजतनुरुच्यते, नि.ष्यन्दलक्षणात्तुर्याक्षयतो योगिनाम्। एवं नपंसकमिति सिद्धम् । इह सहजतुः स्वार्थसम्पत् परार्थसम्पदे धर्मकायो [183a] बभूव सुपुप्तसयतः। स च प्रज्ञोपायस्वरूपः खलु विगततमो ज्ञानविज्ञानभेवादिति । इह ज्ञानं प्राहकिचत्तं योगिनः, विज्ञानं परिवत्तज्ञानं ग्राह्यं ज्ञेयलक्षणम्। एवं ग्राह्कचित्तं प्रज्ञा कल्पनारहितत्वात्, योगिनामुपायो 'थ्राह्मचित्तं 'परिकल्पितं कश्णोलक्षणम् । तेन प्राह्कप्राह्मभेदेन प्रज्ञोपाय-स्वरूपः परार्थकर्ता धर्मकायः। स च सहजाद् वभवेति। एवं निष्यन्दो नाभौ सहजः, धर्मचके हृदये विपाकः, सोऽयं धर्मकायः संभोगकायः परार्थसम्पदे प्रतिरवक इवानेक-सत्त्वार्यकर्ता। इह दिव्यवक्षुपा यदतीतानागतं रूपं दृष्टं प्रतिविम्वाकारं स्वच्छम्, तस्मिन् शन्दो यो निश्चरति स प्रतिशन्दः सम्मोगकायः प्रज्ञोपायस्वरूपः। दिन्यश्रोत्रेण ³दिव्यविज्ञानं ग्राहकम्, प्रतिशब्दो ग्राह्यः। तेनातीतानागतकालसंख्यां जानाति— अमुककल्पेऽमुकयुगेऽमुकवर्षेऽमुकमासेऽमुकपशेऽमुकदिनादिकेऽमुको भूतः, अमुको भविष्य-तीति । तेन सत्त्वा वैनेया इति स्वप्नावस्थाक्षयतः कण्ठे पुरुषकारः सम्भोगकाय कब्बरेतसः। सत्त्वानां पाकहेतोभंबति पुनरसौ सम्भोगकायो निर्माणकायो भवति प्रज्ञोपायात्मकः। एकोऽपि सत्त्वानां नानानिर्माणदर्शनतोऽनेकः। एवमेकानेकयोर्योगो विवृत्या प्रज्ञोपायः, संवृत्या एकानेकविरोधः। स च जाग्रदवस्थाक्षयतो ललाटे वैमल्यो निर्माणकायः ''अशेषरूपसन्दर्शी रत्नकेतुर्महामणिः'' (ना० स० ९.२४) इति । एवमेकः सहजः, स एव वर्मः सम्भोगो निर्माणश्चेति चतुर्वेति ॥८९॥

विमलप्रभायां

एकोऽसौ वज्रसत्त्वः प्रलयघननिभो हेरुको वै बभुव रौद्राणां पाचनाथं स च समयजिनो मोहितानां सुखार्थम् । रत्नेशो दृ:खितानां स च कमलधरो रागिणां रागहेतो-विघ्नानां ध्वंसनार्थं त्वसिकरकमलोऽमोघसिद्धिबंभव ॥९०॥

स एव पूर्वोक्त एकोऽसी बज्जसत्त्वः प्रलयधननिभः कृष्णो हेरुको वै वभुव। अच्युतधर्मेणान्यत् तद्विज्ञानं हेरुकः । स च रौद्राणां पाचनार्थं वज्रसत्त्वस्फरणमिति । स च बज्जसत्त्वो मोहितानां पाचनार्थं समयजिनो वैरोचनो बभुव, अन्यत् तद्रुपम् । स च रत्नेशो दु: खितानां दानार्थं रत्तसम्भवो बभुव, अच्युतवर्मेणान्या सा वेदना सर्व-दः लापहन्त्रीति । स च कमलघरो रागिणां रागहेतोरिमताभो बभूव, अच्युतधर्मेणा-न्या सा संज्ञा या अच्युतसुखदात्रीति । स च विष्नानां ध्वंसनाथं त्वसिकरकमलोऽ-मोघिसिद्धिवंभूव, अच्युतधर्मेणान्ये ते संस्काराः, ये निरावरणं चित्तं कुर्वन्ति, माराद्या-वरणं विष्यसयन्तीति पञ्चबुद्धविशुद्धा इति ॥ ९० ॥

इदानीं पश्चधातव उच्यन्ते-

पटले, ८९-९१ इलो.]

द्वेषाद् या विश्वमाता प्रलयशिखिनिभा डाकिनी सा बभव मोहात् सा लोचनास्या परमकरुणया मामकी मानहेतोः। रागात् सा पाण्डराख्या सकलगुणनिधिस्तारिणी चेर्ष्यंया सा एतौ द्वौ विश्वरूपौ विषयविषयिणोऽन्ये च सर्वे बभूवुः॥९१॥

हेपादित्यादि । इह प्राकृतहेपक्षयान्महाहेषाद् या प्रज्ञापारिमता शून्यता सर्वा-कारा विश्वमाता, सा वक्रधात्वीश्वरी वक्रदाकिनी बभव। एवं मोहक्षयान्महामोहा-ल्लोचना परमकरुणया मामको मानक्षयात्महामानहेतोर्बभव । रागक्षयात्महा-रागात् पाण्डरा सा सकलगुणनिधिस्तारिणी सा ईंब्पाक्षयान्महेर्व्यातो वभूव। एवमन्य आकाशधातुः, अन्यः पृथ्वोधातुः, अन्यस्तोयधातुः, अन्य[183b)स्तेजोधातुः, अन्यो वायुधातुरिति धातुलक्षणं निरावरणविम्बतोऽच्युत भूखत इति सिद्धम्। एतौ द्वौ विश्वरूपो कालचक्रविश्वमातरो प्रज्ञोपायो एकलोलीभृतौ। विषयविषयिणोऽन्ये सर्वे बभुवः, गन्धादयोऽन्ये ते विषयाः श्रोत्राद्याः, अन्ये ते विषयिणः, अन्ये वाक्पाण्या-दयः, अन्ये कर्मेन्द्रियक्रियादयः। एवं---

> सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोम्खम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठित ॥ (भ० गी०. १३ १३)

वज्रसत्त्व इति । एवं-

आत्मवित् परवित् सर्वः सार्वीयो ह्यग्रपूद्गलः। लोकोपमामतिकान्तो ज्ञेयो ज्ञानाधिपः परः॥ इति। (ना० सं० १०.१३)

तथा-

सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सर्वसंकल्पवर्जितः। निर्विकल्पोऽक्षयो धातुर्धर्मधातुः परोऽव्ययः॥ (ना० सं० ६.१५)

[इति] नामसङ्गीत्यां ज्ञानकायलक्षणनियमः ॥ ९१ ॥

१. भो. bDen Pa Las (सत्यत:)।

१. च. 'ब्राह्म' नास्ति । २. मो. rTags Pa gSan To (परकल्पितं) । ३. भो. 'दिव्य' नाह्ति ।

इदानीं बुद्धानां सत्त्वाशयवशेन नानाविहरणमुख्यते—
पञ्चस्कन्धस्वभावैविहरति कृपया वज्ययोषिद्भगेषु
सत्त्वानां पाचनार्यं त्विविहितनियमानामपुण्याजितानाम् ।
शुद्धावासादिके यद्विहरति भगवान् श्रावकाणां निमित्तभवंकारे स्थितियां परमनियमिनामुत्तरे स्थापनार्थम् ॥९२॥

पञ्चेत्यादि । इह यत् क्लेशाद्यावरणरहितानां गर्भावक्रमणं पञ्चस्कन्धप्रहणं बच्चयोषि.दूगेषु स्त्रीगर्भे सम्भवाय विहरणम्, तत् कृपया अविहितनियमानां प्राकृत-जनानामपुण्याजितानां पाचनाय । तथाह—

वज्जकायशरीराणां बुद्धानां यदिनित्यता। कदलीगर्भतुल्येषु का चिन्ताऽन्येषु जन्तुषु॥

इत्यादिनाऽनित्यवादिनां पाचनाय। पुनः शुद्धावासादिके यहुत्यादः, स भ्रावकाणी देवत्वं गतानामहङ्कारिवनाशाय। इदं देवत्वं च्यवनकाले महद् दुःखमिति देशनया तेवां पाचनम् । एवंकारे स्थितियां शून्यतायां सा परमित्यमिनां सुभूत्यादोनां मैत्रेयप्रभृतीनामुत्तरे सम्यक्सम्बुद्धत्वे स्थापनाय चतुर्थकायदेशनयेति । शून्यस्वभावः शून्यता, इहातीतानागतं ज्ञेयं शून्यम्, तस्य दर्शनं भावः शून्यता, गम्भीरोदारा अतीतानागताभावाद गम्भीरा, अतीतानागतदर्शनाददारा । तथाह—

शून्यतावादी वृषभो गम्भोरोदारगर्जनः । धर्मशङ्को महाशब्दो धर्मगण्डी महारणः ॥ अप्रतिष्ठितनिर्वाणो दशदिग्धर्मदुन्दुभिः । अरूपो रूपवानप्रद्यो नानारूपमनो मयः ॥ सर्वरूपावभासश्चीरशेषप्रतिबिम्बधृक् ॥ (ना॰ सं॰ ८.२-३)

इति नामसङ्गीत्यां भगवतो नियमः॥ ९२॥

सत्त्वानां पाकहेतोस्त्रिविधविहरणं कायवाक्**चित्तभेदै-**र्बाह्याघ्यात्मं परं च प्रभवित नियतं विज्ञणः सर्वेकालम् । बाह्यं नानाप्रदेशे भवित वरतनौ प्राणवायोः प्रचारो भूम्यादौ मण्डले यत् प्रभवित च विभोर्वेष्त्रयोषिद्भगे तत् ॥९३॥ शब्दादो यच्च चित्तं त्रजति न विषये चापरं तद्वदेव एवंकारे स्थितियाँ परममुखपदे कायवाक्चित्तवेगः। एको वज्री त्रिभेदो विषयविषयिभिश्चावृतो घातुभिश्च ज्यध्वस्त्रिस्थानवासी त्रिभवमपि गतोऽनेकसत्त्वार्थहेतोः॥९४॥ तन्त्रेष्वेवं मया यत् श्रुतमिति वचनं तन्मया ज्ञातमेवं बज्री चन्द्रद्ववाद्यः शिरसि गलहृदब्जे च नाभौ च गृह्ये। वज्रस्त्रीणां भगे तत् परकमलगतो विन्दुमोक्षत्रयेण बुद्धक्षेत्रे प्रविष्टस्तिद्द स भगवान् योगिभिवेदितव्यः॥९५॥ एकं पश्यन्त्यनेकं प्रणिधगुणवशाच्छान्तरागादिभावे-श्चकस्थं पूर्वजन्मस्वहृदयजनितैर्वासनाया बलेन। एकार्थानन्तभाषा प्रविशति हृदये प्राणिनां स्वस्वभावे-श्चकस्थः पण्डपातंत्रजति विहरितुंस्था(ता)यिनांपुण्यहेतोः॥९६॥

10

15

20

तिर्यक्प्रेतासुराणामुरगसुरनृणाम् आर्यभोटादिकानां भूतेष्यद्वर्तमानं त्रिविधमपि सदा सत्यधमं बुवन्ती। मार्गे संस्थापयन्ती त्रिभवमविकलं स्वस्वभाषान्तरेण एषा सर्वज्ञभाषा समसुखफलदा देवभाषा न च स्यात्॥९७॥

बुद्धानामप्यगम्या त्वपरिमितगुणा बुद्धिनर्भाणमाया आत्मानं दर्शयन्ती त्रिभुवनित्रत्ये शक्रजालं यथैव । नानाभावैविभिन्ना सजिनसुरनृणां स्वस्विचत्ते प्रविष्टा एषामृत्यन्तधर्मा पयसि नभ इव भ्रान्तिदोत्पत्तिरत्र ॥९८॥

सर्वाकारं ह्यगम्यं विषयविषयिणां कायवर्ष्यं जिनस्य वाग्वज्ञं सर्वसत्त्वस्वहृदयक्तकैर्धर्मसंपादकं च। सत्त्वानां चित्स्वभावं सकलभुविगतं विज्ञणश्चित्तवज्ञं भावानां ग्राहकं यद् विमलमणिरिव ज्ञानवज्ञं तदेव।।९९।।

दानाद्याः षट् चतस्रः समसुखफलदाः शक्तयस्ता दशोका-

र_{े भो, sKyes} (भण्ट) durtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

मारक्लेशक्षया वे मदन इति हरो वज्जवृन्द्रं द्रुमाद्याः पण्मुद्राः शून्यषट्कं त्रिभुवनजनको ज्ञानविज्ञानमेकम् ॥१००॥ चक्रं स्वच्छं समन्तात् त्रिभव इति सुखं रत्नमस्येव रागः पद्यं क्लेशक्षयोऽसिः कुलिशमपि महाज्ञानकायो ह्यभेद्यः। छेदोऽज्ञानस्य कवीं त्विह षडिप कुलान्येभिक्तपादिता ये

यस्मिन् वै जातिरूपं व्रजित निधनतां तन्महारूपमुक्तं यस्यां संसारदुःखं व्रजित निधनतां सा महावेदनोका। यस्यां संसारसंज्ञा व्रजित निधनतां सा महावष्ट्रसंज्ञा यह्मन् संसारवृद्धिर्वजित निधनतां वज्ञसंस्कार एव ॥१०२॥

10

15

तेऽप्येवं वेदितव्याः खमिव समरसाः स्कन्धघात्विन्द्रियाद्याः ॥१०१॥

यस्मिन् ^{के}जाप्राद्यवस्या व्रजति निधनतां तच्च विज्ञानमुक्तं यस्मिन्नज्ञानभावो व्रजति निधनतां तन्मुनेज्ञानमेव । एते वैरोचनाद्याः परमजिनवराः पड्विधाः षट्कुलानि अन्ये पड्घातुभेदा अवनिशिखिययोमारुताकाश्रशान्ताः ॥१०३॥

यस्यां मोहः समस्तो व्रजति निधनतां लोचना सा धरित्री यस्यां मानः समस्तो व्रजति निधनतां मामकी साऽम्भ एव । यस्यां रागः समस्तो व्रजति निधनतां पाण्डरा सा हविः स्याद् यस्यामीर्ष्यां समस्ता व्रजति निधनतां तारिणौ साऽनिलञ्च ॥१०४॥

यस्यां द्वेषः समस्तो व्रजति निधनतां वज्जघात्वीश्वरी खं यस्यां मात्सर्यसर्वं व्रजति निधनतां विश्वमाताक्षरं सा । दृष्टादृष्टं हि रूपं मनिस नभिस वे पश्यते यः स चक्षु-दूराच्छ्रव्यं श्रुणोति प्रकटमिव महाश्रोत्रमेतिज्जनस्य ॥१०५॥ सर्वं गृह्णति गन्धं परमसुखकरं सा सुनासा विभोश्च सा जिह्ना या स्वचन्द्रामृतमिप च सदा स्वादते सौख्यदं च । वज्जस्पर्शे समन्तादपहरति सदा वज्जकायेन्द्रियं तत् प्रज्ञोपायप्रसङ्गाद् विशति समसुखे यो मनः सोऽस्य घर्मः ॥१०६॥

एते षड्भेदिभिन्ना विषयविषयिणो बोधिसत्त्वाः सभायां विक्वे रूपादयोऽमी जिनवरविषयाः षट्प्रकाराः समन्तात् । स्वच्छाऽजाता निरुद्धाः परमसुखकराऽनाविला ज्ञानगम्या नान्यो ग्राह्मस्त्रिधातौ तु सकलजगतक्वेन्द्रियद्वारगम्याः ॥१०७॥

अतो द्वानवतिवृत्तादूष्वं पञ्चदशवृत्तानि सुबोधानि ॥ ९३-१०७॥

ततो वृत्तैकं गूढम्, तदेव वितन्यते—
ज्ञानाक्वर्षिट करोत्यत्र पुनरतिबलस्तत्प्रवेशं च जम्भः
स्तम्भस्तद्वन्यनं वे परमसुखवशान्मानकस्तोषणं च।
चक्रस्य ज्ञानचके समरसकरणं वज्रवेगः करोति
एवं वे वज्रदेयः प्रकटितनियता योगिनौतन्त्रकाये॥१०८॥

ज्ञानेत्यादि । इह किल मण्डलचक्रभावनायां समयसत्त्वं निष्पाद्य ततो ज्ञान-चकस्याकर्षणं प्रवेशनं बन्धनं तोषणं समरसं कर्तव्यं मन्त्रिणा। जः हं वं होरिति वज्राङ्कशेनाकर्षणं वज्रेण प्रवेशनं वज्रपाशेन बन्धनं घण्टया तोषणं पूर्वदक्षिण-पश्चिमोत्तरद्वारेषु स्थितैः क्रोधराजैयोगिनीतन्त्रे वच्चडाकिनीभिः सर्वत्र कीर्तितम् । तदेवाध्यात्मन्युच्यते - ज्ञानाकृष्टि करोत्यत्र शरीरे पुनरतिवल इति । युवतीप्रसङ्गे ज्ञानसत्त्वः शुक्रं सन्ध्याभाषान्तरेण तस्याकर्षणं प्राणादिवायुवृन्द[्]भेदं करोत्युध्वे शिरसि परिपूर्णं करोति बोधिचित्तमित्यर्थः। तत्प्रवेशं च जम्भ इति तेजस्तद्द्राव-यित्वा द्रवस्य बिन्दुरूपस्य कण्ठे हृदये नाभौ गुह्यकमले प्रवे[184a]शं करोतीति। स्तम्भ इति पृथ्वीघातुस्तस्य बिन्दुरूपस्य बन्धनं करोत्यागतस्यातिवेगेन गन्तं न ददाति परमसुखवशादिति । मानकस्तोयधातुविन्दोः स्वच्छद्रवं गृह्यकमले वज्जमणी गतं स्पन्दमित्युच्यते, तस्याच्युतसुखवशात्तोयवातुस्तोवणं शरीरे शैत्यं करोतीत्यर्थः। पुनस्तत्स्थानादुध्वंगमनार्थं तदेव वितःध्यन्दसुखं लोचनादयः प्रबोधयन्ति बज्जगीति-काभिः पूर्वोक्ताभिः। ततो नाभौ 'निष्यन्दनार्थं लोचना चोदयति, हृदये मामकी विपाकार्थम्, कण्ठे पाण्डरा पुरुषकारार्थम्, शिरसि तारा वैमल्यार्थम्। एवमादिभि-रुत्थापितो महासुखो वैमल्यं गतः सर्वस्कन्घधात्वायतनादिकं निरावरणं करोति। ततः सर्वज्ञपदं योगिनां भवति, न कल्पितमण्डले योगिनीगीतेनोत्थापित इति नीतार्थः सर्वतन्त्रेषु संवृत्या विवृत्या चेति ॥ १०८ ॥

^{ै.} मृ. थर । २. मृ. जो. ৣমার্চ (দিলা) । Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

15

T 430

माराणां ताडनं वै त्रिभुवननिलये नीलदण्डः करोति बन्धं कोघोऽचलश्च प्रलयरविनिभः कीलनं चातिवीयः । टिकस्तदीर्यनाशं त्ववनितलगतं स्तम्भनं स्तम्भ एव उष्णीषश्चिद्धनाशं प्रकटितनियताः पूर्ववत् क्रोघदेव्यः ॥१०९॥ प्रेतानां पाचनार्थं स्फुरणमपि ततश्चर्चिकादेवंभूव इन्द्रादीनां सुराणां दिशि विदिशि तथा रक्षणार्थं जनानाम् । नागानां पाचनार्थं फणिकुलसकलं स्फारितं विज्ञिणा च दैत्यानां पाचनार्थं स्फरणमपि महाश्वानवक्त्रादिकानाम् ॥११०॥

ततो नीलदण्डादयः कर्मेन्द्रियिकयामाकाशे गमनागमनादिकं कुर्वन्ति मारा-दिकानां ताडनादिकं कृत्वेति सर्वमारकायिकान् चतुर्वेशारद्यबलेन निर्जित्य धर्मचकं प्रवर्तयित तथागत इति पूर्वोक्तलक्षण इति नियमः ॥ १०९-११० ॥

अन्यद् यत्किञ्चिदस्ति स्फरणमपि विभोर्मण्डले भूतजान्तं सत्त्वार्थहेतोर्वरविवधगुणं वेदितव्यं स्वकाये। एवं तन्त्राणि मन्त्रा विविधकुलगता योगिनीयोगभेदात सेकोऽस्मिन् द्विप्रकारोऽपि शिश्वगणवशाल्लोकलोकोत्तरस्य ॥१११॥

एवं निरावरणसुखादन्यद्यत्कि ब्लिदिस्त स्फरणमपि विभोमंण्डले भूतजान्तं साधंत्रिकोटिपर्यन्तमध्यात्मनि लोमपर्यन्तं निरावरणं धातुसमृहं सर्वसत्त्वार्थमेतद् वरिविवधगुणं वेदितस्यं स्वकाये । एवं तन्त्राणि मन्त्रा विविधकुलगताः, योगिनीयोग-भेदाल्लीकिकसिद्धय इति । सेकोऽस्मिन् कालचक्रे द्विघाऽपि शिशुगुणवशाद् लोकिकः, अनुत्तरोज्नुत्तरमार्गकाङ्क्षिणां गुणवशादिति नियमः ॥ १११ ॥

इदानीं लौकिकलोकोत्तराभिषेकार्थमुच्यते—

प्रज्ञाया या स्तनस्पृष्टिरपरममृतास्वादनालिङ्गनं यत् प्रज्ञासङ्गे चतुर्थक्षणममृतगतं बोधिचित्तद्रते यत्। तत् सर्वं लोकिकं वै परमकरुणया दिशतं मागहेतोः सेको लोकोत्तरो यः परमजिनपतेर्दिव्यमुद्रानुषङ्गः ॥११२॥

प्रजेत्यादिना । इह यद्धसितेक्षणपाण्याप्तिद्वन्द्व इति चतुर्विचोऽभिषेक आचार्य-गुह्य-

कलशादिकः, स सेकः संकेतमात्रं संवृत्याचार्यकरणाय, न तत्त्वम्, "सिवत्वा तत्त्वं प्रकाशयेत्" इति वचनाच्चतुर्विधः सेकस्तत्त्वं न भवति हसितेक्षणपाण्याप्तिद्वन्द्वयोग इति । इह तत्त्वं निद्वंन्द्वं कर्ममृद्राहेतुनोत्पन्नमद्वयज्ञानं न भवति विचार्यमाणम् । इह यदि प्रज्ञाया हेतुनोत्पन्नं सुखमुपायस्य प्रज्ञाज्ञानम्, तदा उपायहेतुनोत्पन्नं प्रज्ञाया उपाय-ज्ञानं भवति सिद्धये । एवं चेद् हे जाने भवतः, उभयज्ञानभेदात् । अतोऽद्धयं न भवति । अद्वयाभावाद् बृद्धत्वाभाव इति । अथ प्रज्ञाया ज्ञानं 'प्रजाज्ञानम्, तथापि दोषः, उपायस्य ज्ञानम्पायज्ञानमिति सिद्धम् । तस्मादुपायस्य सुखं क्षरं द्विधा वालं प्रीदम्, प्रज्ञायाः स्पन्दसुखं वृद्धम्, तयोर्द्धयोर्यदा निःस्पन्दं भवति महामुद्राद्वारेण ^वतद् द्वीन्द्रय-रहितमद्वयम् । अतः प्रज्ञायाः स्तनस्पर्शनादिकं लौकिकं दर्शितं मार्गावतारणार्थम् । सेको लोकोत्तरो यः परमजिनपतेर्दिव्यमुद्रानुषङ्गः स एवोच्यते ॥ ११२ ॥

चित्तस्याभासमात्रा स्वमनसि जनिताऽऽदर्शबिम्बोपमा वै योगीन्द्रैः सेवनीया सकलजिनसुतैः सेविताया च बृद्धैः। सा ज्ञानाचिः प्रवृद्धा दहति सविषयं मारवन्दं समस्तं रागादींश्चापि काये ददति समसुखं योगिनां वर्षयोगात ॥११३॥

चित्तस्याभासमात्रेत्यादि वृत्तं सुबोधम् ॥ ११३ ॥

प्रज्ञा ज्ञानं च चित्तं भवति दशविधस्तस्य चाभास एव सेकोऽस्मिन् मज्जनं यद्विमलशशिनिभादर्शविम्बोपमा(मं) वै। तस्मान्निर्वाणसौख्याच्युतमपि सहजं चाक्षरं वै चतुर्थं यस्यैतद् बुद्धवक्त्रं हृदयम्खगतं वर्तते श्रीगुरुः सः ॥११४॥

प्रज्ञा ज्ञानमित्यादि वितन्यते[184b]। इह प्रज्ञा च ज्ञानं च यथासंख्यं ग्राहक-चित्तम्, तस्य च ग्राहकचित्तस्य यो दशिवधो धुमादिको ग्राह्य आदर्शाभासः प्रतिसेनावत्, स एव ज्ञानं ग्राह्मचित्तमित्यर्थः। एवमादर्शे स्वचक्ष्ःप्रतिबिम्बिमव स्वचक्षुर्ग्राह्ममिति प्रज्ञा च ज्ञानं च। सेकोऽस्मिन् मज्जनं यदिति। इह ग्राह्मचित्ते ग्राहकाचित्तस्य यस्तस्मिन् प्रवेशो बाह्यविषयेष्वप्रवृत्तिः, प्रत्याहारो ध्यानं प्राणायामो घारणा मञ्जनिमत्युच्यते । षडङ्गेस्तस्मान्मज्जनान्निर्वाणसौक्ष्याच्युतमपि सहजं चाक्षरं वें चतुर्थं सुखं वालप्रौढस्पन्दानां परं लोकोपमामतिकान्तं त्रैलोक्याचारमुक्तमित्ययः। हसितेक्षणस्पर्शालिङ्गनपाण्यापिद्वन्द्वरहितं कर्ममुद्राज्ञानमुद्राहेतुरहितं शून्यतासर्वीकार-प्रतिभासलक्षणमिति । इदं **बुद्धवक्त्रं** ^३ज्ञानवक्त्रं <mark>यस्या</mark>चार्यस्य **हृदय**गतं भावितं स्वानुभवे-(भूतं) मुखगतं शिष्येभ्यः प्रतिपादनाय वर्तते सर्वकालम्, स भोगुरुवंजधर इत्यर्थः। नान्ये द्वीन्द्रियसुखावबोद्धार इति ॥ ११४॥

प्रज्ञा-ज्ञानम्, "चतुर्थं [तत्] पुनस्त्रवा" (तत्) पुनस्त

15

T 431

98

इदानीमस्य स्वचित्तस्याभासे प्रवेश उच्यते-प्रविष्टै: आकाशासक वितेर निमिषनयनैवं जमागं शून्याद् धूमो मरोचिः प्रकटविमलखद्योत एव प्र**दीपः।** ज्वाला चन्द्रार्कवज्ञाण्यपि परमकला दृश्यते विन्दुकश्च बुद्धबिम्वं विषयविरहितानेकसंभोगकायम् ॥११५॥

आकाशेत्यादिना । इह मन्त्रयाने पारिमतायाने द्विधा योगाभ्यासः—आकाशे योगाभ्यासः, अभ्यवकाशे च । य आकाशे योगमाप्स्यते स रात्रौ निविछद्रगृहेऽन्धकारे आकाशासक्तवित्तो घूमादिकं निमित्तं पश्यत्यनिमिषनयनो वज्रमागं प्रविष्ट इति । इह मध्यमाप्राणप्रविष्टः शून्यादेवाकाशासक्तचित्तैरनिमिषनयनैवंज्रमागं प्रविष्टेः शुन्याद्वमो मरीचिः प्रकटविमललद्योत एव प्रदीप इति निशायोगेन पश्यति। ततो निरम्नं गगनं पश्यति । ततो गगनात् पूर्नादवायोगे--"गगनोद्भवः स्वयम्भः प्रज्ञाज्ञानानळो महान्" (ना॰ सं॰ ६.२०) इति ज्वाला दश्यते निरम्रे गगने । एवम्-''वैरोचनो महादीप्तिर्ज्ञानज्योतिर्विरोचनः'' (ना॰ सं॰ ६.२१) चन्द्राभासः, जगत्प्रदीपः सूर्यः, ज्ञानोत्को वज्रराहुः, महातेजाः प्रभास्वरो विद्यत्परकलेति, विद्याराजोऽग्रमन्त्रेशो बिन्द्रक इति । 'एवं दशघा निमित्तं समाजादौ रात्रियोगेन, नामसङ्घीत्यां दिवायोगेन भगवतोक्तम् । ततो "मन्त्रराजो महार्यकृत" (ना॰ सं॰ ६.२२) इति सर्वाकारं पटघटादिकं विम्बदर्शनमिति । तन्मध्ये विन्दमध्ये बद्धविम्बं विषयं विरहितं द्रव्याभावात् कल्पनाभावादनेकसम्भोगकायम । ततो बिम्बयोगेनानाहतध्वनिर्यः, स एव श्रुयते । एवं निर्माणकायो रूपावभासतः, शब्दावभासतः सम्भोग इत्यर्थः ॥११५॥

आकाशं स्तब्धदृष्ट्या जलधररहितं योगनाऽऽलोकनीयं यावद्वे कृष्णरेखा स्फरदमलकरा दृश्यते कालनाडचाम् । तस्यां सर्वज्ञिब्स्वं पयसि रविरिवानाविलं विश्ववणं सर्वाकारं स्वचित्तं विषयविरहितं नापरं चित्तमेव ॥११६॥

अत्र दिवायोग आकाशं स्तब्धदृष्ट्या जलघररिहतं योगिनाऽऽलोकनीयं पूर्वाले अपराह्ने रवे: पृष्ठं दत्त्वा। अन्यथा रविरिद्धिमिस्तिमिरं भवति, तेन तद्वाधात्। प्रतिदिनमवलोकनीयं **यावद्बि**न्दुमध्ये कृष्णरेखा बालप्रमाणा स्फुरदमलकरा दृश्यते । कास्त्रनाह्यामवधूत्यामन्तर्भतं सर्वज्ञविम्बं त्रेवातुकमशेषं पयसि रविरिवानाविस्रं विद्ववर्णं सर्वाकारं स्वचित्तं विषयविरहितं नापरं चित्तमे[1854]व परचित्तं न भवति, परचित्तज्ञानाभावात् । इह प्रथमं स्वचित्ताभासो मासचक्षुषा तथागतस्य दृश्यते, दिय्यादि-चक्षपा परचित्तज्ञानं दृश्यते, तेन धर्मसंग्रहे उक्तानि पञ्चचक्षपि भगवत इति । एवं क्रमान्मांसचक्षुर्दिव्यचक्षुर्वेद्वचक्षुःप्रज्ञाचक्षुर्ज्ञानचक्षुर्भावनाबलेन भविष्यति । ततोऽदृष्टं न किञ्चिदस्ति सर्वजस्येति ॥११६॥

दुष्टे बिम्बे प्रकुर्यात् प्रतिदिनसमये प्राणवायोनिरोधं यावद्वे भ्राम्यमाणं स्वतन्परिवृतं दृश्यते रश्मिचकम्। षण्मासैः स्पर्शहीनं व्रजति समसुलं मार्गेचित्तं यतीनां रागारागान्तगाद्यं क्षणमपि च विभोवंधते श्वाससंख्यम ॥११७॥

ततो दृष्टे बिम्बे प्रकृषात प्रतिदिनसमये प्राणवायोनिरोधमिति कुम्मकम्, यावदे भ्राम्यमाणं स्वतनुपरिवृतं दृश्यते रश्मिचक्रं पूर्वोक्तविम्बादध्यात्मनि । ततः षण्मासैः स्पर्शहीनं द्वीन्द्रयद्वन्द्वरहितं वजित समसुखमक्षरसुखं मार्गचित्तं श्नयताविम्बचित्तं यतीनामादिकमिकब्रह्मचारिणाम् । तत एकक्षणाभिसम्बोधिलक्षणं रागारागान्तगाद्यं क्षणिमति । राग इति शक्लपक्षस्तस्यान्तगं षोडगीकलालक्षणम् । अरागः कृष्णस्तस्या-दिगं कृष्णपक्षेन प्रविष्टमिसम्बोधिकाललक्षणम्, तदेव क्षणमपि वर्धते स्वाससंस्यं द्वययतद्वयष्ट्रशतसंख्यमिति । गृह्ये वष्यमण्यग्राद्वधंते पट्त्रिशच्छतैः क्षणैः प्राणांस्तत्संख्या-न्मारियत्वा गृह्यपदां प्राप्नोति, तेन भूमिद्वयं भवति । एवं नाभौ हृदये कष्ठे ललाटे चतस्रः षडप्टदशभूमयो भवन्ति । उष्णीषे द्वादश सर्वप्राणानां क्षयेणीत ॥११७॥

ओड़ा ज्वालान्तराले विरमसहजयोर्जानविज्ञानमध्ये निद्रा घुर्मामिसन्धौ कुलिशकमलयोगंत्सुलं द्वन्द्वयोगे। वृद्धि तस्य प्रकुर्याद् गुरुनियमवशाद् वर्धते नात्र चित्रं हत्वा क्लेशांश्च मारान् विशति जिनपति वर्षयोगात् सुयोगी ॥११८॥

अत ओड़ा ज्वालान्तराले आगतं गुद्धो, विरमसहजयोमंध्येनाभौ, निद्राधूर्माभि-सन्धो हृदये, ज्ञानविज्ञानमध्ये कष्ठे, कायवाक्चित्तज्ञानविन्दुरूपेण घल्ललाटादागत द्वन्द्वयोगे सुखम्, वृद्धि तस्य सुखस्य शुक्रस्य प्रकुर्यादृष्यंगमनम्। गुरुनियमवज्ञात् पूर्वोक्तात् प्राणिनरोधाद्वधते नात्र चित्रं ललाटं यावत्। एवं हत्वा क्लेशांश्च मारान् विज्ञति जिनपति वामदक्षिणगतान् प्राणान् मारयित्वा विज्ञति जिनपति शून्यताबिम्बम् । वर्षयोगात् सुयोगी अवधूत्यां स्थितः। ततः कुम्भकेन महासुखक्षणमुत्पाद्य विवर्धयेत् सुखमिति नियमः ॥११८॥

इदानीं बिम्बलक्षणमुच्यते-भूम्याकारो दृढो न द्रतसल्लिवपुनं द्रवस्त्वद्रवत्वाद्

रे. पर्वं नास्ति । २ व रहितं । Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of La e Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

25

शून्याकारोऽपि दृश्यः सितहरितमहाविश्ववर्णो न वर्णः स्वहृदयकलुषक्लेशमारप्रभावात् ।।११९।। सर्वाकारोऽप्यदश्य:

भूम्येत्यादिना । इह शून्यप्रतिभासो रेब्रव्यो भूम्याकारो दृश्यते न दृढः, दुता-कारो मरोबिको जलवन्त च जलमद्रवत्वात्। एवं बह्नचाकारो न बह्निः। चलपवन-तनुरद्रवत्वान्निश्चलो यः सोऽनिलो न । अद्रव्याच्छून्<mark>याकारः, तदपि दृश्यते</mark> मायानगर इव सितादिवर्णयुक्तोऽप्यद्रव्यत्वाम च वर्णः। सर्वाकारोऽपि स सर्वदा बालानामदृश्यः । तत् कस्य हेतोः? क्लेशमारप्रभावाद् वामदक्षिणनाडीप्राणप्रचारादिति नियम: ॥ ११९ ॥

इदानीं स्थानं नाडीगमनायोच्यते-

45

नादो बिन्दुः कला ज्ञानममृतपदगाः शृङ्खलाबद्धनाडघः प्राणापानित्रमार्गाः सकुलिशकमलं वज्रमेवाब्जयुक्तम् । वाय्वोः संघट्टमध्ये विषय विषयिणां निर्गमश्च प्रवेशो धमादीनां निमित्तग्रहणमपि च यत् सर्वमेतद् रहस्यम् ॥१२०॥

नाद इत्यादिना । इह नादो हृदये चित्तबिन्दुः सुषुप्तावस्थाजनकः । बिन्दुरिति ललाटे कायबिन्दुर्जाग्रदवस्थाजनक इति । कलेति कण्ठे वाग्बिन्दुः स्वप्नजनकः। ज्ञानिमिति नाभौ ज्ञानिबन्द्स्तूर्याजनक इति । अमृतपदगाः शृङ्खलाबद्धनाड्य इति । अमतपदं ललाटम्, तत्र गता अमतपदगता ललनारस[185b]नाऽवधत्यः, ताश्च(तास) शृह्वलाबद्धे(न्धे)न नाभिहृदयमध्ये त्रिपथं कृत्वा पूनरवध्तीमध्ये हृस्कर्णिकां भेदियत्वा व्रजित ललना रसनासव्यवामदलप्रचारेण, ततो हृदयकण्ठमध्ये त्रिपथं कृत्वा पून-र्वजित, एवं ललाटकण्ठयोर्मध्ये त्रिपयमुब्लीपललाटयोर्मध्ये त्रिपथम्, एवं चतुस्त्रि-पथान कृत्वा ललना वामनासारन्ध्रेण "व्रजति परपदं द्वादशान्तं कलान्तम्" (का॰ तं॰ २,४७) अध्यातमपटलोक्तम् । रसना दक्षिणेन अवधती यौगपद्येन रन्ध्रद्वयेन व्रजति । एव-मधो नामिगुह्यमध्ये त्रिपयं कृत्वा विष्मुत्रनाडी वामदक्षिणेन गत्वा दाङ्किनी मध्ये गह्यकमले गह्यकम³लाघो विण्नाडीमध्यगता वामेन लिङ्के भगे वा मृत्रनाडीगता दक्षिणे शक्रनाडोगतेति नाडिकासंचारः पूर्वोक्ताध्यात्मपटले। एवं प्राणापानित्रमागी इति ऊर्ध्वं वामदक्षिणमध्यमार्गाः प्राणस्य, अघो विण्मृत्र^४शुक्रमार्गा अपानस्य । **सकुलिश-**कमलं स्त्रीणां योनिः स्पन्दत्वात् । समणिवज्रं क्षरत्वादेवावज्रयुक्तं विकाशतः इति । बाथ्वोः संघट्टमध्ये नाभौ प्राणापानयोः संघट्टमध्ये । विषय इत्यविभक्तिकं पदम् । विषयेषु विषयिणां चक्षुरादीनां "नाडीनां निर्ममः प्रवेशस्च नाभो । स एव पूर्वोक्तः । धूमादीनां पटले, ११९-१२२ क्लो.] चतुःकायादिशुद्धिनिर्णयमहोद्देशः

निमित्तप्रहणमवध्तीद्वारेण, अपिशब्दात् तदेव नाभौ । सर्वमेतद्रहस्यं गोपनीयं बाल-जनानामिति नियमः ॥ १२०॥

इदानीं योगोपसंहार उच्यते-

मध्ये प्राणप्रवेशः सरविशशिगतेर्बन्धनं सब्यवामे मुद्राप्रसङ्गे परमसुखगतं वज्रसम्बोधनं च। पद्मे वच्चध्वनिर्वा स्वकरसिललजोल्लालनं सौस्यहेतो-र्वीजात्यागः ससौक्यो मरणभयहरः श्रीग्रोर्वक्त्रमेतत् ॥१२१॥

मध्ये प्राणेत्यादिना । इह प्रथमं योगिना मध्ये प्राणप्रवेशः कर्तव्योऽवध्त्याम्, येन निमित्तं पश्यति, 'इत्येकं श्रीगुरोर्व्द्वस्य कायवज्यं वक्त्रमुच्यते । तस्मात् सरविणा दक्षिणगतिना सार्वं श्राशिगतेर्वामनाडीगतेः, बन्धनं प्राणस्येति नियमः, प्राणायामो द्वितीयं वाग्वज्रम् । चित्तं मुद्राप्रसङ्गे विम्बेऽनुरक्तं बोधिचित्तं दुतं तृतीयं चित्तवक्त्रं परमसुखगतं वज्रसम्बोधनं च। अथ विम्वद्वारेणानन्दं न भवति, तदा पद्ये वज्रध्वनिर्वा शनकै: कर्तव्य:। अथ स्त्री न लभ्यते, तदा स्वकरमलेनोल्लालनं कर्तव्यं सौस्यवद्धि-हेतोः, न क्षरणहेतोः। एवं बीजात्यागः ससौस्यो भवति मरणभयहरः श्रीग्रोवंक्त्रं चतुर्थं ज्ञानवज्रमेतिदिति योगाभ्यास इति नियमः ॥१२१॥

इदानीं वश्चमण्डलक्षय उच्यते-

पृथ्वी तोयं प्रयाति ज्वलनमपि जलं पावको मारुतं च वायः शन्यं च शन्यं व्रजति दशविधं वै निमित्तं निमित्तम् । सर्वाकारं प्रयात्यक्षरपरमसुखानाहतं ज्ञानादृद्धिश्च सिद्धिर्भवति नरपते जन्मनीहैव पुंसाम् ॥१२२॥

³पृथ्वीत्यादिना । इह यदा योगी अनिमिषनयनो भवति क्रोधदृष्ट्या शन्ये आरोपितचित्तः, तदा वामे वा दक्षिणे वा पृथ्वीत्यपलक्षणम्, यदा दक्षिणे पथ्वी-प्रवाहकाले योगी भावनां करोति, तदायं विधिनं पुनवीमनाडीप्रवाहकाले आकाश-मण्डलादिक्रमतः। तेन वामे वा दक्षिणे वा यन्मण्डलं वहति प्राणस्तद्धमित्वात्तदेव मण्डलमुच्यते । तेन दक्षिणनाड्यां पृथ्वीमण्डले प्राणोःक्षमण्डलं याति । एवं ज्ञान-मण्डलं यावद् वामनाड्यामाकाशादिना याति । एवं शुन्यं वजित दश्चविघं निमित्तं धूमादि[1864]कं निमित्तं सर्वाकारं विम्बं वर्जात, विम्बादशरमुखं वर्जात, तदेव

१. च. बदस्यो। २. च. अन्ये। ३. च. लोर्ब्यं। ४. च. गुह्म। ५. भोर

^{&#}x27;नादीना' नास्ति । Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji भूग कियो। 1926 जनर मेहिंb 2015 भूमिरित्या।

९८ ज्ञानं प्रज्ञापारमितायाः। ज्ञानावृद्धिः चाकाशगमनादिका, सिद्धिः च त्रेधातुकेश्वरस्वं भ भवति नरपते जन्मनीहैव पुंसामिति मार्गप्रवेशनियमः॥ १२२॥

इदानीं चतुष्कायानां घोडशप्रभेदा उच्यन्ते— कामा निर्माणकायः प्रभवति नियतस्तस्य वागेव पूर्णा ज्वाला निर्माणचित्तं परमसुखकरं ज्ञानमेवास्य चोड्रा । बानन्दो भोगकायः स परमविरभानन्दमस्य क्रमेण वाक्चित्तं ज्ञानवर्ष्यं भवति हि सहजानन्दमेवास्य शम्भोः ॥१२३॥

कामेत्यादि । इह समुदयसत्याद् यत्रैकः कायस्तवान्येऽपि वाक्चित्तादय इति ।
कामा इति कायानन्दस्य निरोधान्निर्माणकायो बुद्धस्य भवति नियत इति ।
तस्य निर्माण कायस्य यो वागानन्दक्षयः, वागेव सा पूर्णा । ज्वाला निर्माणिचत्तं
ज्वाला इति चितानन्दनिरोधः । परमसुखकरं ज्ञानवच्चं निर्माणस्य । ओड्रा ज्ञानानन्दनिरोधः । एवं निर्माणचतुष्टयं तथा सम्भोगचतुष्टयम् । आनन्दो भोगकायः
कायपरमानन्दनिरोधः, स परमविरमानन्दमस्य क्रमेणिति । परमानन्दः संभोगवाक्
वाक्परमानन्दतिरोधः, त परमविरमानन्दमस्य क्रमेणिति । परमानन्दः संभोगवाक्
वाक्परमानन्दतिरोधः, स परमविरमानन्दमस्य क्रमेणिति । परमानन्दनिरोधः । एवं
वाक्परमानन्दतिरोधः सहजानन्दः सम्भोगस्य (शम्भोरस्य) ज्ञानपरमानन्दनिरोधः इति
सम्भोगस्ततो धर्मचतुष्टयम् ॥ १२३ ॥

T 432

20

कम्पा वै धर्मकायस्त्रिभुवननिमतस्तस्य वागुन्द्रवः स्याद् धूर्मा वै धर्मेचित्तं भवभयमथनं ज्ञानमस्येव निद्रा । वर्णो वै शुद्धकायः स्वररहितकलाबिन्दुनादाः क्रमेण वाक्चित्तं ज्ञानवज्ञं त्रिविधभवगतं शुद्धकायस्य शम्भोः ॥१२४॥

कम्या वै कायविरमानन्दः, तस्य निरोधो धमंकायस्त्रिभुवननिमतस्तस्य धमंस्य वागुद्भवः स्यादिति वाग्विरमानन्दिनिरोधः। धूर्मा वै चित्तविरमानन्दिनिरोधः, धमंचित्तं भवभयमथनं धमंज्ञानसस्य निद्रा ज्ञानिवरमानन्दस्य निरोध इति । वर्णो वै इति कायसहजानन्दः, तस्य निरोधः शुद्धकायः । स्वररहितकलाधिन्दुनादाः क्रमेणेति । कलेति वावसहजानन्दिनरोधः शुद्धवाक् । विन्दुरिति चित्तसहजानन्दिनरोधः शुद्धवातम् । एवं ज्ञानवच्चं त्रिविध-भवगतं शुद्धकायस्य शम्भोः वच्चसत्त्वविध-भवगतं शुद्धकायस्य शम्भोः वच्चसत्त्वविद्यं (ना० सं० ९.१५) इति वचनात् । योडशाकारं तत्त्वं महाक्षरसुखं विवृत्या, संवृत्या द्वादशाकारं वुद्धानं संसारिणां च । तेत द्वादशाक्तारं प्राणक्षयेण "वच्चसूर्यो महालोकः" (ना० सं० ९.१५) रजोनिरो-

घतः । षोडशकलाशुक्रनिरोधेन "वज्जेन्दुविमलप्रभः" (ना० सं० ८.३३), "षोडशाकार-तत्त्ववित्" (ना० सं० ९.१५) इति भगवान् कालचकः सिद्धः ॥ १२४॥

इदानीं जाग्रदादिनिरोध उच्यते—

जाग्रत्स्वप्नस्वरूपं पुनरपरिमदं सुप्ततुर्यस्वभावं कायस्थं क्वासलीनं विचरति विषयान् निक्चलं चित्तलीनम् । ज्ञानस्यं स्त्रीप्रसङ्गात् क्षणमि च भवेद् बोधिचित्तं द्रुते च निर्माणादेः क्रमेण प्रभवित नियतं चित्तवळं चतुर्घा ॥१२५॥

जाग्रदित्यादि । इह संसारिणां कायस्थम् इति शिरसि स्थितं बोधिचत्तं जाग्रत्लक्षणं भवति, श्वासलीनमिति कण्ठे गतं स्वत्नस्वरूपं भवति, उभयावस्थायां भविचरति विषयान् । निश्चलं चित्तलीनं हृदयगतं पुनरपरिमदं तृतीयं चित्तं सुषुप्रस्वभावम् । जानस्यमिति नाभिस्थं तुर्यस्वभावं स्त्रीप्रसङ्गान्व्युतक्षणलक्षणम् । बोधिचित्ते हृते सिति तदेव चित्तं चतुर्विधं निरुद्धं निर्माणसम्भोगधमसहुजकायलक्षणं बुद्धानां भवति । तेन निर्माणादेः क्रमेण प्रभवित नियतं चित्तवच्चं चतुर्वेति ॥१२५॥

एवं चित्तं चतुर्धा त्रिविधभवगतं प्राणिनां बिन्दुमध्ये योगीन्द्रे रक्षणीयं सममुखफलदं व्यापकं मोक्षहेतोः। बिन्दोर्मोक्षे क्व मोक्षो गतपरमसुखे योगिनां जन्मबीजे तस्मात् संसारसौक्यक्षण इह यतिभिः सर्वदा वर्जनीयः॥१२६॥

एवं जाग्रदादिलक्षणं चित्तं संसारिणां चतुर्घा त्रिविधमवगतानां बिन्दुमध्ये वोधिचित्ताधारे वोधिचित्तम्, [186b] तदेव योगीन्द्रे रक्षणीयं सममुखफलवमक्षरसुखफलदं व्यापकं मोक्षहेतोः। बिन्दुमोध्ने सत्याधारे पतिते वय मोक्ष आधियस्य
वोधिचित्तस्य गतपरममुखे आधारे योगिनां जन्मबोजे। तस्मात् संसारसोल्यक्षण
इह यतिभः सर्वदा वर्जनीयः। इह करः (क्षणः ?) क्षरः स्पन्द इति वर्जनीय इति
भगवतो नियमः। उज्ञ्वें कर्तव्यं योगिना निःध्यन्दादिना यावद् वैमल्यं भवति। यथा
आगतं तथा गतमित्यक्षरमुखोत्पादनियमोऽपरक्ष्लोके एकत्वमित्यादिना परमाक्षरज्ञानसिद्धौ विस्तरेण वक्तव्यं (व्यः)। तेनात्र परिच्छेदः॥ १२६॥

इति मूलतन्त्रानुसारिण्यां लघुकालचक्रतन्त्रराजटीकायां द्वादश्वसाहलिकायां विमलप्रभायां चतुःकायादिशुद्धिनिणयमहोद्देशो ज्ञानपटले द्वितीयः ॥ Eò

T 433

पटले, १२७ इलो.]

३. परमाक्षरज्ञानसिद्धिर्नाम महोद्देशः

नमः श्रीवज्ञसत्त्वाय । नमो महामुद्रायै परमाक्षरसुखाय । नमो गुरुबुद्धबोधि-सत्वेभ्यः । नमः कोघराजवज्जडाकवज्जडाकिनीभ्यः ।

इदानीमक्षरोद्भवसहजकायस्यालिकालिपद्मचन्द्रादित्यासनहूंकारपरिणतिचह्नो-त्यादरूपवर्णभुजसंस्थानपरिकल्पनाधर्मप्रतिवेचो हि यस्मात्तस्माद्भगवतः परमाक्षरज्ञान-सिद्धिरूच्यते—

एकत्वं ह्यादिकाद्योः शशिदिनकरयोरासनं विज्ञणो न हूंकारेणैव चिह्नं परिणतमपरं नेष्यते वर्णरूपम् । उत्पन्नस्याक्षरेण क्षरनिधनगतस्यास्य दिव्येन्द्रियस्य सर्वाकारस्य बिन्दोः परमजिनपतेर्विश्वमायाधरस्य ॥१२७॥

एकत्वं मित्यादिना । एकत्वं ह्यादिकाद्योरिति । 'आदिरकारादिस्वरसमूही हकारहचन्द्रः, प्रत्येकं स्वरहच । ककारादिव्यंञ्जनसमूहः, क्षकारः सूर्यः प्रत्येकं व्यञ्जनं च । व्योरादिकाद्योः क्षित्राद्यं कार्याने का

"न धरित न चलत्वपरस्थानं गच्छतीत्यक्षरशब्देन स्वर इत्युच्यते"। तेन कुमन्त्री भ्रान्तोऽक्षरत्वेन स्वरसमूहं गृह्णिति व्यञ्जनसमूहं वा । परमार्थतः स्वरव्यञ्जनसमूहं ज्ञानं वष्ठासत्त्व इति । तथा मनस्त्राणभूतत्वान्मन्त्रोऽपि परमाक्षरज्ञानमुच्यते । तथाऽपराध्यात्मिको विद्या प्रज्ञापा[1874]-रिमता प्रकृतिप्रभास्वरा महामुद्रा सहजानन्दरूपिणी धर्मधातुनिःस्पन्दपूर्णविस्था सहजनतुरित्युच्यते जिनैः । तो प्रतीत्यसमुत्पनानामिन्द्रियाणामगोचरौ दिव्येन्द्रियगोचरौ वच्यसत्त्वबुद्धमातरौ परमाक्षरसुक्षस्वभावो परमाणुधर्मतातीतौ आदर्शप्रतिसेनास्वप्नतुत्वौ परमाक्षरस्वस्थाविति । अत्राक्षराणीति रूपवेदनासज्ञासस्कारिवज्ञानानि निरावरणानि पञ्चाक्षराणि महाधून्यान्युक्तानि । तथा पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशधातवो निरावरणाः

पञ्चाक्षराष्युवतानीति । यडक्षराणि चक्षुश्रोत्रघाणिज्ञ्चाकायमनांति निरावरणानि प्रत्येकस्वस्वविषयप्रहणविज्ञानि । तथा रूपाब्दगन्धरसस्पर्धधर्मधातवो निरावरणाश्च यडक्षराण्युवतानीति । एतानि स्कन्धधात्वायतनान्येकसमरसीभूतानि विन्दुरूप्यो भवति । स च विन्दुर्ज्यतः सन् परमाक्षर उच्यते । परमाक्षरोऽप्यकारोऽज्यकारसंभवः सम्यवसंबुद्धः प्रज्ञोपायात्मको वच्यसत्त्वो नपुंसकपर्व सहजकाय उच्यते ज्ञानज्ञेयात्मकः, हेतुफलयोरभेद्यत्वात् । स च कालचको भगवान् परमाक्षरमुखपदमित्युवतं भगवता नामसंगोत्वां वच्यधातुमहामण्डलस्तवे प्रथमक्लोकेन—

तद्यथा भगवान् वृद्धः संबुद्धोऽकारसंभवः। अकारः सर्ववर्णाश्यो महार्थः परमाक्षरः॥ इति।

(ना॰ सं॰ ५.१)

15

तथा कृत्यानुष्ठानज्ञानस्तवे द्वितीयक्लोकेनोक्तम्, तद्यथा—
सर्वमन्त्रार्थजनको महाबिन्दुरनक्षरः ।
पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः पडक्षरः ॥ इति ।
(ना॰ सं॰ १०.२)

तथा मूळतन्त्रेऽप्युक्तम्, तद्यथा— आदिकादिसमायोगो वच्चसत्त्वस्य विष्टरः। अक्षरोद्भवकायस्य हंकाराद्यं न चेव्यते॥ इति।

अनेनाक्षरोत्पन्तस्य क्षरिविधनगतस्यास्य विव्येन्द्रियस्येति क्षर उत्पादिनरोधा-वस्यालक्षणशच्युतिकाणः, स यस्य निधनं गतः, स परमाक्षरोऽच्युतक्षणः काल इत्य-भिधीयते । तदेव वज्जज्ञानमिति । 'तस्य कालस्य निरावरणं स्कन्यधात्यायतनं चक्रं त्रिभवस्येकत्वं निरावरणं ज्ञेयमिति । तदेव वज्जधातुमहामण्डलमित्युच्यते सर्वाकारं सर्वेन्द्रियं विन्दुरूपं विश्वमायाधरं भगवतः शरीरं प्रज्ञोपायात्मकमित्युवतं भगवता तन्त्रराजे पञ्चमपटले पञ्चाकारस्तवे द्वितीयवृत्तेन । तद्यथा—

> कार्ल विश्वादि बज्जं पृष्यमनुषमं सर्वगं निष्यपञ्चं कूटस्यं कर्णनासामुखनयनशिरः सर्वतः पाणिपादम् । भूतान्तं भूतनायं त्रिभुवनवरमृक् कारणं कारणानां विद्याद्यं योगगम्यं परममुखपदं कालचकं नमस्ये ॥ इति । (का॰ त॰ ५.२४५)

१. च. तुल्य।

१- मी. 'आदिः' नास्ति । २. च. यकार । ३. च. यकार । ४. च. रज ।

िज्ञान-

£2

15

20

T 434

5

तथापराध्यात्मविद्याप्युक्ता भगवताऽध्यात्मपटले 'वण्णवितमेन वृत्तेन-

साङ्गो वेदो न विद्या स्मृतिमतसहितस्तर्कसिद्धान्तयुक्तः शास्त्रं चान्यद्धि लोके कृतमपि कविभिन्यसिवैश्वानराद्येः। विद्येत्यध्यात्मविद्याक्षरमपि मुनिभिः प्रोक्तमेवात्र लोके त्रैलोक्यं यत्र कृत्सनं भवति नरपते लीयते यत्र भ्यः ॥ [187b]इति । (का० त० २.९६)

पुनः स एव कालचको भगवान् प्रज्ञोपायात्मको ज्ञेयज्ञानसम्बन्धेनोक्तः। अत्र परमाक्षरज्ञानं सर्वावरणक्षयहेतुभृतं काल इत्युक्त उपायः । ज्ञेयं त्रेधातुकमनन्तभावलक्षणं चक्रम्, तदेव प्रज्ञा। ज्ञानज्ञेययोरेकत्वं कालचक्रमिति। उक्तं भगवता तन्त्रराजे पञ्चमपटले त्रिषष्टितमेन वृत्तेन कालचक्रस्य चक्रम् । तद्यथा-

> बद्धक्षेत्राण्यनन्तान्यपरिमितगणा घातवश्चाम्बराद्याः स्थित्यत्पत्ती विनाशस्त्रिविध इति भवः पञ्जतौ सर्वसत्त्वाः। बद्धाः क्रोधाः सुराद्याः सकरुणहृदया बोधिसत्त्वाः सभार्या एतच्चक्रं जिनस्य त्रिभुवननिमतस्यैकमेकस्य शम्भोः ॥ इति । (का० त० ५.६३)

कालस्य ज्ञानरूपस्य ज्ञेयलक्षणं चक्रम्, अनयोज्ञीनज्ञेययोरेकत्वं कालचक्रमिति । अनेनोक्तकमेण स एव कालचक्रो भगवानेवंकारो वष्त्रसत्त्वः सर्वतन्त्रेषु संगीतो जिनैः। उक्तं भगवता मुलतन्त्रे पञ्चमे पटले-

> अभेद्यं सर्वतो ज्ञानं वष्त्रमित्यभिधीयते । त्रिभवस्यैकता सत्त्वो वज्रसत्त्व इति स्मृतः ॥

तस्मादस्याक्षरोत्पन्नस्य सर्वाकारस्य बिन्दोः सहजकायस्य सकलजिनपतेर्विश्व-मायाधरस्याधाराधेयसम्बन्धो नेष्यते महामुद्रासिद्धवर्थम् । यथा लौकिकसिद्धिसाधनार्थ-माधाराधेयसम्बन्ध इष्यते, तथा परमाक्षरसुखसाधनाभिरतेन योगिना, सद्गुरूपदेश-लब्बेन, दृष्टसङ्गपरिवर्जितेन, धूमादिनिमित्तभावितेनादिकमिकेण, मध्यमाविशोधितेन, सकलसत्त्वेकपुत्रवत् परमस्नेहानुबद्धचित्तेन, लौकिकलोकोत्तरसत्याश्रितेन, पुत्र-कलत्रादिस्वशरीरनिरपेक्षकेण, मर्ठावहारगुरुद्रव्योपभोगवाह्यभूतेन, बुद्धबोधिसत्त्वमार्गा-श्रितेन, मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाचतुर्ब्रह्मविहारविहारिणा, शान्तिकर्मादिङौिकक-सिद्धिसाधनाभिलापर्वीजतेन, सर्वज्ञपदयोमारोढुकामेन, मण्डलचक्रादिविकल्पभावना-परित्यक्तेन, आकाशगतो सर्वाकारशून्यता-आदर्शप्रतिसेनावदनुत्पन्नधर्मावलोकितेन,

१. च. पञ्च । (इदमत्रावधेयम् — टोकायामुद्धृता ६छोकसंख्या मुद्रितग्रन्थानुसारिणी मोटानुबारिणी थात्र दीयते, च. मात्कायां प्रदत्ता संब्धा टिप्पृथ्यां घुवास्ति । एवं सर्वत्राग्रेऽवि ।)Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late

स्वचित्तस्फरणप्रतिभासस्वप्नसदृशार्थचित्तेन, परमाणुसन्दोहात्मकधर्मविचारशून्येन, उच्छेदशून्यतादूरीकृतेन, अध्यात्मसुखस्वसंवेद्यधर्मानुरक्तेन, बाह्येन्द्रियस्वसंवेद्यसुखधर्म-परित्यक्तेन, प्रज्ञोपायात्मकेन, बोधिचित्तस्थिरीकरणैकदक्षेण, परमाक्षरमहासुखप्रज्ञा-ज्ञानमार्गोपदेशलब्धेन आघाराधेयचिह्नवर्णभुजसंस्थानमण्डलदेवतापरिकल्पनाधर्मी नेष्यत इति ।

अथ विकल्पचित्तान्मण्डलचक्रस्य स्थितिनीस्ति । कस्मात् ? उत्पादनिरोध-र्घमित्वात् । इहोपस्थितक्षणे नायकं भावयेद् योगी । तस्मिन् क्षणे पूर्वादीनां देवताना-मभावः। यस्मिन् क्षणे पूर्वदेवतां भावयेत्, तस्मिन् क्षणे नायकादीनामभावः। एवं क्रमेण सर्वासां देवतानामभावः । [188a] यदा नीलमुखं भावयेत् तदा रक्तादीनां मुखाना-मभावः। यदा रक्तमुखं भावयेत् तदा नीलादीनामभावः। एवं क्रमेण सर्वेषां मुखाना-मभावः। यस्मिन् क्षणे वच्चचिह्नं भावयेत् तस्मिन् क्षणे खङ्गादीनां चिह्नानामभावः। यस्मिन काले खड़चिह्नं भावयेत् तस्मिन् काले वज्रादीनां चिह्नानामभावः। एवं क्रमेण सर्वेषां चिह्नानामभावो भवति । कथम् ? यथा घटज्ञाने निरुद्धे सति पटज्ञानमुत्पद्यते, तथा मण्डलनायकज्ञाने निरुद्धे सति पूर्वदेवताज्ञानमृत्यद्यते। एवमृत्पादितानामृत्याद-निरोधादभावः, अनुत्पादितानामनुत्पादादभावः, उत्पादानुत्पादयोरभावात् सर्वाभाव इति । तस्माद्योगिना महामुद्रासिद्धयर्थं विकल्पभावना न कर्तव्येति । उक्तं च भगवता नामसंगीत्यां मुविशुद्धधर्मधातुज्ञानस्तवे पञ्चदशमेन श्लोकेन । तद्यथा-

> सिद्धार्थः सिद्धसङ्गल्पः सर्वसङ्गल्पवजितः। निर्विकल्पोऽक्षयो घातुर्धर्मधातुः परोऽब्ययः ॥ इति । (ना० सं० ६.१५)

वष्त्रसत्त्वाहङ्कारोऽपि न कर्तव्यः। तत्रैव स्तवे 'द्वादशमेन इलोकेनोक्तं भगवता-

> विद्याचरणसम्पन्नः सुगतो लोकवित परः। निर्ममो निरहङ्कारः सत्यद्वयनये स्थितः॥ (ना॰ सं॰ ६.१२)

अतस्तथागतवचनाद् विकल्पभावना वज्रसत्त्वाहङ्कारोऽपि परमार्थसत्याश्रितेन योगिना न कर्तव्य इति । XX

ननु तत्त्वविदा भगवता तथागतेनोक्तं सवंतन्त्रराजेषु - प्रथमं तावद्रक्षाचकं ^२भावयेत् । ततः स्वहृदयचन्द्रमण्डले देवताबीजाक्षरं घ्यात्वा विमोक्षमुखादिश्द्धि कृत्वा गगनतले ज्ञानबोजरिश्मभिस्तथागतान् बोधियत्वा तेषां पूजां कृत्वा पापदेशनां पुण्यानु-मोदनां त्रिशरणगमनमात्मभावनिर्यातनं बोधिचित्तोत्पादनं मार्गाश्रयणं शून्यतालम्बनं करोति मन्त्री। ततो धर्मोदयमाकाशधातुस्वभावं भावयेत्, तन्मध्ये ³हूंकारपरिणतां

20

25

T 435

25

30

25

वज्रभूमिम् । अय प्रज्ञातन्त्राभिप्रायेण वाय्वादिमण्डलानि सुमेरुपृष्ठे कूटागारं वज्रपञ्जरं वा। ततः कायवच्चपरिणतं मण्डलं सर्वलक्षणसंपूर्णं चन्द्रादित्यासनैर्युक्तम् । अयं मध्ये भंकारपरिणतं प्रममकारपरिणतं चन्द्रमण्डलं रैफपरिणतं सूर्यमण्डलं वा । तद्परि चन्द्रादित्यालिकालिज्ञानबीजाक्षरैरादर्शसमताप्रत्यवेक्षणाकृत्यानुष्टानसुविशुद्धघमंधातुपञ्च-ज्ञानात्मकं देवताबिम्बं भावयेत् । ततः प्रज्ञारागद्वतं कायवाक्चित्तवच्यं देवीिभ-वंच्चगीतिकाभिः प्रवीघितं पुनः कायवाक्चित्ताघिष्ठतं स्वचिह्ननिष्पन्नम् । ततो मण्डले देवतागणीत्सर्जनं ज्ञानचकाकर्षणं प्रवेशनं यन्धनं तोषणं समयमण्डलेन समरसी-करणं सर्वतयागतदेवीभिरभिषित्रनं वज्रमुकुटालङ्कारयुक्तं वज्रसत्त्वाहङ्काररूपमात्मानं भावयेन्मन्त्रीति ।

इह कथं मण्डलचक्रभावना विकल्पभावनेति प्रतिषेधस्तथागतवचनस्यो[188b]-क्त इति, इह केपाञ्चिदमित्रायो भविष्यति, तस्मादुच्यते—इह हि सत्यमेतत् तत्त्व-विदा भगवता लोकसंवृतिसत्यमाश्चित्य सत्त्वाशयवशाद्वालमतीनां होनवीर्याणां पारमार्थिक-तत्त्वापरोक्षकाणां गम्भीरोदारज्ञानत्रस्तिचित्तानां शान्तिकादिकमंसाधनाभिरताना-खङ्जगटिकाऽञ्जनरसरसायनलौकिकसिद्धिसाधना-मिन्द्रियविषयोपभोगासक्तानां भिलाषिणां प्रतीत्यसमृत्पन्नं ज्ञानं प्रतीत्यसमृत्पन्नेन्द्रियगोचरं प्रादेशिकं प्रादेशिकार्थ-क्रियासम्यम्क्तमिति । तस्मात् प्रादेशिकार्थक्रियासम्यत्वात् परमार्थसत्याश्चितम्, तेनेदं तथागतवचनमिति । किन्तु यथा तथागतेनोक्तं प्रादेशिकार्यक्रियासमर्थानां विकल्प-व्यानमन्त्रमणिपाषाणखङ्गगृटिकारसरसायनादिद्रव्याणां प्रादेशिकानामप्यतवर्यः प्रभावः। तथा च दृश्यते स इह शुक्छध्यानं शान्तरूपं शान्तिकमं करोति न मारणादिकं कमं करोति, एवं कृष्णध्यानं रौद्ररूपं मारणं करोति न वश्यादिकं करोति । तथा रक्तध्यानं रागृहपं वश्यं करोति न स्तम्भनादिकं करोति । तथा पीतध्यानं स्तब्धहृपं स्तम्भनं करोति न शान्तिकादिकं करोति । एवं विषस्यापि ज्ञातव्यम् । श्वलध्यानं ललाटे विन्दुरूपं विषयं निर्विषं करोति, रक्तध्यानं विषक्षोभणं करोति, कृष्णध्यानं विषसंक्रामणं करोति, पीतध्यानं विषस्तम्भनं करोतीति प्रादेशिकविकल्पध्यानं प्रादेशिकार्थकियां करोति, एवं मणिमन्त्रौषघ्योऽपि वेदितव्याः।

इह मन्त्रोऽपि साधितः सन् यः शान्ति करोति स मारणादिकमं न करोति । यो मारणं करोति स वश्यादिकं न करोति । यो वश्यं करोति [स] स्तम्भनादिकं न करोति । यः स्तम्भनं करोति स शान्तिकादिकं न करोति । अतो लौकिकं ज्ञानं लोकोत्तरसर्वज्ञार्थिकयासमर्थं न भवतीति । एवं खङ्गादिकं सिद्धमपि सन्न भगवतोक्तम् । एकोऽपि मन्त्रः साधितः सर्वकर्माणि करोति, कथं प्रादेशिको भवतीति ? इह कस्यचि-दिभियायो भविष्यति । तस्मादुच्यते — इह एकोऽपि मन्त्रः साधितः सर्वकर्माणि करोति नैतदेव प्रमाणम् । कस्मात् ? क्रियाभेदात् । इहैकस्यापि मन्त्रस्य क्रियाभेदेन भेदोऽस्ति, स च तथागतेनोक्तः। तथाहि—शान्तिके नमोऽन्तो मन्त्रजापः, पौष्टिके स्वाहान्तः, आकृष्टी

वौषडन्तः, विद्वेषे हुंकारान्तः, वश्ये वषडन्तः, मारणे फडन्तः। एवं होमकार्येऽपि कुण्ड-भेदेन भेद उक्तः। इह वृत्ते कुण्डे उदुम्बरादिक्षीरवृक्षसमिद्धिर्द्वीद्रग्धेरंतो मन्त्रः शान्ति करोति, न पौष्टवादिक कर्म करोति । चतुरस्रकुण्डे पूर्वोक्तसमिद्भिः सस्याज्यैर्टृतः पौष्टिकं करोति, न मारणादिकं करोति । चापाकारे कुण्डेऽस्थिसमिद्धिनंरमांसविषरक्तेंती मारणं करोति, नोच्चाटनादिकं करोति । पञ्चकोणे कृण्डे काकपिच्छेनंरवसाराजिकाभि-[1894]ह्तं उच्चाटनं करोति, न वश्यादिकं करोति । सप्तकोणे कुण्डे किंशुकसिमद्री रक्तपृष्पैर्वच्चोदकेन हत आकृष्टि करोति, न वश्यादिकं करोति । त्रिकोणे कृण्डे खदिर-समिद्धिः स्वेदविल्वपृष्पेर्हतो वश्यं करोति, न स्तम्भनादिकं करोति । 'पटकोणे कृष्डे विल्वसिमिद्धिर्नेर्माल्यश्मेष्पिमहृतः स्तम्भनं करोति, न मोहनादिकं करोति। "अष्ट-कोणे कुण्डेऽर्कसमिद्धिः कनककुसुममद्येहेतो मोहनं करोति, न शान्तिकादिकं करोतीति। एवं रजोभेदेन भेद उक्तः। शान्तिके पौष्टिके श्वेतरजः, मारणोच्चाटने कृष्णरजः, वश्या-कर्षणे रक्तरजः, स्तम्भने मोहने पीतरजः, प्रत्युज्जीवने हरितरजः। तथाऽक्षसूत्रभेदेन भेद उक्तः। शान्तिके स्फाटिकाक्षसूत्रेण मन्त्रजापः, पौष्टिके मुक्ताफलाक्षसूत्रेण, मारणे नरदन्ताक्षसूत्रेण, उच्चाटने उष्ट्रदन्ताक्षसूत्रेण खरदन्ताक्षसूत्रेण वा, वश्ये पुत्रजीवाक्षसूत्रेण, आकृष्टी पद्मवीजाक्षसूत्रेण रक्तचन्दनाक्षसूत्रेण वा, स्तम्भने ख्दाक्षसत्रेण, मोहनेऽरिष्टाक्ष-सत्रेण, प्रत्युज्जीवने मरकताक्षसत्रेण मन्त्रजाप इति । एवं साधितानामपि मन्त्रोषधि-मणिखङ्गरसरसायनादिसिद्धद्रव्याणां प्रादेशिको गुणोऽस्ति, न परमाक्षरज्ञानगुणोऽस्ति। इह त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुष् बृद्धक्षेत्रे यथा भगवाननेकनिर्माणकायैनीनास्तैर्यग्-पत सत्त्वार्थं करोति, तथैभिः प्रादेशिकैः साधितैरिप योगी सर्वसत्त्वार्थं कर्त् न शक्नोति, प्रादेशिकत्वात् । उक्तं भगवता नामसंगीत्यां प्रत्यवेक्षणाज्ञानस्तवे प्रथमश्लोकत्रयेण । तद्यथा-

> तथता भतनैरातम्ये भतकोटिरनक्षरः। शन्यतावादी वषभो गम्भोरोदारगर्जनः॥

धर्मशङ्को महाशब्दो धर्मगण्डी महारणः। अप्रतिष्ठितनिर्वाणो दशदिग्धर्मदुन्द्भिः॥

अरूपो रूपवानग्र्यो नानारूपमनोमयः। सर्वरूपावभासश्रीरशेषप्रतिबिम्बधृक् ॥ इति । (ना॰ सं॰ ८.१-३)

तथा तन्त्रराजेऽपि पश्चमे ज्ञानपटले सप्तनवितमेन वृत्तेन सर्वज्ञभाषा भगवतोक्ता। तद्यथा-

तिर्यक्ष्रेतासुराणामुरगसुरनृणामार्यभोटादिकानां

भृतैष्यद्वर्तमानं त्रिविधमपि सदा सत्यधमं बुवन्ती।

१. भी. Zur brGyad Pahi (बष्टकोणे) । २. भी. Zur Drug Pahi (पट्कोणे) । रे. 🖲 वंकार । २. 🖒 obritesर्र्ज़ Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

E .

T 436

25

मार्गे संस्थापयन्ती त्रिभवमिवकलं स्वस्वभाषान्तरेण एषा सर्वज्ञभाषा समसुखकलदा देवभाषा न च स्यात् ॥ इति । (का० त० ५९७)

पुनस्तत्रैव पटले तस्य पृष्ठवृत्तेन सर्वज्ञकायवाक्कृत्यमुक्तम् । तद्यथा—

एकं पदयन्त्यनेकं प्रणिधिगुणवशात् शान्तरागादिभावे
इचक्रस्थं पूर्वजन्मस्बहृदयज्ञतितेविसनाया बलेन ।

एकाथनिकभाषा प्रविशति हृदयं प्राणिनां स्वस्वभावे
इचक्रस्थः पिण्डपातं वजिति विहरितुं स्था(ता)यिनां पुण्यहेतोः ॥ इति ।

(का॰ त॰ ५.९६)

इह यथा सर्वाकार सर्वज्ञकायवाक चित्तज्ञान निर्विकरूप सर्वार्थिकयासमथ भवति. तथा विकल्पध्यानमन्त्रादिकं साधितमपि सर्वज्ञार्थिकियासमधै योगिनां न भवतीति । एवं पृथिव्यादिकुत्स्नमपि साक्षात्कृतं वीतरागैः प्रादेशिकं भवति । कस्मात् ? प्रादेशिक-हिस्फ[189b]रणात्। इह यो वीतरागः पृथ्वीकृत्सनं साक्षात्करोति, स पृथ्वीकृत्सनं स्फारयेत्, न तोयादिकृत्सनं स्फारयितं समर्थः। एवं प्रत्येककृत्सनमपि वेदितव्यम्, शन्य-कुरूनं यावदेव । इह मण्डल वाक्री यः सुमाजमण्डलं स्फारयेत्, स चक्रसंवरादिकं स्फार-यितुं न शक्तोति । यश्चकसंवरं स्फारयेत्, स समाजादिकं स्फारयितं न शक्तोति, प्रादेशिकत्वादिति । अथ कस्यचिद्भिप्रायो भविष्यति — इहैकस्मिन् मण्डलचक्रे साक्षा-त्कृते सित सर्वमण्डलचकाणि त्रैधातुकमपि साक्षात्कृतं भवति, नान्यत् त्रैधातुकं स्कन्ध-धालायतनमण्डलचक्रबाह्यमस्तीति । तस्मादुच्यते—इह हि यद्येके साक्षात्कृते सति धातकुत्सने मण्डलचके वा त्रैधातुकं साक्षात्कृतं भवति, सर्वज्ञतादिकं च भवति, तदा सर्वज्ञ-पदप्राप्तये सर्वज्ञता-सर्वाकारज्ञता-मार्गज्ञता-मार्गाकारज्ञता-साक्षात्करणं नाम न स्यात्, एके-ऽपि पृथिव्यादिकृत्सने साक्षात्कृते सित मण्डलचक्रे वा साक्षात्कृते सम्यक्संबुद्धत्वं भवति, श्रावकप्रत्येकवुद्धत्वसिद्धत्वं नाम न स्यात् । इह यथा यानत्रये भगवतो वाक्यं श्र्यते-अमुक-बुद्धक्षेत्रेऽमुकलोकधातावमुकस्य पुत्रोऽमुककुलेऽमुककल्पे द्वात्रिशन्महापुरुषलक्षणोऽशीत्यनु-व्यञ्जनालङ्कृतः पडिभज्ञस्तथागतोऽभत् । अमुकस्थानेऽभिसंबुद्धोऽमुकस्थाने विहरति, धर्मचक्रप्रवर्तनं करोति, नानाधिमुक्तिकानां सत्त्वानां नानारुतैरमुकधर्मं देशयित, अमुकस्थाने महाघातुसंदर्शनं कृत्वा परिनिवृंतः। एषां धातूनां महातिशयप्रातिहायं दृष्ट्वा देवासुरमनुष्येस्ते धातवः "पूज्यन्ते, न तथाऽमुकबुद्धक्षेत्रेऽमुकलोकधातावमुककल्पे हार्त्रिशन्महापुरुषळक्षणोऽशोत्यनुव्यञ्जनः पडिमज्ञो योगी जातोऽमुकस्थानेऽभिसम्बुद्धोऽ-मुकदेशे विहरति, अमुकस्थाने धर्मचक्रप्रवर्तनं करोति, नानाधिमुक्तिकानां सत्त्वानां नानास्तेरमुक्धमें देशयित, त्रिसाहस्रमहासाहस्रङोकधातुषु युगपत् काय-ऋदि दर्शयित, अमुकस्याने महाधातुसंदर्शनं ऋत्या परिनिर्वृतः । तेषां धातूनां महातिशयस्फरणं

दृष्ट्वा देवासुरमनुष्यैर्धातवः 'पूज्यन्ते । तस्माद्योगी संबुद्धो न भवत्येकस्मिन् मण्डल-चक्रे साक्षात्कृते । कस्मात् ? धर्मचक्रप्रवर्तनाभावात्, तथागताव्याकरणात् । इह यथा मैत्रेयनायस्तथागतेन व्याकृतस्तथागतत्वेन ऐष्यत्काले भविष्यत्यन्ये भस्मेस्वरादयो व्याकृतास्तथागतेन सम्यक्संबुद्धा भविष्यन्ति; न तथा कव्चिद्योगी एकमण्डलचक्र साक्षात्कृते सम्यक्सम्बद्धो भविष्यतीति भगवान् व्याकरोति । किन्तु सत्त्वाशयवशाद् मण्डलचक्रभावना भगवतोक्ता खङ्गगुलिकाञ्जनरसरसायनादिलोकिकसिद्धिसाध-नार्थम् । तस्मान्मण्डलचक्रदेवतासाक्षात्करणात् खङ्गादयः सिद्धयः सिद्धयन्ते साधकस्य, न सर्वज्ञता सिद्धयति । यदि 'सर्वज्ञता सिद्धयते मण्डलचक्रभावनावलेन तदा किमय" सिद्धा इह भगवतो वाक्यं स्वग्रन्थे प्रतिपादयन्ति । अतो लौकिकसि[190a]द्भयः सर्वज्ञगणदायिका न भवन्ति, प्रादेशिक वचनात्, सर्वज्ञभाषाभावात्, सावरणकाय-ऋद्धिसंदर्शनात्। सावरणे धर्मे साक्षात्कृते योगी सर्वज्ञो न भवति, तस्मान्निरावरणे धर्में साक्षात्कृते सित योगी सर्वज्ञो भवति, निरावरणधर्मस्रक्षणात्। सर्वज्ञस्य दिव्यं चक्षदिव्यं श्रोत्रं परिचत्तज्ञानं पूर्वनिवासानुस्मृतिः सर्वगृद्धिः सर्वास्नवक्षयः स्थाना-स्थानज्ञानवलं कर्मविपाकज्ञानवलम् एकानेक^४घातुज्ञानवलम् इन्द्रियपरापर-ज्ञानबलं नानाधिमुक्तिज्ञानबलं दुःखनिरोध धर्मगामिनीप्रतिपञ्ज्ञानबलं संक्लेश-व्यवदानज्ञानबलम् अनेकजन्मावदानज्ञानबलं सर्वाभिज्ञाज्ञानवलम् आस्रवक्षयज्ञानबलं भवतीति । तथा समन्तप्रभा महासूर्यमण्डलवर्चसा भूमिः, अमृतप्रभा महाचन्द्रप्रभास्वरा भृमिः, गगनप्रभा गगनवत्सुप्रतिष्ठिता भूमिः, वज्यप्रभा मनोरमा भूमिः, रत्नप्रभा अभिषेक-प्रतिष्ठिता भूमिः, पद्मप्रभा स्वभावशुद्धधर्मनिर्मला निष्परिग्रहा भूमिः, बृद्धकर्मकरी भिमः, अनुपमा भिमः, उपमा सर्वोपमा प्रतिवेधतो (धता) भिमः, प्रजाप्रभाजनूतरा भिमः, सर्वज्ञता महाप्रभास्वरा भूमिः, प्रत्यात्मवेद्या योगिज्ञानप्रपूरिका भूमिरिति । 'तथागतस्य नास्ति स्वलितम्, नास्ति नदितम्, नास्ति मुषिता स्मृतिः, नास्त्यसमाहितं चित्तम्, नास्ति नानात्वसंज्ञा, नास्त्यप्रतिसंख्योपेक्षा, नास्ति छन्दस्य परिहाणिः, नास्ति वीर्यस्य परिहाणिः, नास्ति स्मतेः परिहाणिः, नास्ति समाधेः परिहाणिः, नास्ति प्रज्ञायाः परिहाणिः, नास्ति मुक्तिज्ञानदर्शनस्य परिहाणिः। अतीतेऽध्वन्यप्रतिहत-मसञ्जमप्रणिहितं ज्ञानं दर्शनं च प्रवर्तते, अनागतेऽध्वन्यप्रतिहतमसञ्जमप्रणिहितं ज्ञानं दर्शनं प्रवर्तते, प्रत्युत्पन्नेऽध्वन्यप्रतिहृतमसङ्गमप्रणिहितं ज्ञानं दर्शनं प्रवर्तते । सर्वं कायकर्म ज्ञानपूर्वञ्जमं ज्ञानानुपरिवर्ति, सर्वं वाक्कमं ज्ञानपूर्वञ्जमं ज्ञानानु-परिवर्ति, सबै मनस्कर्म ज्ञानपूर्वञ्जमं ज्ञानानुपरिवर्तीति । अतः सर्वत्र सर्वकालं समतायां सुप्रतिष्ठितः शून्यतायां समनुगतत्वात् प्रज्ञापरिशुद्धस्तथागतो भवति, निरावरण-लक्षणात् । न पुनः सावरणः प्रज्ञापरिशुद्धः किश्चदेको मण्डलचक्र*रूपदेवतासंख्या-वर्णभुजसंस्थानविकल्प'परिशुद्धिस्फरणाद् वष्रसत्त्वो दशबलो भवतीति, किन्त

१. च. पूर्यन्ते । २. भो. sGrub Pa Po (सामकस्य) इत्यविकम् । २. भो. 'वचन' नास्ति । ४. भो. 'धातु' नास्ति । ५. भो. 'घमं' नास्ति । ६. भो. De bSin Du (तथा) इत्यविकम् । ७. च. 'रूप' नास्ति । ८. भो. dZu ḥPhrul

रै. मो. ḥKbor Lo Can (जुन्नी)। रे. डिलिंगि arun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediff (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

T 437

पटले, १२७ क्लो.]

सर्वज्ञमार्गनब्टो मिथ्याहङ्काराभिभूतः सन्नहमपि वष्ठसत्त्वो दशबल इत्येवं मन्यते । नायं दशबलो दशबलान्यप्रतिवलः प्रादेशिको महामूर्खः। अस्यापूर्वीमह वृद्धस्व महाज्यद्भृतं योगिनः सर्वावरणतः। उक्तं भगवता प्रत्यवेक्षणाज्ञानस्तवे नवमश्लोकेन नामसंगीत्याम—

> त्रिदःखदःखशमनस्त्र्यन्तोऽनन्तिस्रम्किगः। सर्वावरणनिर्मक्त आकाशसमतां गतः॥ इति। (ना० सं० ८.९)

अतो भगवतो वचनाद् [190b] विकल्परूपभावनाबलेन योगी सर्वज्ञो न भवतीति ।

नतु तथागतेनोक्तं सर्वतन्त्रराजेषु 'पश्चस्कन्धा वैरोचनादयो बुद्धाः, धातवो देव्यः, लोचनादयो पडिन्द्रियाणि, क्षितिगर्भादयो बोधिसत्त्वा विषया:, रूपवच्चादयो देव्य:, मोह-वज्रादयो यमान्तकादयः क्रोधराजानः । तस्मात् सत्त्वानां कायो वृद्धनिर्माणकाय इति केषाञ्चिदभिप्रायो भविष्यति । तस्मादुच्यते — इह हि यद्वत्तव्यं मूर्खेः सत्त्वानां कायो बुद्धनिर्माणकाय इति । नैतद्वचनं तथागतस्य, यत् परीक्षमाणं विघटयति । परमार्थसत्ये यदि सत्त्वानां कायो बुद्धनिर्माणकाय इति चेत्, त्रेघातुकस्थाः सर्वे सत्त्वाः सम्यक्सम्बुद्धाः प्रागवभवः। बद्धत्वाय श्रतचिन्ताभावनादानादिकिया वथा स्यात्, प्राक् सम्यक्सम्बद्धत्वात्। सर्वसत्वानामत्पादिनरोधो न स्यात् । संसारे असुखदुःखक्षृत्पिपासादयो बाधा न स्य: । पडिभज्ञादयो बुद्धगुणविभृतयश्च भवेयुः। न चैतद् दुष्टं श्रुतमनुमितं तथागतव्याकृतम्, तस्माद् बृद्धगुणाभावात् सत्त्वा बुद्धा न भवन्ति, संसारे सुव्यवस्थितत्वादिति । उक्तं भगवता नामसंगीत्यां सुविश्द्धधर्मधातुस्तवे त्रयोदशमेन श्लोकेन । तद्यथा-

> संसारपारकोटिस्थः कृतकृत्यस्थले स्थितः। कैवल्यज्ञाननिष्ठच्तः प्रज्ञाशस्त्रो विदारणः ॥ इति । (ना० सं० ६.१३)

अतस्तथागतवचनात् सत्त्वानां कायो बुद्धनिर्माणकायो न भवति ।

नत् तथागतेनोक्तं भावनाभ्यासवशात् स्कन्धधात्वायतनादिकं मण्डलचकाकारं भविष्यति, तेनैव वृद्धस्यं चेति कस्यचिद्भिप्रायो भविष्यति ? तस्माद्गच्यते—इह हि यद्वनतव्यं बालजनैरभ्यासवज्ञात् स्कन्धधात्वायतनादिकं मण्डलचक्राकारं भविष्यति, तेनैव बुद्धत्वं च तथागतेनोक्तम् । तन्न, ^अपुण्यज्ञानसंभाराभावात् । इह हि यदि योगिनां पृष्यज्ञानसंभारं विना भावनाभ्यासवलेन स्कन्धवास्वायतनादिकं मण्डलचकाकारं भविष्यति, विकल्पभावनाभ्यासबलेन ^४सम्बुद्धस्यं च भवति, तदाऽन्योऽपि **"द्रव्यहीनो**

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

धर्मचक्रप्रवर्तनं

राजाऽहमिति चिन्तयेत्, सोऽप्यभ्यासवशाद् राजा भविष्यति । पुण्यसम्भारं विना न चेतद् दृष्टम्, यथा मिथ्याविकल्पेन पुण्यसम्भारहीनोऽनेककल्पेरभ्यासवशाद् राजा न भविष्यति, ततो पुण्यज्ञानहोनो विकल्पाभ्यासवशादनेककल्पैयोंगी सम्यक्सम्बद्धो न भवति, पुण्यज्ञानाभावादिति । उक्तं भगवता सुविशुद्धधर्मधातुँस्तवे 'पोडशमेन श्लोकेन । ^२तद्यथा--

> पुण्यवान् पुण्यसंभारो ज्ञानं ज्ञानाकरं महत्। ज्ञानवान् सदसज्ज्ञानी संभारद्वयसंभृतः॥ इति । (ना० सं० ६.१६)

अतो भगवतो वचनात् पृथ्यज्ञानहोनो विकल्परूपभावनाभ्यासवशाद् बृद्धो न भवतीति ।

नतु यदि रूपभावना विकल्पः, विकल्पाद्योगी बुद्धो न भविष्यतीति तदा किमर्थ-मिदं शरीरं मण्डलचक्रदेवतागणैविशोधनीयमिति तथागतवचनमिति कस्यचिदिभप्रायो भविष्यति ? तस्माद्च्यते — इह सत्यमेतत्, समयभाषया तथागतेन प्रत्येकं वैरोचनादिकं तदृदृष्टम्, न पुनर्घटपटशब्दवद् वाच्यवाचकभा[1912]वेन स्वरूपतः । स्त्रीन्द्रयं पद्मम्, पृरुषेन्द्रियं वज्जम्, गृथो वैरोचनः, मृत्रमक्षोभ्यः, रक्तं रत्नसम्भवः, शुक्रममिताभः, मांसममोघसिद्धिः, किन्तु पञ्चतथागतानां नामभिः पञ्चामृतानां संज्ञा उक्ताः, न पूनः परमार्थयुक्तितो देवताः। तस्माद् देवताकायो वक्तुं न शक्यते पृतिशरीरिमदम्, असार-त्वादिति । उनतं भगवता नामसंगीत्यां सुविशुद्धधर्मधातु अज्ञानस्तवे विश्वतिमादि-इलोकत्रयेन । तद्यथा-

> घनैकसारो वज्रात्मा सद्योजातो जगत्पतिः। गगनोद्भवः स्वयम्भः प्रज्ञाज्ञानानलो महान्॥ महादीप्तिज्ञीनज्योतिर्विरोचनः। वैरोचनो जगत्प्रदीपो ज्ञानोल्का महातेजा प्रभास्वरः॥

विद्याराजोऽग्रमन्त्रेशो मन्त्रराजमहार्थकृत्। महोष्णीषोऽद्भतोष्णीषो विश्वदर्शी वियत्पतिः॥ इति । (ना॰ सं० ६.२०-२२)

अतो भगवतो वचनात् प्रादेशिककायो बुद्धकायो न भवतीति।

संदर्शनमन्तः पुराभिनिष्क्रमणं बोधिमण्डनिषीदनं मारमण्डलविध्वसनं देवतावतारणं

नन् तथागतो यदि रूपी न भवति, तदा गर्भावक्रमणं कुमारकोडा सर्वशिल्प-

द्वात्रिशन्महापुरुषरुक्षणान्यशीत्यनुन्यञ्जनानि घनुःप्रभामण्डलानि

25

20

10

१. भो. 'पञ्च' नास्ति। २. च. 'सुख' नास्ति। ३. भो. Gan Gi Phyir (यतः) इत्यधिकम् । ४. मो. बृद्धत्वं । ५. मो. bSod Nams dMan Pa (पुण्यहीनो)।

T 438

चतुरीर्यापवादयो व्यापारा आकाशगमनागमनं सत्त्वार्थक्रियास्तस्य न भवन्ति । तथा भगवतो निष्पादितश्रावकसंघोऽपि न स्यात्, महापरिनिर्वाणं महातिशयप्रातिहायँ भातुसंदर्शनं न स्यात् । त्रिभुवननिवासिभिः पूज्यमानं केशदन्तमांसास्थ्यादिकं <mark>धात</mark>्-स्फरणं न स्यात्। अपरमपि तथागतिवकुवितमत्यद्भूतं रूपवतो भगवतो भवति, नारूपवतः । तस्माद् भगवतो रूपकायसाधनं मिथ्या न भवतीतीह केषाञ्चिदिभिप्रायो भविष्यति । तस्मादुच्यते –इह यद्वक्तव्यं बालजनैभंगवतो रूपकायसाधनं मिथ्या न भवति, नैतदेव सत्यम् । कस्मात् ? उत्पादविनाशधर्मित्वात् । इह हि भगवतो यदि परमार्थतोऽयं गर्भोत्पादः सर्वसत्त्वार्थाय गमनागमनव्यापारो महापरिनिर्वाणधातु-संदर्शनमस्ति चेत्, तदा तथागतस्य साधनं निष्फलं भवति । कस्मात् ? कायधात-संदर्शनान्महापरिनिर्वाणाद् भगवतो रूपकायः साधितोऽप्यसाधित एव । य उत्पन्नकायो विनष्टः साधितः कथं साधकस्याक्षयं कायं करिष्यति, एवद्विपरीतं स्वयमसिद्धः परं साध्यिष्यति । अय धातुसंदर्शनं महातिशयलक्षणमस्ति, इह धातुसंदर्शने सत्यधना द्वात्रिशनमहापुरुषलक्षणान्यशीत्यनुव्यञ्जनानि धनुःप्रभामण्डलानि धातपुञ्जीभतस्य कायस्य विनष्टानि । पूर्वकायाभावाद् धातुपुञ्जे वज्रसत्त्वकायो न भवति । काया-भावेऽन्यस्य वज्रसत्त्वस्य साधनं नास्ति, इह परस्परिवरोधात्। अतित्वनो नष्टाः, उत्पादिनरोधर्घीमत्वात् । उत्पादिवनाशर्घीमणो वज्रसत्त्वस्य साधनाय प्रज्ञापारिमता-शन्यता-स्मृत्यपुरयान-सम्यक्प्रहाण-ऋद्विपादेन्द्रियबल-बोध्यञ्जमार्गसत्यध्यानाप्रमाणा-ह्रव्यसमापत्तिविमोक्षमखाभि[191b]ज्ञासमाधिधारणीवलवैशारद्यप्रतिसंविदावेणिका वद्ध-धर्मा वया स्यः । त्रिशरणगमनं पापदेशना पुण्यानुमोदना बोधिचित्तोत्पादः पुण्यज्ञान-सम्भारानेक बोधिचर्या मुघा स्यः। श्रुतचिन्तामयी(य)प्रज्ञा अज्ञानविशेषा निविशेषाः स्यः। प्रज्ञोपायमया विधयो द्विधयो भवेयः। परमार्थसत्ये गम्भीरोदारधर्मप्रतीति-रप्रतीतिः स्यात् । लोकसंवृतिसत्ये लौकिकसिद्धिसाधनाय वज्रकील कवचवज्रप्राकार-वज्रपञ्जररक्षाचक्रादिभिरावृतं स्कन्धधात्वायतनकायवाक्चित्ताधिष्ठानम्कतं द्वारपाल-न्यासं ज्ञानसत्त्वप्रवेशाभिषेकादिभिविहितं पञ्चप्राकारप्रभानिकरमण्डलिनमण्लोक-घातूष तद्वेनेयानां सत्त्वानां सत्त्वार्थसंभारं सर्वपूजाप्रसरसंचयं सर्वं सर्वदा वृथा स्यात्। न चैवम् । तस्माद् उत्पादविनाशधर्मिणो वज्रसत्त्वस्य दशवलवैशारद्यादयो गुणा न च सम्भवन्तीति । किञ्चान्यत्, यदीह रूपी भगवान्, तदा एकप्रदेशस्थो गङ्गानदी-वालुकोपमेषु लोकधातुष्वनेककुलपर्वतरजःसमानां सत्वानामर्थक्रियां कतुं समर्थी न भवति, रूपकायत्वात् । अथ बालमतीनां वचनं रूपकायेनाप्येकस्मिन् लोकघाती गत्वा तत्रस्थानां सत्त्वानामर्थिक्रियां कृत्वा ततोऽन्यस्मिन् लोकथाती गच्छति, ततोऽप्यन्यत्र गमनं करोति । तदेव युक्तितो न घटयति । कस्मात् ? एकस्मिन्नेव दिग्विभागे लोक-धातूनां प्रमाणरहितत्वात्, कि पुनर्दशिदिग्विभागे संस्थितानां छोकधातूनामनन्तानन्त-सत्त्वानां रूपकायेन गत्वा "गत्वा सत्त्वार्थमनेककल्पै: कत्" न शक्यते ।

वर्षा) । ३, भो. 'शान' नास्ति । ४, मो ऽ'तवर्षा ग्रास्ति । bwiveखा,'ऽर्धीर्णःlving Son of L

अय ध्यानमन्त्रवलेन नैकव्दक्षेत्रलोकधातुस्यान् सत्त्वानाकृष्य पुरतः स्थापियत्वा तेषां घमदेशनां करोति । तान् मार्गे स्थापियत्वा स्वस्वलोकवातौ विसर्जयेत् । तदेवाति-शयेन विपरीतम्, सर्वीम्बरक्रहरेष्वनेकलोकघातस्थानामसंस्थेयानां सत्त्वानां रूपिणां परमाणुरूपेणापि पुरतोऽवस्थानं कतु न शक्यते। अय बालमतीनां वचनमनेनापि रूपकायेनैकस्मिन् वृद्धक्षेत्रे त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकघातुष् स्थितानां सत्त्वानामर्थकियां करोति, एतद्वचनं पारमार्थिक्या युक्त्या विचार्यमाणं निरर्थकम्, यथेस्वरवचनमाज्ञा-सिद्धं युक्तिप्रमाणरहितम् । आप्तागमादित ईश्वरो निष्कलः सर्वकर्ता । स च कार्य-निरपेक्ष इच्छया क्रीडार्थं विश्वं करोति संहारयित वा। एवं तद्वेधम्यीद् रूपकायो भगवान् सर्वसत्त्वार्थकर्ता आज्ञासिद्ध इति । एवं बौद्धानां तीर्थिकानां प्रज्ञाहीनत्वाद् विशेषो नास्ति पण्डितानामपि । तस्मादिदं वचनं परीक्षारहितं भगवतो न भवति । भगवतो वचनमादी कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणिमति ।

तथा भगवानाह-

तापाच्छेदाच्च निकषात् सूवर्णमिव पण्डितै:। परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्वचो न तू गौरवात् ॥ इति ।

अतो भगवतो वचनाद् नामसंगीत्यां परीक्ष्यमाणो बुद्धो रूपकायो न भवति । कस्मात् ? ग[192]गनोद्भवत्वात्, स्वयंभत्वात्, सर्वाकारनिराकारत्वात्, चर्जाबन्द्धरत्वात्, अकलकलनातीतत्वात्, चतुर्थानन्दकोटिधरत्वात्, विरागादि-महारागत्वात्, निर्ममत्वात्, निरहङ्कारत्वात्, सर्वाक्षयधातुत्वात्, सर्वमन्त्रार्थजनकत्वात्, महाबिन्द्रनक्षरत्वात्, पञ्चाक्षरमहाश्चयत्वात्, बिन्द्श्चयषडक्षरत्वात्, आकाश-समतागतत्वादित्यादि नामसंगीत्याम्—"अथ वज्रधरः श्रीमान्" इत्यादिना, "ज्ञानकाय नमोऽस्तु ते" इति पर्यन्तं द्वाषध्यधिकशतश्लोकेन बुद्धेन भगवता वज्रधरकायो वज्रपाणेः प्रकाशित उभयसत्याभ्यामित्यादि । तन्त्रराजेऽपि भगवतोक्ता बुद्धोत्पादिनर्माणमाया पञ्चमपटलेऽष्टानवतिमेन वृत्तेन-

> बुद्धानामप्यगम्या ह्यपरिमितगुणा बुद्धनिर्माणमाया आत्मानं दर्शयन्ती त्रिभुवननिलये शक्रजालं यथैव। नानाभावैर्विभिन्ना सजिनसुरनुणां स्वस्वचित्ते प्रविष्टा एषाऽनुत्पन्नधर्मा पयसि नभ इव भ्रान्तिदोत्पत्तिरत्र॥ (का० त० ५.९८)

अतो भगवतो वचनाद् रूपकायो भगवान्न भवति, सर्ववृद्धानां समाजित्वात्। यदि रूपकाया बुद्धाः, तदा परमाणुरूपेणापि मीलनं न स्यादिति । एवमुक्तकमेण भगवतो वाक्यं श्रुत्वा तथापि सत्त्वा भगवतोक्तं गम्भीरोदार्घमं परीक्षयित्वा न गृह्णन्ति, बृद्धत्वाय गुरुं च परीक्षयित्वा नाराधयन्ति, महामूर्खा लोभाभिभूताः सन्त इहैव जन्मन्यस्माकं

Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

१. भो. 'घातु' नास्ति । २. भो. Byan Chub Sems dPahi sPyod Pa (बोधिसस्ब-

T 439

प्रतिशरीरं बुद्धशरीरं भविष्यतीत्याशालुक्या अकल्याणमित्रसंसर्गाद् असद्गृष्टपदेशाद् ह वैरोजनादीनि पञ्चामृतानि गोकुदहर्नादिपलानि भक्ष्याणि स्वभावशुद्धानि तथागते- इह वैरोजनादीनि पञ्चामृतानि गोकुदहर्नादिपलानि भक्ष्याणि स्वभावशुद्धानि तथागते- नोक्तानि, एभिभंशितः शरीरमजरामरं भविष्यति, वष्ठ्यसत्त्वोऽिष वरदौ भविष्यतीति । अन्यत्र वष्ठकुले कोषराजसमाधिना प्राणिनो घात्याः, खङ्गकुलेऽमोघसिद्धिसमाधिना- अस्य वक्तव्यम्, रत्नकुले रत्नास-भवसमाधिना परस्वं हार्यम्, पम्मुलेऽमिताभ- असर्वे याह्या, चक्रकुले वैरोजनसमाधिना पञ्चामृतपलानि मक्षणीयानीति, समाधिना परस्त्री याह्या, चक्रकुले वैरोजनसमाधिना पञ्चामृतपलानि मक्षणीयानीति, अपरोऽप दशाकुशलक्षमंप्या देवतायोगेन योगिना कर्तव्या इति, एवं दृष्टाचायंवचनं अपरोऽप दशाकुशलक्षमंपया देवतायोगेन योगिना कर्तव्या इति, एवं दृष्टाचायंवचनं मुमाणीकृत्य दशाकुशलान् कर्मपथान् कुर्वन्ति, अशोधितान्यवोधितान्यप्रदीपितान्यनम् मृतोकृतानि भक्षयन्ति । तानि च भक्षितानि पञ्चामृतानि त तेषां भक्षकाणां बुद्धत्य- गुणदायकानि भक्ततीति, "तथागतवचनाप्रवोधत्वादिति ।

नत् सर्वतन्त्रराजेषु तथागतेनोक्तानि पञ्चामृतानि योगिना भक्षणीयानि, इह कथमेषां प्रतिषेधः ? [इति] कस्यचिदिभप्रायो भविष्यति । तस्मादुच्यते—इह यद्वक्तव्य बालजनैः पञ्चामृतादीनि भक्ष्याणि तथागतेनोक्तानि सर्वतन्त्रराजेषु, तत्सत्यम्, किन्तु योगिनां न प्राकृतसत्त्वानाम् । येषां मन्त्रबलेन ध्यानबलेन वा शोधितानि बोधितानि प्रदोपितान्यमृतीकृतानि विषाणि निर्विषाणि भवन्ति, मद्यानि क्षीराणि भवन्ति, विषोद-कादीनि दुष्टानि सत्त्वानां मरण[192b]दायकानि रसायनानि भवति, अस्थीनि पूज्पाणि भवन्ति, दन्ता मुक्ताफलानि भवन्ति, कपालं पद्मं भवन्ति, मांसं पूत्रकेशो भवति, रवतं सिह्नकं भवति, मुत्रं कस्तूरिका भवति, शुक्रं कर्पूरं भवति, गुथं चतुःसमं भवति, लोमानि कुङ्कमकेशराणि भवन्ति । एवमनेकदुष्टद्रव्याणि दुष्टस्वभावपरित्यागात् शोधितानि बोधितानि प्रदीपितान्यमृतीकृतानि स्वभावशृद्धानि तथागतेनोक्तानि³, न दुष्टस्वभावा-परित्यागात्। तानि च विषादोनि स्वभावशृद्धान्यमृतीकृतानि योगिभिभंक्षितानि शरीरे महाबलपुष्टिकराणि भवन्ति । गुथादीनि स्वभावशुद्धानि शरीरे विलेपितानि दिव्यगन्ध-मृद्रहन्ति । अतो योगिनां तथागतेनोक्तानि, नान्येषां देवतामन्त्रासाधितानां पर्धनमूर्खाणां पण्डिताभिमानिनां वकमायाधराणां मठिवहारद्रव्याभिलािषणां प्रेतनरकजातौ जन्मो-त्यादिनबद्धानां स्वार्थपरार्थभ्रष्टानां तन्त्रोक्तार्थविपरीतार्थसंदेशकानामपरीक्षजनस्य महा-मारकायिकानां भक्ष्याणि भगवतोक्तानीति । तैर्द्रष्टिचत्तैस्तानि विषादीनि दुष्टद्रव्याणि पञ्चामृतानि शोधितानि बोधितानि प्रदीपितान्यमृतीकृतान्यप्यनेककल्पैर्द्ध्टस्वभावानि न परित्यजन्ति, दुष्टस्वभावापरित्यागात् स्वभावशुद्धानि न भवन्तीति । तस्मात्तेषां दुष्ट-द्रव्याणि(णां) घ्यानबलेन वा मन्त्रबलेन वा यावद् दृष्टस्वभावं हर्त्ं न शक्नोति कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा भिक्षुर्वा भिक्षुणी वा उपासक उपासिका वा आदिकर्मिको वा वज्र-यानरतः, तस्य वज्राचार्येण 'गुरुणा आदिकमिकेण वा मन्त्रसामर्थ्ययुक्तेन वा

> १. भो. rNam Par sNan mDzad La Sogs Pa (वैरोजनादीनि) इत्यधिकम्। २. भो, Sans rGyas Kyi gSun (बुद्धवजन)। ३. भो. rGyud Kyi rGyal Po Tham Cad Las gSun Pa, De Ni bDen No (सब्सेन्त्रराजे, तस्सरम्) इत्यधिकम्। ४. भो, bLa Ma Dam Pa Las (सद्यहणा)।

Man Par sNah mDzad La Sogs Pa (वैरोचनादीनि) इत्यधिकम् । भाषा भवति, कुत्रचिद्शे श्रातुमागन्यायपार-, युना Sahs rGyas Kyi gSuh (बदवचन्) । ३ श्रो रGyad Kyi rGyal कृत्रचिद्शे कुलाकुलाना परस्पराभिगमनम्, कुत्रचिद्शे

विषादिपञ्चामृतादिभक्षणिबलेपने नियमो न दातव्यः, लशुद्धविषादिभक्षणात्मरणं भवति, लशुद्धतिषादिभक्षणात्मरणं भवति, लशुद्धतमयविलेपनाल्लोकावघ्यानां भवति, स्वाधातमरणाल्लोकावघ्यानान्तरको भवति, कुमन्त्रिणां सत्त्वाशयपरित्यागादित्युवतं नामसंगीस्यामध्येषणायां पञ्चदशम-

प्रकाशयिष्ये सत्वानां यथाशयविशेषतः। अशेषक्रेशनाशाय अशेषाज्ञानहानये॥ इति। (ना॰ सं॰ १.१५)

41

salility 1 = 50 of

I'll au Sametas

different :

अतो भगवतो वचनात् सकलसत्त्वाशयवशेन शिष्याणां वच्चाचार्येण नियमो दातव्यः, यथा स्वाघातमरणं लोकावध्यानं न भवत्यादिकर्मिकाणामिति ।/ नन् यदीह लोकावच्याने नरको भवति, तदा सर्वदर्शनानि परस्परावध्यानं कुर्वन्ति, परस्परा-वध्यानात् सर्वदर्शनानि नरकं यास्यन्ति । एवं चेत् प्रमाणशास्त्राणि विरुद्धानि, सर्वसिद्धान्तान्यपि, व्रतशोलादिकं सर्वं निरर्थकं भवतीतीह कस्यचिदभिप्रायो भविष्यति। तस्मादुच्यते - इह यद्वक्तव्यं बालजनैः प्रमाणशास्त्रादिकं सर्वं विरुद्धम्, तन्न, कस्मात् ? तत्त्वपरीक्षाचित्तान्न तेषां दर्शनानां परस्परवादिनां दोषोऽस्ति, परमार्थपरीक्षाश्रित-चित्तात् सर्वसत्त्वापकारचित्ताभावात् सर्वसत्त्वोपकारचित्तात् 🖟 अत्र पूर्नावपादि-पञ्चामृतादिभक्षणिवलेपने लोकव्यवहारो न परमार्थपरीक्षा। विषादिपञ्चामतादिकं च तत्त्वं न भवति, यस्य परीक्षमाणा दोषा न भविष्यन्ति लोकावध्यानतोऽपि। तस्मात् [193a] सत्त्वाशयवशाद् धर्मदेशना बौद्धानां,न सत्त्वाशयविरहितेति । आशयोऽपि सत्त्वानां देशकूलव्यवहारेण भवति, तस्मात्तेषां देशकूलव्यवहारेण लौकिकसंवृतिसत्येन लौकिक-धर्मो देशनीयो बज्जाचार्येण । लोकोत्तरं ज्ञानं पुनस्भयसत्यसाधारणं तदेव । न च भक्ष्याभक्ष्यग्रहणं भवति । भक्ष्याभक्ष्यं ह्यदरपरिपूरणमात्रम्, न शुन्यतानिमित्ताप्रणि-हितानिभसंस्कारचतुर्विमोक्षमुखविशुद्धिः। तस्मादादिकर्मिकेण 'स्वदेशव्यवहारेण भक्ष्याभक्ष्यं कर्तव्यं कुलाकुलाभिगमनं च । कुत्रचिद्देशे कापालिककपालीदकेन शुद्धि-र्भवति, क्त्रचिद्देशे गोमांसं भक्षणीयम्, कुत्रचिद्देशेऽश्वमांसम्, कुत्रचिद्देशे शुनो मांसम्, कुत्रचिद्देशे हस्तिमांसम्, कुत्रचिद्देशे नरमांसं भक्षणीयम् । एवमन्यदिष मांसं देशव्यव-हारेण सर्ववर्णावर्णानां भक्षणीयं सर्वथा। क्रुत्रचिद्देशे ब्राह्मणानां मद्यपानं विहितम्, कुत्रचिद्देशे शुद्राणां विहितम्, कुत्रचिद्देशे कुलीनाकुलीनानां विहितम्। कुत्रचिद्देशे व्वोच्छिष्टं भक्षणीयम्, कुत्रचिद्देशे भोजने कृते नाचमनम्, कुत्रचिद्देशे शुकरमांसं भक्षणीयम्, कुत्रचिद्देशे महिषमांसम्, कुत्रचिद्देशे छागलमांसम्। एवमन्यदिप मांसं देशव्यवहारेण वर्णावर्णेनं भक्षणीयम् । कुत्रचिच्चण्डालाः श्रावकाः, कुत्रचिद्देशे चतुर्वर्ण-प्रवृत्तिः, कुत्रचिद्देशे सर्वेकवर्णप्रवृत्तिः। कुत्रचिद्देशे भर्तरि मृते सति पुत्रस्य माता भार्या भवति, कुत्रचिद्देशे भ्रातुर्भागन्योनिवाहः, कृत्रचिद्देशे मातुलकसम्बन्धः, कुत्रचिद्देशे कुलाकुलानां परस्पराभिगमनम्, कुत्रचिद्देशे ब्राह्मण्यो वेश्याव्यवहारं

१. भो. 'स्व' नास्ति ।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

पटले, १२७ वलो.]

15

20

25

कुर्वन्ति । एवमनेकदेशव्यवहारेण भक्ष्याभक्ष्यकुलाकुलाभिगमनं योगिना कर्तव्यमिति । तथा कुलदेवता--कस्यचित् कुले नागो देवता, कस्यचित् कुले छागलः, कस्यचित् कुले शुकरः, कस्यचिन्महिषः, कस्यचिद् घूकः। एवमन्येऽपि तियञ्चोऽन्येषां कुलदेवता न मारणीया न भक्षणीयाश्च । तथा कस्यचित् कुलदेवता पलाशः, कस्यचिदकः, कस्यचिदश्वत्थः, एवमन्येऽपि वृक्षाः। अन्येषां कुलदेवता न छेदनीया न भेदनीयाः। अत्र लौकिकोऽपि प्रत्ययो दृश्यते । कस्मात् ? स्वकुलोपद्रवात् स्वकुलोपकारात् । इह यस्य या देवता आराधिता उपकारं करोति, विरोधिता महोपद्रवं करोति, तस्मात्तेषां देशकुलव्यवहारेणादिकर्मिको व्यवहरति मन्त्रध्यानसाधनाभिरतः, यावन्मन्त्रसिद्धिभवति ज्ञानसिद्धिर्या । ततः स्वेच्छ्या भक्ष्याभक्ष्यं गम्यागम्यं पेयापेयं करोति, न तस्य कोऽपि बाधां कर्तुं समयं इति । एवमादिकीमको मन्त्रे सिद्धे सित योगी भवति । मण्डलचकः स्कारिताकाशगमनात् सिद्धः, मारक्लेशापत्तिज्ञेयावरणक्षयात् सर्वाकार-ऋद्विस्फरण-सिद्धिदर्शनाद् [193b] धर्मचकप्रवर्तनात् सर्वजभाषया सकलधर्मस्कन्धसमृहदेशनावशात् सर्वज्ञो भवतीति । उक्तं भगवता प्रत्यवेक्षणाज्ञानस्तवे नामसंगीत्यां चत्वारिकातिमादि-क्लोकत्रयेण 'प्रज्ञाज्ञानयोगः। तद्यथा--

मायाजालमहोद्योगः सर्वतन्त्राधिपः परः। नि:शेषज्ञानकायघृक् ॥ अशेषवज्यपर्यञ्जो समन्तभद्रः सुमितः क्षितिगभीं जगद्धतिः। सर्वबुद्धमहारागो विश्वनिर्माणचक्रधक् ॥ सर्वभावस्वभावाग्रः सर्वभावस्वभावघृक् । अनुत्पादधर्मा विश्वार्थः सर्वधर्मस्वभावधृक् ॥ इति । (ना० सं० ८.३८-४०)

तथा तन्त्रराजेऽप्यक्तं पञ्चमपटले विष्ठितमादिवत्तद्वयेन-तैश्चींद्व कालचकः प्रकटयति महानेकनिर्माणकायै-वंष्त्रज्वालास्फुरद्भिरसुर³सुरनुणां कामधातौ स्थितानाम् । सम्भोगे रूपिणां वे नभिस जिनस्ताद्यहंतां धर्मकायैः शून्यां शै: शून्यकृत्सनं त्रिभुवनसकलं वायभिर्वायकृत्सनम् ॥ तेजोंऽशैर्विह्नकृत्सनं ह्यदकमपि जगत्स्फारितैश्चोदकांशै: पृथ्वीकृत्स्नं घरांशैः समुदितविषयैः सर्ववस्तुस्वभावम् । एकात्मानं समन्ताद् गगनसमिमदं दर्शयेच्छुद्धभूम्या-मेवं बुद्धस्य कायो भवति न म्रियतेऽप्येकसीस्यस्वभावात् ॥ इति । (का० त० ५.६०-६१)

१. भो. gNis Su Med Pahi Ye Ses Kyi rNal hByor (अद्वयज्ञानयोगः)। २. च. एकोनपष्टि । ३. मो. 'सुर' नास्ति । ४. च. क्लोकेऽस्मिन् सर्वत्र 'अंशै:' इत्यस्य स्थाने 'अर्द्धः'।

अतो भगवतो वचनात् पञ्चामृतभक्षणाद् मन्त्रजापमण्डलचत्रविकल्पभावना-वलाद् योगी सम्यक्सम्बद्धो न भवतीति।

ननु भगवतोक्तं मण्डलचक्रे साक्षात्कृते सति योगिनां महामद्रासिद्धिभविति. तदिह कथं मण्डलचक्रेऽपि साक्षात्कृते योगी सर्वज्ञो न भवतीतीह केषाश्चिदिभप्रायो भविष्यति । तस्माद्च्यते — इह पूर्वमेवोक्तं मण्डलचकं विकल्पजालं प्रादेशिकं प्रादेशिकसिद्धिफलदम् । अथ मुर्खाणां भ्रान्तिरियममुकसिद्धिः कर्ममुद्रां गृहीत्वा, इह गृटिकाबलेन मन्त्रबलेन सप्तावर्तबलेन खङ्गादिबलेन ध्यानबलेन वा मण्डलचक-साधनबलेन वाऽद्रथो भवति, न सर्वावरणविनिर्मुक्तः सर्वज्ञो भगवान् वज्यसत्त्वो भवतीति । उक्तं भगवता नामसंगीत्यां वज्जधात्महामण्डलस्तवे महामृद्राघक्। तद्यथा-

> महाध्यानसमाधिस्थो महाप्रज्ञाशरीरघृक्। महाबल। महोपायः प्रणिधिज्ञानसागरः॥ इति। (ना० सं० ५.१०)

अतो भगवतो वचनान्नेयं महामुद्रासिद्धिः। महामुद्रा सर्वधर्मनिःस्वभावलक्षणा सर्वाकारवरोपेता प्रज्ञापारिमता वृद्धजननी, धर्मोदयशब्देनापि सा उच्यते । तस्मादर्मो-दयात् सर्वधर्माणां निःस्वभावेन उदयो भवति । निःस्वभावा धर्मा दशबलवेशारबा-दयश्चतुरशीतिसहस्रधर्मस्कन्धाः, तेषामुदयभूतो धर्मोदयो बृद्धक्षेत्रं बृद्धबोधिसत्त्वानां निवासो रतिस्थानं जन्मस्थानं च, न पुनयंस्माद् रक्तमूत्रशुक्राणामुदयः स धर्मोदय इति । इह संसारिणां रागविरागक्षेत्रं न तथागतानामिति । तस्माद्धर्मोदयो(या) धर्मधातुस्वरूपिणी विश्वमाता कालचक्रे भगवताऽऽलिङ्गिता सर्वदा सर्वावरणरहिता। इह राग उत्पादकालः, च्यृतिनिरोधकालः, [1942] तयोः समापत्तिरक्षरकालः। तस्य चक्रं वज्रधातुमहामण्डलमिति स्कन्धघात्वायतनं निरावरणं वज्रधातुमहामण्डलमित्युच्यते। अनेनाक्षरोत्पन्नेन सा अनुत्पन्ना महामुद्रालिङ्गिता इति । इमां महामुद्रां यः कश्चिद् जन्मान्तरपुण्यवासनावशात् सद्गुरूपदेशादनेककालं रात्रिन्दिवं सर्वधर्मकल्पनारहिता स्वचित्तप्रतिभासमात्रां सर्वाकारवरोपेतां महाशून्यतां सहजानन्दजननीं साक्षा-कुत्वाऽऽलिङ्क्यति, 'स महामुदासिद्धि प्राप्तः सर्वज्ञो भगवानित्युच्यते। तस्मादादिः कर्मिकेण योगिकृत्यं न कर्तव्यम्, योगिना सिद्धकृत्यं न कर्तव्यम्, सिद्धेन सर्वज्ञकृत्यं न कर्तव्यम् । एवमादिकमिकेण प्रागुक्तविधिना भक्ष्याभक्ष्यादिकं कर्तव्यमिति । अध पापमतीनां ³भक्त्या देत्यानामसद्गुरूपदेशघर्माणां वचनिमह तथागतेनोक्तं तन्त्रराजेषु सर्वसमया निविकल्पचित्तेन भक्षणीयाः। तस्मात् प्रथमं तावत् पश्चामृतादि भक्षयामः, पश्चात्तदभ्यासवशात् समयसिद्धिभविष्यति, समयसिद्धिवशाद् विषादीन्यभक्ष्याणि भक्ष्याणि भविष्यन्ति, गूथादीनि दुर्गन्यानि ³सुगन्यानि भविष्यन्तीति । इह वचनात्

१. च. समयमुद्रा । २. भी, bZah Bar Bya Ba (भश्या) । ३. च. 'सुगन्धानि' Alfed 1 homosotelraton

10

15 T 442

पटले, १२७ इलो.]

20

परम्बिरोधः। कथं प्रथमं ताबद्गिनप्रवेशः कर्तव्यः, पश्चादभ्यासवशादिनिस्तम्भनं भविष्यति । न चैवम्, इह महादुष्टानां परवञ्चकानां सर्वज्ञशासनविडम्बकानां महासमय-भेदिनामवीचीनरकगामिनामशुद्धचित्तानां यदि विशुद्धं चित्तम्, 'तदा योगिकृत्यं कि ते न कुवन्तीति । इह विशुद्धचित्ताद् योगी वींह्न प्रविशति न च विह्निना देखते, मत्तगजेन्द्रं स्तम्भयेन्न मत्तगजेन्द्रेण मार्यते, सिंहव्याघ्रादिकमारोहते न सिंहव्याघ्रादि-केन विदायंते, काकपेयां नदीं प्रविशति नदीप्रवाहेन ³न नीयते, विषं भक्षयित न विषेण मुच्छितो भवति, खङ्गादिशस्त्राणि भक्षयति न शस्त्रैर्मुखे च्छिद्यते । तथा भक्ष्याभक्ष्यं करोति, स्वपररूपपरिवर्तनं करोति । एवमनेकाकाराणि योगिकृत्यानि न चादिकामकः करोति । उक्तं भगवता योगिनां दशधा व्यवस्थानम् —प्रथमं चित्तोत्पा-दादिको योगी पश्चाद्वालभूतः कुमारभूत आदिकर्मिको योगाचारजन्मजः प्रयोगसम्पन्न आशयसम्पन्नोऽवैर्वितकोऽभिषेकप्राप्त एकजातिप्रतिबद्धश्चेति । ततो वोधिसत्त्वविश्वा दश भवन्ति - आयुर्वशिता, कर्मविशिता, परिष्कारविशिता, अधिमुक्तिवशिता, प्रणिधान-वशिता, ऋद्विवशिता, उपपत्तिवशिता, धर्मवशिता, चित्तवशिता, ज्ञानवशिता चेति। दश भुमय:-प्रमुदिता, विमला, प्रभाकरी, अचिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुखी, दुरङ्गमा, अचला, साधुमती, धर्ममेघा चेति । तथा दश पारमिता परिपूर्ण भवन्ति-दान-शील-क्षान्ति-वीर्य-ध्यान-प्रज्ञा-उपाय-प्रणिध-बल-ज्ञानपारमिताश्चेति । एवं योगी बोधिसत्त्वो भवति । उक्तं भगवता नामसंगीत्यां सुविशुद्धधर्मधातुस्तवे तृतीय-चतुर्थ-इलोकाभ्याम^४-

> दशपारिमताप्राप्तो दशपारिमताश्रयः। दशपारिमताशुद्धिर्दशपारिमतानयः ॥ दशभूमीश्वरो नाथो दशभूमिप्रतिष्ठितः। दशज्ञानविशुद्धारमा दशज्ञानविशुद्धिषृक्॥ इति। (ना•सं•६.२-३)

अतो योगी विशुद्धचित्तो बोधिसत्यो भगवता[194b] उक्त इति । इह मन्त्रयाने केचिद् वीरक्रमेण स्वाधिष्ठानक्रमेण वा महानिशायां रमशानभूस्यां प्रविश्य एकवर्षं द्विवर्षं वा द्वादशवर्षपर्यन्तं वा "मरणपर्यन्तं वा मन्त्रजापहोमध्यानबलेन हेरुकं भगवन्तं साक्षात्कर्तुमसमर्थाः, तथा पर्वतोद्यानसरित्समुद्रतटादिकेषु विजनस्थानेषु समन्तभद्रादिवेदतां व । स्वपरार्थनिमित्तं हीनवीर्याः सन्तः कर्मसाधनविषये स्वगृहे मन्त्रजापहोमध्विल्यानमण्डलक्कादिभावनां कृत्वाद्रस्थानाकालवशादसिद्धमन्त्रदेवताविरक्तिचत्ताः, तथा-विशुद्धक्रमेण महामुद्रामावनामार्गक्रस्याः सद्गुरूपदेशरहिता महोच्छेदे पतिताः सन्तो दुष्टरगुरवो बालमतीनां गम्भीरोदारधमीपरीक्षकाणां प्रजापारिमतां देशियव्यन्ति ।

तद्यथोक्तं भगवता तथागतेन प्रज्ञापारिमतायाम्—"निर्विकल्पाः सर्वधर्माः शून्याः सर्वधर्मा अनिमित्ताः सर्वधर्मा अप्रणिहिताः सर्वधर्माः संस्काररिहताः सर्वधर्मा उत्पादरिहताः सर्वधर्मा अनक्षराः सर्वधर्मा हेतुशून्याः सर्वधर्मा अचिन्त्याः सर्वधर्माः" इति ।

तस्मात् सर्वज्ञफलावासये वोघिसत्त्वेन महासत्त्वेन सर्वधर्मनिरपेक्षकेण भवितव्यम्, न रूपस्कन्धे स्थातव्यम्, न वेदनायां न संज्ञायां न संस्कारे न विज्ञाने न पृथ्वीधातौ स्थातव्यम्, नाव्धातौ स्थातव्यम्, न तेजोधातौ न वायुधातौ न शून्यवातौ न व्यवधातौ न व्यवधातौ न श्रोत्र- स्थातव्यम्, न रूपधातौ न चक्षुर्विज्ञानधातौ न श्रोत्रविज्ञानधातौ न न श्राप्यविज्ञानधातौ न न श्राप्यविज्ञानधातौ न न श्राप्यविज्ञानधातौ न स्पर्यधातौ न स्पर्यधातौ न कायविज्ञानधातौ न स्पर्यधातौ न कायविज्ञानधातौ न मनोधातौ न धर्मधातौ न मनोविज्ञानधातौ स्थातव्यमिति।

एवं प्रज्ञापारमिताऽचिन्त्यतथागतज्ञानं सम्यक्सम्बुद्धत्वछाभाय भगवतोक्तम् । अचिन्त्यं कस्माद् ? रागविरागस्वभावात् । इह हि सत्त्वानां यदा चिन्तनं प्रवर्तते तदा परमेष्टवस्तुषु रागो भवति, अनिष्टवस्तुषु विरागः, तौ रागविरागौ संसारकारणौ भवतः । यदा पुनस्तथागतज्ञानं निश्चिन्तनं वर्तते तदा नेष्टवस्तुषु रागो नानिष्टवस्तुषु विरागो भवति, तयोरभावादेव संसाराभावस्तदभावात् सम्यक्संबुद्धत्वं भवति । अतो बुद्धित्वो-साधनं निश्चिन्तनं ताथागतं ज्ञानम्, नान्यो विकत्यः समाधिः । एवमप्रबुद्धा निश्चन्तनं ज्ञानमिच्छन्तो विद्यव्यन्ति महोच्छदे पतिताः केचित् । तस्मादुच्यते—इह हि यदि निश्चन्तनं ज्ञानं बुद्धत्वयायकं तदा सर्वे सदा किन्त बुद्धा वभूवुः, एपामपि गार्डनिद्धायां निश्चन्तनं ज्ञानं बुद्धत्वयायकं तदा सर्वे सत्याः किन्त बुद्धा वभूवुः, एपामपि गार्डनिद्धायां निश्चन्तनं ज्ञानं त्यात्वरमां निश्चन्तनं प्रवर्तते, नेष्टवस्तुषु रागो नानिष्टवस्तुषु विरागः । तस्मात् तस्यात् सुपुप्तावस्थायां रागविरागौ न स्याताम्, न च तेन निश्चन्तनज्ञानेन सर्वे सत्त्वाः सम्यक्सम्बुद्धा वभूवुः, तस्मान्तिश्चन्तनं ज्ञानं ताथागतं न भवति, यस्मात् समाधियः । अञ्चापारमितायां समाध्यो भगवतोक्तास्त्व रत्नप्रदीपो नाम समाधिः।

इह य[1952]दि रस्तप्रदोपिचन्तनं नास्ति प्रतिभासो वा, तदा रस्तप्रदोपो नाम समाधिः कथं स्यात् । एवमन्येऽपि समाधयो निश्चिन्तना न भवन्ति, स्वसंवेद्यलक्षणात्, जडशून्यताभावात् । अथ बालानां वाक्यमिदं ताथागतं ज्ञानं यदि स्वसंवेद्यलक्षणात्, जडशून्यताभावात् । अथ बालानां वाक्यमिदं ताथागतं ज्ञानं यदि स्वसंवेद्यं तदा सर्वक्षमा निःस्वभावाः कथं तथागतेनोक्ता इति ? अत्रोच्यते — इह ताथागतं ज्ञानं सर्वक्षमाणां निःस्वभावताववोधानं नाम, न सर्वाभावलक्षणं सुपुप्तचित्तम् । उक्तं प्रक्षापारिमतायाम् "अस्ति तिच्चतं चिचत्तम् चित्तम्" (अ० स०, पृ० ३) इति । प्रकृतिप्रभास्वरं नाम यदि स्वसंवेद्यं तथागतं ज्ञानं न भवति, तदा सत्त्वाध्यवधात् तथागतस्य धमंदेशना न स्यात् । सर्वधमां अप्रवोधाः, असंवेद्यत्वात् । अथेन्द्रियद्वारिकं स्वसंवेद्यम्, तदा निष्कलं सर्वगं सर्वव्यापि न भवति, सर्वावरणात् । तस्मात्ताथागतं ज्ञानं स्वसंवेद्यं सर्वधमंस्वभावजं निव्वल्पमनिन्द्रियमिति । उनतं भगवता नामसंगीत्यां प्रत्यवेक्षणाज्ञानस्तवे विद्यतिन मादिरलोक्षयेण ।

१. भो. hDi lTa sTe (तद्यवा) इत्यधिकम् ।

१. च. तथा। २. च. रक्ष्यते। ३. च. 'न' नास्ति । ४. मो० ḥDilTasTe (तथया) इत्यधिकम्। ५. मो. 'मरणपर्यन्तं वा' नास्ति । ६. च. 'बर्लि' नास्ति ।

निर्वाणं निर्वृतिः शान्तिः श्रेयो निर्याणमन्तगः। वैराग्यम्पिधसयः ॥ मुखदु:खान्तकृन्निष्ठा अजयोऽनुपमोऽव्यक्तो निराभासो निरञ्जनः। निष्कलः सर्वगो व्यापी सुक्ष्मो बीजमनास्रवः॥ अरजो विरजो विमलो वान्तदोषो निरामयः। सुप्रवृद्धो विवृद्धात्मा सर्वज्ञः सर्ववित् परः॥ इति। (ना॰ सं॰ ८.२०-२२)

तथा कृत्यानुष्ठानस्तवे 'त्रयोदशमेन श्लोकेन । तद्यथा-

30

16507 4.112

आत्मवित् परवित् सर्वः सर्वीयो ह्यग्रपुद्गलः। सर्वोपमामतिकान्तो ज्ञेयो ज्ञानाधिपः परः॥ इति । (ना० सं० १०.१३)

तन्त्रराजेऽप्युक्तं पञ्चमपटले नवनवतिमेन वृत्तेन र-सर्वाकारं ह्यगम्यं विषयविषयिणां कायवज्यं जिनस्य वाग्वजं सर्वसत्त्वस्वहृदयस्तकैर्धर्मसम्पादकं यत्। सत्त्वानां चित्स्वभावं सकलभूवि गतं विज्ञणश्चित्तवज्ञं भावानां ग्राहकं यद् विमलमणिरिव ज्ञानवज्यं तदेव ॥ (का० त० ५.९९)

अतो निरिन्द्रियं स्वसंवेद्यं ताथागतं ज्ञानमिति ।

नतु यदि स्वसंवेद्यं ताथागतं ज्ञानं तदा स्कन्धधात्वायतनाभावान्न संभवति, उक्तं भगवता तन्त्रराजेषू-

"स्कन्धाभावे प्रज्ञाज्ञानं नोपलभ्यते, द्वीन्द्रियसंयोगात् । बोधिचित्तनिर्गमकाले सहजिवरमयोर्मध्ये जिन्दुत्रयावमानिकमेकक्षणमात्रं समन्तभद्रं महासुखज्ञानम्, एतदेव स्वसंवेद्यमुक्तम्" इति ।

इह कथं बोधिचित्तविन्द्रिनवीणरहितं निरिन्द्रियं समन्तभद्रं महासुखज्ञानं भवति, खपुष्यं वन्ध्यापुत्रेणान्नातिमव विवार्यमाणं निरर्थकम्[इति] इह केषाञ्चिदिभित्रायो भविष्यति । तस्मादुच्यते --नैतदेवं तथागतेनोक्तं बोधिचित्तविन्दुः क्षरसुखं समन्तभद्रं महासुखं प्रजाज्ञानम्, यस्मात् "चतुर्यं तत्युनस्तया" (गु॰ त॰ १८.११२) इति प्रतिषेध-वचनात्। इह यदि तृतीयं क्षरमुखं प्रज्ञाज्ञानं समन्तभद्रं महामुखं चतुर्यं भवति, तदमिहितस्याभिधानं भवति । न चैवं युक्तम्, कस्मात् ? पुनरक्तदोषप्रसङ्गात् । यथा

हस्त इत्युक्ते सित पुनहंस्त इति, एवं पुनदंधि । इह बालोन्मत्तवचनं न पण्डितानाम । तस्माच्चत्थंमिति वचनात् तृतीयं न भवति, "तत्पूनस्त[195b]या" इति वचनात् प्रज्ञाज्ञानं तदेव । अतो भगवतो वचनाद् अप्रबोद्धारो नष्टा विद्वयन्तीह-- "चतुर्यं तत्पून-स्तथा" इति शब्देन भगवता तृतीयमुक्तं चतुर्थं नाम न स्यात् । इहाधर्मप्रवृत्तिर्वालानां द्वीन्द्रियोत्पन्नक्षरसुखाभिलाषिणां महाक्षरसुखज्ञानभ्रष्टानामिति । तस्माद् बोधिचित्त-च्यतिसुखं समन्तभद्रं महासुखज्ञानं चतुर्थं न भवति । उक्तं भगवता नामसंगीत्यां फ़्त्यानुष्ठानज्ञानस्तवे तृतीयश्लोकेन-

> सर्वाकारो निराकारः षोडशार्धार्धविन्द्धक्। कलनातीतश्चतूर्थध्यानकोटिध्कु ॥ इति । (ना० सं० १०३)

तन्त्रराजेऽप्यक्तं पञ्चमपटले 'षड्विंशत्यधिकशततमेन वृत्तेन । तद्यथा —

एवं चित्तं चतुर्धा त्रिविधभवगतं प्राणिनां बिन्द्रमध्ये योगीन्द्रै रक्षणीयं समस्खफलदं व्यापकं मोक्षहेतोः। विन्दोर्मोक्षे क्व मोक्षः परमसूखगते योगिनां जन्मबीजे तस्मात् संसारसीख्यक्षण इह यतिभिः सर्वदा वर्जनीयः॥ इति । (का०त० ५.१२६)

अतश्चतुर्थं तृतीयं न भवति । इह यदि बिन्द्स्तत्ततीयं प्रज्ञाज्ञानं चतुर्थं तदेव तदा पोडशार्घार्धिबन्दुपुग् भगवान्न भवति, यदि चतुर्थो विरामस्तदा आनन्द-परम-विरम-सहज-चतुर्थध्यानकोटिघुग् न भवति । अतो निरिन्द्रियं स्वसंवेद्यं ताथागतं ज्ञान-मिति । तस्माद् योगिना बोघिचित्तं सुदृढं रक्षणीयम्, न मोक्षणीयम् । न चान्ये बिन्दवः शरीरे बाह्ये वा सन्ति बोधिचित्तविन्दुरहिता मुत्रतोयादयः, ये बुद्धत्वफलदायका भविष्यन्तीति, तन्न, यदि चतुर्थं प्रज्ञाज्ञानं तृतीयं न भवित, भगवांश्च विन्दुधृक्, तदा "तत्युनस्तथा" इति वचनात् प्रज्ञाज्ञानं कि भविष्यतीति केविदत्र विद्ध्यन्ति, तस्माद्च्यते-

इह वज्जयाने लौकिकलोकोत्तरसत्यमाश्चित्य भगवता त्रिघा प्रज्ञा प्रोक्ता— कर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा, महामुद्रा इति, एकाभिधानतः । तासु कर्ममुद्राज्ञानमुद्रासुखं स्पन्द-लक्षणं महामुदासुखं निःस्पन्दलक्षणं योगिनो भवति । इह यदि प्रज्ञाया ज्ञानं प्रज्ञाज्ञानं च्युतिलक्षणं प्रज्ञाहेतुनोत्पन्नं फलम्पायस्य प्रज्ञाज्ञानं तदोपायहेतुनोत्पन्नं फलं प्रज्ञाया उपायज्ञानं भवति महामुद्रासिद्धवर्थम् । एवं परस्परापेक्षिकत्वाद् हे ज्ञाने भवतः। एवमुभयोः प्रत्येकज्ञाने सत्यद्वयज्ञानाभावः, अद्वयज्ञानाभावाद् बृद्धत्वस्याप्यभावो भवति, विशुद्धपरमाक्षरज्ञानरहितत्वादिति । अथ प्रज्ञाया ज्ञानं प्रज्ञाज्ञानं यदि, तदा

AND THE PROPERTY OF THE PARTY O

१. च. पञ्चविशत्यधिक ।

१. च. पोडयमेन । २. भो. ḥDi ITa sTo (तद्या) इत्यक्षिकम् । Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

उपायस्य ज्ञानं उपायज्ञानिमिति, एवं पूर्ववहोष इति । उक्तं भगवता नामसंगीत्यां प्रत्यवेक्षणाज्ञानस्तवे षट्विंशतिमादिश्लोक देवेन विशुद्धं परमाक्षरज्ञानम् । तद्यया—

संबुद्धबज्जपयंङ्को बृद्धसङ्गीतिधर्मपृक् । बृद्धपदोद्भवः श्रीमात् सर्वज्ञज्ञानकोषधृक् ॥ विस्वमायाघरो राजा बुद्धविद्याधरो महात्। बज्जतोक्ष्णो महासङ्गो विशुद्धः परमाक्षरः ॥ इति । (ना॰ सं॰ ८.३४-३५)

तन्त्रराजेऽप्यक्तं साधनापटले एकोनद्विशतादिवृत्ताभ्यां महामुद्रालक्षणम्—

त्यक्लेमां कर्ममुद्रां सकलुषहृदयां कल्पितां ज्ञानमुद्रां सम्यक्सम्बोधिहेतोजिनवरजननीं भाव[1962]येद् दिव्यमुद्राम्। निर्लेषां निर्विकारां खसमहततमां व्यापिनीं योगगम्यां कूटस्यां ज्ञानतेजां भवकलुषहरां कालचक्रानुविद्धाम्॥ (का०त०४.१९९)

मुद्रा मायानुरूपा नभित मनित वे रूपवर्ट्पणे च त्रैलोक्यं भासयन्ती तडिदनलिनभानेकरस्मीन् स्फुरन्ती। बाह्ये देहेष्वभिन्ना विषयविरहिताऽऽभासमात्राऽम्बरस्था चित्तं चेतोमयालिङ्क्यिति च जगतोऽनेकरूपस्य सेका॥ इति। (का० त०४.१९८)

मूलतन्त्रेऽप्युक्तम्—

60

10

15

20

कर्ममुद्रां परित्यज्य ज्ञानमुद्रां विकल्पिताम् । परमाक्षरयोगेन महामुद्रां विभावयेत् ॥ इति ।

अतो भगवतो नियमात् कर्ममृद्रामुखं समन्तभद्रपरमाक्षरसुखं न भवति, तथा मण्डलचक्रभावनाविकल्पितप्रज्ञासुखं समन्तभद्रं परमाक्षरसुखं न भवति, विकल्पापरित्यागात् । अधुनाऽसद्गुरूपदेशाद् महामृद्राज्ञानभ्रष्टाः पशृत्वं कुर्वन्ति बुद्धत्वं नास्ति, महामुद्राज्ञानाभावात् । महामृद्राज्ञानमप्रतिष्ठितं योगिनामसद्गुरुमांगरिहृतः प्रतिपाद्यित्ं न शक्नोति । मागाँऽपि—"चतुर्यं तत्पुनस्तया" (गु॰ त॰ १८.११२) इति । एवं चतुर्यामिषेकाप्रवोधात् सर्वेऽभिषेका निरर्थकाः स्यूरिति ।

नतु यदि समन्तभद्रं परमाक्षरसुखम्, तदेव चतुर्थं महामुद्राज्ञानं महामुद्रारहितं न भवति । तदियं किमर्थं द्वोन्द्रियसप्तापत्या महामुखभावना भगवतोक्ताः? अनुया भावनया इह जन्मनि बृद्धस्यं बच्चत्ररस्यं चोक्तमितीह कस्यचिदभिप्रायो भविष्यति,

१. च. त्रयेण।

तस्मादुच्यते—इह यदुवतं भगवता द्वीन्द्रियसमापत्या महासुखसाधनं तत्सत्यम्, उक्तं भगवता तन्त्रराजे पश्चमपटले 'एकोनद्विशततमेन वृत्तेन-

> सत्त्वा रागेण येन प्रलयमुपगतास्तायिनस्तेन मुक्ताः सत्त्वा यद्रक्षयन्ति प्रतिदिनसमये तायिनस्तहदन्ति । सत्त्वा यन्मोचयन्ति स्वहृदिगतमुखं तज्जिना रक्षयन्ति तेनेदं दुष्करं स्याज्जिनवरचरितं देवनागासुराणाम् ॥ इति । (का० त० ५.१९९)

इह सत्त्वा येन रागेण च्युतेन प्रलयं मरणमुपगताः, तेनैवाच्युतेन परमाक्षरभूतेन तायिनो वृद्धा मुक्ता भवन्ति । सत्त्वा यद्वश्वयन्ति पुत्रदारादिकं तायिनस्तं ददन्ति । सत्त्वा यन्मोचयन्ति महासुखं तद् वृद्धा रक्षयन्ति । तेन कारणेन देवासुरमनुष्यनागानां दुष्करं चरितं तथागतानां विकृत्रितं यदेव तदेव योगिना बोधिचित्तमच्युतं कर्तव्यं यथानुक्रमेण परमाक्षरसाधनार्थम् । तेन द्वीन्द्रियसमापत्त्या सुखभावनोक्ता न बोधिचित्तन् च्यवनावस्था । इयं च्युतिवासना सत्त्वानामनादिकालेनागन्तुक्रमलस्वभावा, तथा संसारः । सा येन मुद्रासङ्गेन च्युतिवासना भवति, तेनैव सङ्गेनाच्युतिवासना भविष्यति, सूत्काग्निनवत् । उनतं भगवता तन्त्रराजे साधनापटले व्युतिवास्यधिकद्विशततमेन वृत्तेन—

सूतस्याने रिपुत्वं न शिखिवरिहतः सूतवन्यः कदाचिद् नाबद्धो हेमकर्ता कनकविरिहता वादिनां नैव भोगाः । एवं स्त्रीसङ्गहोनो नहि भवति ³नृणां सर्वदा चित्तवन्यो नाबद्धः कायवेघी परममुखमिहाविद्धकायो ददाति ॥ इति ।

(का० त० ४.२२४)

2. T 444

इह यथाग्निस्पर्धात् सूतकः प्रपलायित, [196b] सोपायेन तेनैवाग्निना वध्यते, तथा धर्मादयस्पर्धाद्वीधिचत्तं प्रपलायित, सोपायेन तेनैव वध्यते । यथाग्निना रसो बद्धः सर्वलोहानि हेमं करोति, एवं धर्मादयसङ्गेन बोधिचित्तं बद्धं स्कन्धधात्वायतनादिकं निरावरणं करोति । अतो रसबोधिचित्तयोरतक्यः प्रभावो मूर्लेविचारयितुं न शक्यते । तस्मात् कर्ममुद्राप्रसङ्गेऽपि देवतालम्बनं प्रोक्तं बोधिचित्तस्य स्थिरोकरणार्थम्, रसस्य स्वेदनजारणादिकमिव । न पशुकर्मकमलप्रविष्टस्य बोधिचत्तस्य भक्षणं तथागतेनोक्त-मिति । उक्तं भगवता तन्त्रराजे पञ्चमपटले पत्रिसप्तितमेन वृत्तेन कर्ममुद्रादिसाधनम् । तद्यया —

१. च. इपक्षीत्यपिकः। २. च द्वात्रिष्ठत्यः। ३. मृ. प्रो. योगिनां। ४. च. द्वात्रिष्ठतिमेनः।

THE RESIDENCE OF THE PERSON OF

पटले, १२७ वलो.]

10

सेव्यादो कर्ममुद्रा जिनसहजमुखस्यास्य वृद्धधर्थहेतो-स्तस्मादादित्यस्या मुखकरचरणोण्णीयसर्वाङ्गपूर्णा । विद्युद्ण्डानुरूपाऽच्युतसुखजननी लक्षणाङ्गप्रपूर्णा वच्चेरुद्धासयन्ती त्रिभवगततनुर्धर्मधानुस्ततः स्यात् ॥ इति । (का॰ त॰ ५.७३)

पुनस्तत्रेत्र पटले ैत्रयोदशाधिकशततमेन वृत्तेनोक्तम्— चित्तस्याभासमात्रा स्वमनसि जनिताऽऽदर्शविम्बोपमा वै योगोन्द्रेः सेवनीया सकलजिनसुतैः सेविता या च बुद्धैः । सा ज्ञानाचिः प्रबुद्धा दहित सिवषयं मारवृन्दं समस्तं रागादींश्चापि काये ददित समसुखं योगिनां वर्षयोगात् ॥ इति । (का० त० ५.११३)

अतो भगवतो नियमाद् होन्द्रियसमापत्याऽपीयं महामृद्रा स्वचित्तप्रतिभासमात्रा योगिना भावनीयाऽऽवीधिपर्यन्तं बाह्येन्द्रियजनितं क्षरसुखं विहायेति ।

नन् तथागतेनोक्तं स्कन्धघात्वायतनाभावे द्वीन्द्रियसंयोगरहितं प्रज्ञाज्ञानं स्व-संवेद्यं न भवति, अच्यतत्वात् । कथं योगी स्वचित्तप्रतिभासे स्वचित्तेनानुषङ्गं कृत्वा स्वचित्तं निरावरणं करोति, महाक्षरसुखज्ञानं चोपभङ्कते, परमाणुसंदोहशरीराभावात् । एतदेव विपरीतम्; देवदत्त आत्मनः स्कन्धमारुह्य ग्रामं गच्छतीति, इह कस्यचिदिभप्रायो भविष्यति, तस्माद्रच्यते - इह हि यद्वक्तव्यं मर्खेः,परमाणुसन्दोहारमकैः स्कन्धधात्वायतनै-विना चित्तमात्रेण प्रज्ञाज्ञानं स्वसंवेद्यं न भवति, तन्न, कस्मात् ? आगन्त्कचित्तवासना-वशात्। इह स्कन्धघात्वायतनं नाम आगन्तुकचित्तवासना, तस्याः प्रसादेन चित्ते सुख-दुःखवेदना प्रविशति, परमार्थतो विचार्यमाणे नास्य शारीरस्य क्षद्रोपद्रवेणेति । इह परमाणुसंदोहात्मकं शरीरं स्वप्नावस्थायां प्रपतितं तिष्ठति, नास्य क्षुद्रोपद्रवः कश्चि-दस्ति, येन चित्ते दुःखं प्रविशति । इह सर्वलोकेषु प्रसिद्धम्, तस्यामेवावस्थायामन्य-च्चित्तवासनात्मकं शरीरं परमाणुसन्दोहरहितं देशान्तरं व्रजन् प्रतिभासते, तस्य देशान्तरं व्रजतः शरीरस्य चौरादिभिरुपद्रवे कृते सित तेनोपद्रवेण चित्ते दुःखं प्रविशति, तेन दुःखेनाक्रन्दति । तदिदं महात्यद्भतम् । शरीरं विना चौरादिभिविना स्वसंवेद्यं [197a] दु:खज्ञानं प्रवर्तते चित्तस्य । एवं स्वप्ने महाकामोपभोगैहिचत्ते सुखं प्रविशति तदेवाश्चयंम्, शरीरेण विना ^३कामोपभोगीविना स्वसंवेद्यं सुखज्ञानं चित्तस्य प्रवर्तते सत्त्वानामिति । एतदेव पण्डितैविचारियतुं न शक्यते प्रादेशिकज्ञानमिप, कि पुनः संसारवासनातिकान्तं निर्वाणवासनोद्भूतं योगिस्वसंवेदं समन्तभद्रं महाक्षरसुखज्ञानं वितकंपितं न शक्यते मुर्खेरिति।

१. घ. एकादशा । २. मो. hDod Pa Chen Po (महाकामो)।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

अथ पापमतीनां तीर्थिकानां प्राणवायतत्त्वरतानां वचनमिदम्—इह स्वप्नावस्थायां परमाण्सन्दोहात्मकशरीरे निश्वास-उच्छ्वासोऽस्ति(सौ स्तः), तयोनिश्वास-उच्छ्वासयोः प्रभावादवस्थात्रयं भवति, न निश्वासोच्छ्वासाभावादिति । एतदेव विचार्यते - इह हि यदि निरवासोच्छ्वासाभ्यां विना चित्ते स्वप्नावस्था नास्ति, तदा कथं मृत्युमुच्छविस्थायां निश्वासोच्छ्वासाभ्यां विना प्रहरमेकं यावच्चित्तप्रतिभासो भवति, यमदुर्तेनीयमानं शरीरं यमराजाज्ञया यमपुरं प्रतिभासते । अत्र यमपुरे यमराजोऽपि प्रतिभासते । स यमस्तस्य नीतशरीरस्य पुण्यपापविचारं करोति । विचार्यात्र वदति—यथाऽस्याद्याऽऽयःक्षयो न भवति, तस्मादिमं सत्त्वं शीघ्रं मत्यंलोके नयत यावदस्य शरीरं न विनश्यति । यम-दूतानां नियमो भवति । तेन नियमेन ते यमदूतास्तच्छरीरं मर्त्यलोके क्षिपन्ति । तत्र क्षिप्ते सति चित्तवासनावशेन पुनस्तस्य मृतशरीरस्य निश्वासोच्छवासौ भवतः। तदाऽ-परवासनावशेन जाग्रदवस्था भवति । तस्यामवस्थायां चित्तप्रबोधाद् बन्धवर्गस्य यम-राजाख्यानं कथयति । तस्मात् शरीरं विना निःश्वासोच्छ्वासाभ्यां विनाऽप्यनादिचित्त-वासनाऽऽगन्तुका 'पुनर्जातिवशाद् भवति सत्त्वानाम्, न स्वाभाविकी । यदीयं संसार-वासना स्वाभाविकी भवति, तदा सत्त्वानां वृद्धत्वं नाम न स्यात् । येन कारणेनागन्तुका तेन कारणेनास्याः क्षयो भवति, तत्क्षयाद् बृद्धत्वं तथागतेनोक्तम्। एवमनेकप्रकारै-विचार्यमाणः स्वचित्तवासनामात्रोऽयं संसारः, नान्यः किवत् । संसारवासनापि च्युति-लक्षणः क्षणो नाक्षरः। निर्वाणवासनाऽच्यतिलक्षणः क्षणो न क्षर इति। उक्तं च भगवता तन्त्रराजेऽध्यातमपटले द्वयिकशततमेन वृत्तेन । तद्यथा-

> यो यन्मध्ये प्रविष्टो ब्रतिनयमरतः कर्मपाशैनिबद्ध-स्तन्मध्ये स्वस्वभावाद् भवति नरपते तत्कुले तद्प्रहेण। यावज्जीवस्य भावस्त्रिविषभववशाद् वेदना सोस्पदुःखं तावत् संसारघोरे अमणमिह नृप स्वर्गमस्ये त्वषस्य॥ (का० त० २-१०२)

पुनस्तत्रैव पटले सप्ताधिकनवितिसेन वृत्तेन योगवासना उक्ता— योगीन्द्रोऽप्राप्तयोगः प्रचलितमनसा याति मृत्युं कदाचित् श्रोमान् मानुष्यलोके प्रवरमृतिकुले जायते योगयुक्तः। पूर्वास्यासेन तेनाहरति पुनरिष [197b] ज्ञानयोगं विशालं लब्धे ज्ञाने प्रयात्यक्षयपरमपदं यत्र जन्मी न भूयः॥ इति । (काल तल २.९७)

अतिश्चित्तवासनावशात् स्वसंवेद्यं प्रज्ञाज्ञानं भवति, न परमाणुशरीरोप-भोगादिति । 🗶 🗴 🗡

१. भो. Yan Dan Yan Du (पुन: पुन:)। 🏎

20

63

T 445

15

T 446

नन् स्वप्नावस्थायां मैथ्ने कृते सति सुप्तकाये च्युतिभवति, न स्वप्ने(प्न)-चित्तवासनाकायात् । तस्मादस्य कायस्य प्रभावान्महासुखं स्वसंवेद्यं भवति, न चित्त-वासनाकायादिति वेषाध्वद् द्वीन्द्रयस्खाभिलाषिणां वावयं भविष्यति । तस्माद्रच्यते-इह हि यद्वक्तव्यं मुर्खेः परमाणुसन्दोहात्मकशरीराज्ज्युतिभवति, न चित्तवासनाकाय-वशात् । नेतदेवं प्रमाणम्, कस्मात् ? अरूपभवच्यवनात् । इह हि यदि परमाणुसन्दो-हात्मककायेन विना च्युतिर्न भवति, च्युत्या विना संसारो न भवति, संसारेण विना महामुखोपलम्भश्च न भवति, तदाऽरूपकायिकानां च्युत्या विना कथं बुद्धत्वाय पुनरूत्पादो भविष्यति, परमाणुसन्दोहात्मकशरीराभावात् । अरूपिणां नाहारिकं शरीरम्, परमाण-सन्दोहात्मकशरीराभावात् शुक्रच्यतिर्नास्ति, शुक्रच्यतेरभावान्न सुखं न संसारस्तेषा-मिति । न चैवम्, उक्तं च भगवता द्वितीयेऽध्यात्मपटले ततीयेन वृत्तेन परमाणसन्दोहा-त्मकशरीरमक्षरज्ञानं च । तद्यथा --

> देहेऽस्मिन् धातुवन्दं भवति च सुकलं पड्साहारपानाद् भूतेभ्यः षड्रसाश्च प्रकटितनियतं भूतवृन्दं खधातोः। शन्ये ज्ञानं विमिश्रं भवति समरसं चाक्षरं शाइवतं च एवं भृतस्थशान्तं त्रिविधभवगतं वेदितव्यं स्वकाये ॥ इति । (का० त० २.३)

देहेस्मिन्निति । तिर्यङ्मानुष्यदेहस्य यस्य षड्रसाहारपानमस्ति, असौ देहः ष इरसाहारपानी । अस्मिन् धातुवृन्दं लोमत्वगरक्तमांसास्थिमञ्जाशक्रधातुनां मेलापको ेघातुवन्दं भवति । कृतः ? पड्रसाहारपानात्, पट्च ते रसाः पड्रसास्तिक्ताम्ल-लवणकटुकमध्रकषाया लोमादिधातुस्वरूपं गच्छन्तोत्यभिप्रायः। भूतेभ्यः षड् रसाश्चेति । भताः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशधातवः कठिनद्रवोष्णस्पन्दनरसपरमाण्रूपाः, तेभ्य-स्तद्वोजसंयुक्तेभ्यस्तिक्तादयः षड्रसा भवन्ति । घातवो रसस्वभावं ग्च्छन्तोत्य-भित्रायः। भृतेभ्यो भवन्तीति सत्त्वाशयवशाद्वाच्यम्, परमार्थविचारतः पुनर्घातवोऽपि रसा भवन्तीति, न जन्यजनकसम्बन्धादिति । भूतवृन्दं खद्यातोरिति खधातोः श्न्यधर्माद् भूतवृन्दं भवति, बीजाङ्कर्यवत्। यथाङ्करो नानष्टबीजाद् भवति, न नष्टबीजाद् भवति, तथा न स्वरूपापरित्यागात्, न जडधातुतः, नोच्छेदशून्यादिति । ^२एवं शुन्यात् सर्वधर्मा भवन्तीति शुन्ये ज्ञानं विभिन्नमिति शुन्यधर्माणामुत्पाद-निरोधाभावः स्वचित्तप्रतिभासः। ज्ञानं तत्प्रतिबोधोऽक्षरसुखम्, तस्मिन् ³स्वचित्ता-भासे उत्पादविनाशाभावे ज्ञानं विमिश्रम्, स्वचित्तप्रतिभासे समरसमेकोभवति, न ज्ञानज्ञेयसम्बन्धेत । एतदेवाक्षर^४शाश्वतम्, परमाक्षरमित्यर्थः । एवं भूतस्थ-विदितव्यं ज्ञातव्यं [198a] स्वदेहे योगिनेति । तेन तिर्यङ्मनुष्याणां शुक्रबीजं "शरीरो- त्पत्तिकारणम्, तदेव पड्रसानां शरीरे धातुत्वं गतानां पथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश-परमाणसन्दोहात्मको गन्धरूपरसस्पर्शशब्दात्मकः सत्त्वधातः, एतद्वीजस्वभावात् कर्मजं शरीरमृत्पद्यते, निरुध्यते च मृत्युकाले तदेव पञ्चात्मकं बीजं निःसरित । पूनः स्वप्न-शरीरवद वासनाशरीरं शून्यं परमाणुसन्दोहर्वाजतमनिरुद्धम्, तेनेवानिरुद्धवासनाशरीरेण कर्मवासनो द्भ तेन पुनः परमाणुसन्दोहात्मकं शरीरं गुह्णाति । पुनः परमाणुसन्दोहात्मक-शरीरप्रहणात् प्राक्षरीरवासनां परित्यज्य वर्तमानशरीरवासनोत्पद्यते चित्ते । तेन कारणेन शुन्येभ्यश्चित्तवासनास्कन्धेभ्य आगन्तुकस्कन्धर्मा भवन्ति, आगन्तुकस्कन्ध-धर्मेभ्यः शुन्याश्चित्तवासनास्कन्धा भवन्तीति परलोके परमाणुमात्रोऽपि न गच्छति । कस्मात् ? 'प्राकस्कन्धपरित्यागेऽप्यपरस्कन्धग्रहणात् । एवमुक्तक्रमेण पडरसाहारिणो देहस्य पञ्चभतात्मकस्य च्युतिकाले पञ्चभतात्मकं कर्मजं बीजं निःसरति, चित्तवासनापि पञ्चभतात्मिका भवति पड्रसाहारिणामिति । देवानां पुनः पड्रसाहारी पञ्चभृतात्मकः कायो न भवति, पड्रसाहाराभावात् । चन्द्रादित्यादिषट्कामावचराणां तेषां पुनस्तोय-तेजोवाय्वाकाशसन्दोहात्मकं शरीरं रूपरसस्पर्शशब्दचतुर्गुणात्मकं पृथ्वीगन्धगुणरहितम्, लघत्वात् । शक्रमपि तत्स्वभावात्मकम्, चित्तवासनापि च्यवनकाले तदात्मिकेति । रूपकायिकानां तेजोवायुरसपरमाणुसंदोहात्मकं शरीरं रसस्पर्शशब्दित्रगुणात्मकं पृथ्वो-तोयगन्ध^ररसगणरहितम्, शुक्रमपि त्रिगुणात्मकम्, चित्तवासनापि च्यवनकाले तदा-त्मिका। षोडशानामित्यरूपकायिकानां शून्यधात्वात्मकं शरीरं चित्तवासनामात्रं शब्द-गणात्मकम्, शक्रमपि पथ्वोतोयतेजोवायुगन्धरसरूपस्पर्शगुणवर्जितम् । एषां पृथिव्यादीनां मुख्यगणेऽस्मिन् गौणमात्रो गुणोऽस्ति, अन्यथा समुदितगुणैविना नैकगुणात् संसारवासना भवति चतुर्णामित्येषु त्रिभवेषु नरकप्रेतितर्यङ्मनुष्यासुरचातुर्महाराजकायिकास्त्राय-स्त्रिशद्यामतुषितिनर्माणरतिपर्रानिमतवशर्वातनश्चैकादश कामाः । ब्रह्मकायिका ब्रह्मपूरोहिता महाब्रह्माणः परोत्ताभा अप्रमाणाभा आभास्वराः परोत्तशुभा अप्रमाणशुभाः शुभकुत्स्ना अनभ्रकाः पुण्यप्रसवा बृहत्फला अबुंहा अतपा सुदर्शना अकिनष्ठा पोडश-रूपाः। आकाशानन्त्यायतना विज्ञानानन्त्यायतना आकिञ्चन्यानन्त्यायतना नसंज्ञानासं-ज्ञानन्त्यायतनारचत्वारः । एवं कामरूपारूपाणां चतुर्णां च्यवनकाले शुक्रं यथानुक्रमेण पञ्चनतूरुयेकगुणात्मकं निस्सरति, चित्तवासनावशेन । नान्यथा संसारभ्रमणं भवति । अतः कारणाद् [198b] उक्तं भगवता तन्त्रराजे पश्चमपटले अध्यश्चाशत्तमेन वृत्तेन । तद्यथा --

भूवार्यग्निश्च वायु रसपरमरसौ चाणवः षट्प्रकारा गन्धाद्येकैकहीना विषयविरहिताश्चान्तिमा ज्ञानदृश्याः। कामा रूपास्त्वरूपा युमयमशशिनश्चान्तिमो धर्मधातुः सर्वाकाराः सदा तेऽच्यृतसुखसहजाधारभूताः समन्तात् ॥

⁽का०त०५.५८)

१ च. 'बातु' नास्ति । २. च. 'एवं' नास्ति । ३. च. 'स्व' नास्ति । ४. च. बान्ते । ५. मो. hKhoc Burtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivedin (पिक्रिपीयी पिक्रिपीयी पिक्रिपीय पिक्रिपीयी पिक्रिपीय पिक्रिपीयी पिक्रिपीय पिक्रिपीयी पिक्रिपीयी पिक्रिपीयी पिक्रिपीय पिक्रिपीयी पिक्रिपीय पिक्रिप

पटले, १२७ वली.]

T 447

तेन कारणेन सत्त्वाशयवशात् तथागतेन धर्मो देशित: --वैभाषिक: सौत्रान्तिको योगाचारो मध्यमकश्चेति। तेषु वैभाषिकमुपपत्यिङ्गकसत्त्वप्रकाशकं शास्त्रम्, सूत्रान्तमर्थप्रकाशकं शास्त्रम्, योगाचारं विज्ञानमात्रप्रकाशकं शास्त्रम्, मध्यमकं पारमाधिकतत्त्वप्रकाशकं शास्त्रं सत्त्वाशयवशादुक्तं भगवता दूरा(र)भव्यासन्नभव्य-चित्तात् । इह सत्त्वा अनादिकाले तीर्थिका देवभूतासुरधर्मरताः सर्वज्ञमार्गनष्टाश्चत्-वंर्णेकवर्णाश्रताः स्वर्गफलोपभोगाभिलापिणः कत्रीत्मवादिनः। तेषां शब्दवादिनो देवप्रेत-धर्माश्रिता ईश्वरवादिनश्चात्मवादिनश्च जातिवादिनश्चेति । म्लेच्छाऽसुरधर्माश्रिताः कर्तुवादिनो जीववादिनो जातिवादरहिताः। एषां म्लेच्छानाम्भयग्रहः—परमाण्-सन्दोहग्रहः, उपपत्यिङ्कपपुद्गलग्रहश्चेति । एषामभित्रायः —यदि परमाण्संदोहात्मके शरीरेऽन्तर्वर्त्युपपत्यिङ्गकपुद्रगलो नास्ति, परमाणुसन्दोहात्मके काये विनष्टे सत्यपरकाय-ग्रहणं कः करिष्यति ? तस्माद्पपादकपुद्गलोऽस्ति, तेन साधितेन स्वर्गफलं निर्वाणफलं च भवति । स्वर्गफलादपरं निर्वाणं नाम न स्यादिति तत्त्वपच्छाकाले तेषां स्वचित्ता-भित्रायमभिज्ञाय तत्त्वविदा भगवतोक्तम्—"अत्थि पुग्गलो भारवाहो ण णिच्चं भणामि णाणिच्चं भणामि" इति । एतदेव सत्यं भगवतो वचनातु । स्वय्नावस्थायां चित्तवासनापूद्गलो नानित्यो न नित्यो वक्तं शक्यते। अनेन तथागतवचनेन म्लेच्छ-धर्मं त्यक्त्वा बौद्धा वैभाषिका जाताः । पुनर्लोकोत्तरधर्मं देश्यमानं श्रुत्वा बोधिसत्त्वाना-मिह पदगलग्रहं परित्यज्य केचित सम्यक्संबद्धमार्गमाश्रिता इति ।

विमलप्रभायां

सौत्रान्तिकानां पूनः परमाणुसन्दोहात्मकग्रहोऽस्ति । एषामर्थवादिनामभिप्रायः-यद्याकाशकृहरान्तर्वित सचराचरं वस्तु नास्ति तदा त्रैलोक्यं नाम न स्यात्, संसारा-भावे स्गतिर्दर्गतिनं स्यात्, एवं बृद्धबोधिसत्त्वाश्च न स्युः, परमनिर्वाणमपि न स्यात्, भगवतोऽपि घातुसंदर्शनं न स्यात्, द्रव्यान्तर्वितनोऽर्थाभावादिति । एवं तत्त्वपुच्छाकाले तेषां चित्ताभित्रायं ज्ञात्वा भगवतोक्तम् — अस्ति परमाणुसन्दोहात्मकं चरमशरीरं द्वात्रिशनमहापूरुषलक्षणेर्यक्तम्, यस्य प्रसादेन सम्यक्सम्बद्धस्वं महापरिनिर्वाणं भवति, तदेव सत्यम्, भगवतो घातुसंदर्शनात् । एवं परमाणसन्दोहात्मकदारीरस्य प्रभावं श्रुत्वा जातिवादं शब्दवादमीश्वरवादं कर्तुवादं त्यक्तवा सीत्रान्तिका बीद्धा बभूवु: [199a], पुनर्वोधिसत्वानां छोकोत्तरवर्मदेशनां श्रुत्वा तदेवार्थप्रहं त्यक्त्वा सम्यक्सम्बुद्धमार्ग-माश्रिताः केचिद् वभूवृरिति ।

योगाचारिणां पुनर्विज्ञानग्रहोऽस्ति, तेषां विज्ञानवादिनामभिप्रायः—विज्ञानमात्रे त्रैधातुकं समस्तम् । पडङ्गाञ्जिकभागतः परमाणुर्नाम न स्यात् । यथा स्वप्नावस्थायां चित्तप्रतिभासमात्रेणार्थेनार्थिकया प्रवर्तते परमाणुद्रव्याभावेऽपि, तथा जाग्रदवस्थाया-मसदर्थेनार्थः प्रतिभासते, तिमिरिकामलोपहतचक्ष्मपः केशोण्ड्रककनकशास्त्रवत् । एवं तेषां तत्वपृच्छाकाळे चित्ताभिप्रायं ज्ञात्वा भगवतोक्तम् —विज्ञानमात्रं त्रैधातुकम्, विज्ञानादन्यो न संसारः, लोकिकविज्ञानिनरोधाद् भववीजस्यैव निरोधः, ततश्च निर्वाणमिति । एतदेव सत्यम्। अजडात् सुखदुःखप्रादुर्भावो भवति, न जडतः। सुखदुःखं नाम संसारः, तदमावो नाम निर्वाणिमिति । एवं भगवतो वचनं श्रुत्वा कर्त्रात्मवादं परित्यज्य योगा-चारिणो बौद्धा वभृतः।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of La

पुनर्बोधिसत्त्वानां लोकोत्तरधर्मदेशनां श्रुत्वा विज्ञानवादं परित्यच्य सम्यक्-सम्बद्धमार्गमाश्रिताः केचिद्वभृवः। तथा योगिनीतन्त्रेष्-"महामाया महारोद्रा भृतसंहार-कारिणी" इति । एवं सत्त्वाशयवशाद्भगवतो धमंदेशना । न सा भगवतः कण्ठतालुक-मधंदन्त्यौष्ठजनिता प्रादेशिकशब्देन, कस्मात्? अनन्तानन्तसत्त्वस्तत्वात्। इह प्रादेशिक-वाक्येन यगपदनन्तानन्तसत्त्वानां स्वस्वभाषान्तरेण घमंदेशना कत् न शक्यतेऽनन्त-कल्पैरपि । तस्मात् सत्त्वाशयाभि प्रायेण भगवतो वाक्यं न भवति । सत्त्वाशयवशाद भगवानिप संग्रहो भवति, ग्रहग्रहणात् संसारी भवति । तस्मात् सत्त्वानां जन्मान्तर-वासनाबलेन स्वप्नेऽनुत्पन्नशरोरवद् भगवतः शरीरप्रतिभासो वचनप्रतिभासश्च भवति । यथा स्वप्ने शिष्या उपाध्यायं दृष्ट्वा सन्देहार्थं पुच्छन्ति, उपाध्यायोऽपि शिष्याणां सन्देहार्थं निःसन्देहं करोति, तत्र नोपाध्यायः शिष्याणां चित्तवासनाप्रतिभासः। एवं पुण्यवतां सत्त्वानां स्वचित्तप्रतिभासो न भगवानुत्पन्नो न निरुद्ध इति । अनेन कारणेन चतुर्णा बौद्धानां 'चित्तवासनाबलेन भगवता पुद्गलवादिनामनित्यपुद्गलभावनोक्ता, अर्थवादिनां पृथिव्यादिकृत्स्नभावना, विज्ञानवादिनां विज्ञप्तिमात्रसमाधिः, माध्यमिकानां स्वप्नोपमाक्षराद्वयज्ञानभावना । एवं पूद्गलनैरात्म्यं धर्मनैरात्म्यमिति । वैभाषिक-सौत्रान्तिकयोगाचारिणां सोपधिनिर्वाणम्, माध्यमिकानाम्पिधरहितमप्रतिष्ठित-निर्वाणम्, हेतुफलनिरोधात्, सुषुप्तजाग्रदवस्थारहितं स्वप्नतुर्योपमिति । उनतं भगवता अप्रत्यवेक्षणाज्ञानस्तवे [एका]दशमश्लोकेन । तद्यथा-

> सर्वोपधिविनिर्मक्तो व्योमवर्त्मनि सुस्थितः। महाचिन्तामणिधरः सर्वरत्नोत्तमो विभुः॥ इति।

(ना॰ सं॰ ८.११)

अतः पक्षप्रहरहितं निरुपिशेषनिर्वाणं [199b] सम्यक्सम्बद्धस्येति ।

नत् स्वप्नावस्थायां जडधर्मेविनाऽजडप्रतिभासो दृश्यते, चित्तवासनावशेन जाग्रदवस्थायां पूनर्जंडधर्मैविनाऽजडप्रतिभासो न दृश्यते, दर्पणे प्रतिबिम्बवत् । तस्या-मवस्थायां योगिनो भावनाप्रतिभासोऽपि द्विषा प्रतिभासते—जलचन्द्रवत् सति धर्मिणि धर्माः। तस्यामवस्थायां योगी जडधर्मेविना स्वप्नतृत्यानजडधर्मानकित्पताननृत्यन्ना-नशन्यानचित्तानाकाशे पश्यति, एतदेवाप्रसिद्धम् । कस्मात् ? सति घर्मिणि घर्मविचारात् । मायोपमास्तथागतेनोक्ताः । न जडधर्मेविनाऽजडप्रतिभासः समाधिना दृश्यते, इह केषाञ्चिदभिप्रायो भविष्यति । तस्मादुच्यते — इह हि यद्वक्तव्यं जडिचत्तवासनाभि-रतैर्जाग्रदवस्थायां जडधर्मेविनाऽजडप्रतिभासो न दृश्यते, तन्न, कस्मात् ? प्रतिसेनादर्शे जडधर्मे विनाऽजडप्रतिभासदर्गनात् । यथा कुमारी प्रतिसेनादर्शे मन्त्रदेवताऽधिष्ठान-बलेनातीतानागतप्रत्युत्यन्नधर्माणामजडप्रतिभासं पश्यति, न च तेऽतीतवर्तमानानागत-

१. भो. bSam Pahi dBan Gis (अभित्रायवशेन) । २. भो. 'वित्त'नास्ति ।

३. च. कृत्यानुष्ठान ।

Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

1.5 cd

पटले, १२७ वलो.]

(A) False opens

20

T448 20

जडधम् आदशाभिम्खाः सन्ति, न च ते जडधर्मेविनाऽऽदर्शेऽजडप्रतिभासाभावाः, न च ते धर्माः कुमारिकया चिन्तिताः। एवं योगी स्वचित्ताधिष्ठानबळेनाकाशघातौ जडत्रैयातुकं विनाऽजडप्रतिभासं पश्यतीति । उक्तं भगवता साधनापटले 'ऽप्टनव-त्युत्तरशततमेन वृत्तेन-

मुद्रा मायानुरूपा मनिस च गगने रूपवदृर्पणे च त्रैलोक्यं भासयन्ती तडिद[्]नलिनभानेकरश्मीन् स्फूरन्ती। बाह्ये देहेब्बभिन्ना विषयविरहिताऽऽभासमात्राऽम्बरस्था चित्तं चेतोमयाऽऽलिङ्गयति च जगतोऽनेकरूपस्य सैका॥ इति। (का० त० ४.१९८)

अतो भगवतो वचनाज्जडधर्मीवनाऽजडधर्मप्रतिभासं योगी पश्यतीति ।

नन् कुमारिका प्रतिसेनादशें यत्प्रतिभासं पश्यति तदाचार्यप्रसादः, कस्मात ? कमारिकायामाचार्येण मन्त्रदेवताऽधिष्ठानस्य कृतत्वात् । इह कुमारिकायामाचार्येण मन्त्रदेवताधिष्ठानं कृतम्, तेनाधिष्ठानवशेन कुमारिका प्रतिसेनादशें प्रतिभासं पश्यित, न मन्त्रदेवताधिष्ठानरहिता। तस्माद् गुरोराज्ञाप्रसादेन योगी त्रेधातुकं प्रतिभासमात्र-माकाशधातौ पश्यति, इह कस्यचिदाज्ञा³बद्धस्याभिप्रायो भविष्यति, तस्माद्रच्यते--इह हि यद्वक्तव्यं मुर्खेर्गरोराज्ञाप्रसादेन कुमारिकायां मन्त्रदेवताधिष्ठानं भवति, तन्त, कस्मात ? आचार्यस्य प्रतिसेनादर्शे प्रतिभासाभावात् । इह यद्याचार्याजाप्रसादेन मन्त्रदेवताधिष्ठानं कुमारिकायां भवति, तदाऽऽचार्यस्यापि तदेवाधिष्ठानं किन्न भवति, येन कुमारिकायामधिष्ठानं कृत्वाऽतीतानागतवर्तमानपरोक्षज्ञानं पुच्छेत्। यदि तस्यैवाधिष्ठानमस्ति तदा प्रतिसेनादर्शे तत्र प्रतिभासं दृष्ट्वा स्वयमेव कथयति, न चैवम् । तस्मादाचार्यप्रसादेन कमारिकायां मन्त्रदेवताधिष्ठानं वक्तं न शक्यते, एवं योगिनोऽपीति । [2002] किन्तु कुमारिकायां मन्त्रदेवताघिष्टानं भवति, तत्कारणमस्ति, येन कारणेन कुमारिकायां द्वीन्द्रियसंघर्षणाच्च्युतिसुखोपलब्धिर्नास्ति तेन कारणेना-घिष्ठानं भवति । लोकेऽपि प्रसिद्धं "कुमारीसुरतं यथा" । तेन कारणेन कुमारी मन्त्रदेवताधिष्ठानबलेन प्रतिसेनादशें प्रतिभासं पश्यति, नान्या युवती द्वीन्द्रिय-सुखोपलब्येति । कुमारदेवताधिष्ठाने युवा देवताधिष्ठानं युवती युवापि पश्यतीति । एवं योगिनोऽपि परमाक्षरमुखाभ्यासवशाद् बाह्यच्युतिसुखपरित्यागात् कुमारिका-वस्यान्तरगता अतोतानागतवर्तमानं पश्यन्ति, स्वचित्ताधिष्ठानवलेन, न गुरोराज्ञा-प्रसादेनेति ।

नतु परमाक्षरसुखाभ्यासं विनाज्यहाचारिणोऽप्यनेके कैवल्यं 'देशयन्ति, तस्माद ब्रह्मचर्यं विना मन्त्रदेवताधिष्ठानं भवति । अन्यया कथं ते केवल्यं "देशयन्ति [इति]

शिवीभवति, विज्ञानं वच्ची वा। एवं सर्वे क्षुद्रमन्त्रदेवताऽधिष्ठानक्रमा माराणां परमाक्षरज्ञानाभिरतैयोगिभिर्विचारणीयाः। एभिः क्षुद्रमन्त्राधिष्ठानैर्वेष्ठावेशो न १. च. द्विशततमेन । २. भो. Dri Med (अम्ल) । ३. भो. Chags Pa (अपक्रत) । ४- Соитему: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallation । अस्ति प्राणिक प्र

madits

कस्यचिदभिष्रायो भविष्यति, तस्माद्च्यते —इह हि यद्च्यते बालेरब्रह्मचारिणां मन्त्र-देवताधिष्ठानं भवति, तन्न, कस्मात् ? ज्योतिषाभ्यासवशेनार्थसंदर्शनात् । इह हि यत् केवल्यं ज्ञानं तदेव ज्योतिषाङ्गं सर्वसत्त्वसाधारणमुपदेशवशाद् गणितवशाज्ज्ञायते नष्टजातकादिकम्, यथाऽन्यैः कर्णपिशाचिका साधिता सा कथयति, अन्यैः क्षेत्रपालाः साधितास्ते कथयन्ति, यिकिञ्चिच्चित्ते स्फ्रित तेपाम् । अन्यैर्मातरः साधिता आवेशिताः परकाये प्रविश्य कथयन्ति, अन्यैर्नागराजाः साधितास्ते कालदृष्टाः काये प्रविश्य कथयन्ति, अन्येश्चेटकाः साधितास्ते साधकानां वाक्येन सत्त्वकाये प्रविश्य सत्त्वकायं विडम्बयन्ति, अन्यैर्डाकिनीराक्षसादयः साधितास्ते सत्वानां रक्तं पिबन्ति, अन्यैर्भताः साधितास्ते सत्त्वानां काये प्रविश्य ध्वननकम्पनादिकं कृत्वा गच्छन्ति, अन्यैविधन-विनायकाः साधितास्ते सत्त्वानां विध्नानि कूर्वन्ति, अन्यैः सौम्यदेवताः साधितास्ते सत्त्वानां रक्षां कुर्वन्ति, अन्यैः कामदेवताः साधितास्ते सत्त्वानां कामोन्मादं शक्रच्यति कुर्वन्ति, अन्येरन्या दृष्टदेवताः साधिताः केचित् स्तम्भनं कुर्वन्ति केचिन्मोहनं केचि-दुच्चाटनं केचिद्विद्वेषणं केचिन्मारणं केचिद् वृक्षलिङ्गोत्पाटनं च कुर्वन्ति, एव-मादीन्यनेकानि क्षुद्रोपद्रवकर्माण्यदृब्टरूपेण कूर्वन्ति । यैरमी दृब्टदेवता मारकायिकाः साधितास्ते चैभिः क्षद्रपरिज्ञानैः सद्यःप्रत्ययकारकैर्मर्खाणां गुरवो भवन्ति, धर्मदेशनां कूर्वन्ति । ज्ञानं प्रत्ययसारं कामविषनिरञ्जनानाम्, यस्य कामाज्ञा नास्ति निरञ्जन-विषाज्ञा नास्ति निरञ्जन-आणवशास्भवशाक्तेयप्रत्यक्षपरोक्षवेधाजा नास्ति, स पण्डितोऽपि पशः। सर्वसत्त्वोपकाररतो भिक्षां भ्रमति, एकाको विहरत्यसहायः स्वार्थभ्रष्टः । लोकेऽपि प्रसिद्धम्—"स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता" । तस्मादियं पारमैश्वर्याज्ञा भक्तिमुक्तिफलप्रदा पारम्पर्यक्रमेणागता गुरो: [200b] प्रसादेन लभ्यत इति । उक्तं परमेश्वरेण सर्वज्ञेन वा-

> न गुरु:(रो:) सद्शी माता न गुरु:(रो:) सद्शः पिता। यो ददाति गुरुर्दीक्षां शिष्याय शतयोजनैः। भक्तिमुक्तिप्रदात्री या सा दीक्षा मोक्षदायिका॥ इति।

South intika

यस्तारयति महाघोरं संसारोदधिद्स्तरम् ॥ इति ।

एवमनेकप्रकारैस्तान्महामूर्खान् महालोभाभिभूतान् क्षुद्रपरिज्ञानेन बोधयित्वा

तेषामनुग्रहं करोति, तां चाज्ञां समपंयेत्, तेऽपि महासन्तुष्टा भवन्ति वयं गुरुप्रसादेन

मुक्ताः। इदानीं सर्वे कुर्मः, अशुचि भक्षयामः, अवर्णीभिगमनं कुर्मः, प्राणातिपातं

मृषावादमदत्तादानं सुरापानादिकं कुमं। एवमनेकप्रकाराणि मारकमणीिह सिद्धवर्षं कुर्वन्ति । न च तेषां पारमैश्वर्याज्ञाप्रसादेन शरीरसिद्धिभवति, न चातीतानागतवर्तमानं

विदन्ति, अन्ते मरणं गच्छन्ति, शरीरं विह्नना दह्यते, श्वखगादिभिर्वा भुज्यते । न जीवः

वज्रज्वासाकरालाक्षो वज्रज्वालाशिरोस्हः। वज्रावेशो महावेशः शताक्षो वज्रलोचनः॥ इति। (ना० सं० ७.७)

तथा तन्त्रराजेऽप्यभिषेकपटले ैएकोननवितिसमेन वृत्तेनोक्तं कायावेशादिकम्,

तद्यथा-

10

T 449 15

20

कायावेशेन योगी ^९प्रकृतिगुणवशात् कायकृत्यं करोति वागावेशेन वादी त्रिभुवनविजयी देवनागास्राणाम्। चित्तावेशेन सर्वं परहृदयगतं ज्ञायते भृतभव्यं ैज्ञानावेशेन बुद्धो भवति गृरुग्रुश्चिद्धमानेकशास्ता ॥ इति । (का० त० ३.८९)

वतो वज्रावेशाभावात् क्षुद्रदेवतावेशा वृद्धत्वफलदायका न भवन्तीति ।

तिष्ठत् तावद् बृद्धत्वं त्रैलोक्याघिपतित्वं नाम, एभिः प्रादेशिकावेशैः खञ्जरस-रसायनादयोऽपि न सिद्धवन्ति, कस्मात् ? पारमैश्वर्याज्ञादायकस्य गुरोः परद्रव्यलुण्ठ-कत्वात् । इह हि यदि गुरोराज्ञाप्रसादेन महामुर्खाणां त्रैलोक्यराज्यं सर्वज्ञपदं भवतीह जन्मनि, तदा किमथं गुरोदीरिद्रबदु:खमस्ति, रससिद्धपदमपि नास्ति । एवमनेक-प्रकारैविचार्यमाणं जन्मान्तरपृष्यज्ञानसंभारद्वयरहितं सर्वज्ञपदं नास्ति, तस्मात् पुण्यज्ञानसंभारार्थं सत्त्वोपकारः कर्तव्यः। उक्तं भगवता पञ्चमपटले 'षटपष्टितमेन वत्तेन-

> सत्त्वा बुद्धा न बुद्धस्त्वपर इह महान् विद्यते लोकधाती तेषामाराधनेन त्वपरिमितभविरुच्छद्यते निविकल्पात द्रोहं कुर्वन् हि योगी व्रजित हि नरकं रौरवाद्यं महान्तं तस्माच्चित्ते विशुद्धेऽप्यवुधवुधजनानां विरुद्धं न कूर्यात् ॥ इति । (का० त० ५.६६)

अतः सत्त्वोपकारः पूण्यसंभारार्थं कर्तव्यः, ज्ञानसम्भारार्थं परमाक्षरज्ञान[2014]-भावना कर्तव्या । सत्त्वार्थं विना पृण्यसम्भारो न भवति, परमाक्षरज्ञानभावनया विना ज्ञानसम्भारक्ष्वेति तथागतहृदयम् । उक्तं भगवता तन्त्रराजे पञ्चमपटले द्वासप्ततितमेन वृत्तेन। तद्यथा-

> सत्त्वानां पापचित्तं भवति नरपतेऽघिष्ठितं मारकायैः पुण्यज्ञानानुरक्तं सुखद्भपि सदाघिष्ठितं वोधिसत्त्वै:।

१. च. अष्टाशीति । २. च. त्रिभुवननिलये । ३. च. वच्चा । ४. च. त्रिदशनर । ५. च. पष्टि । ६. च. मिति ।

१. च. परमसुखबद्यात् । २. च. राज्ञा । ३. च. राज्ञया । ४. च. सञ्चार । Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

पटले, १२७ क्लो.] परमाक्षरज्ञानसिद्धिनीम महोदेशः

32

निर्वाणं यान्ति यस्मात् सुख समयवशात् क्लेशमारान्निहत्य तस्मात् कूर्वन्ति माराः प्रतिदिनसमये नैकविष्नानि तेषाम् ॥ इति । (का॰ त॰ ५.७२)

अतो भगवतो वचनाद् योगिना परमाक्षरमहामद्रायोगेन स्वचित्तसाधनं कर्तव्यं मोक्षार्थम्, अन्यथा गुर्वाज्ञया मोक्षो न भवति । कस्मात् ? भगवतो मार्गोपदेशकत्वात् ।

> व्याज्ञासंचारिणो धर्माः प्राणिनां मोक्षदाः क्वचित्। मार्गोपदेशको येन ³आज्ञया मोक्षदो जिन:। ग्रोराज्ञाप्रसादेन मृक्तिः स्याद्यदि देहिनाम्। तदा कारुणिको मोक्षं देशयेन्न समाधिना॥

तस्मान्मोक्षार्थं बाह्यदेवतामन्त्रसाधनं न लौकिकसिद्धिसाधनार्थं योगिना कर्तव्यम । इह बाह्यदेवताः क्षद्रोपद्रवकारिणः साधिता अपि साधकस्य छिद्रान्वेषिणः, तेषां बलेन साधकोऽन्येषां प्रचण्डदेवतानां क्षुद्रोपद्रवं करोति, तैर्गृहीतस्य साधकस्य ते साधिता दृष्ट-देवताः शत्रवो भवन्ति, मृत्युकाले न किञ्चित् कथयन्ति । साधकोऽप्यसमाधिना मृतो नरकं याति । अथ ते साघिताः कि दास्यन्ति दरिद्रनरा इव । साधिता ब्रवन्ति -हे साधक ! तव नियमं सव कुमं: । यदि साधको ब्रुते युष्माभी राजा बन्धयित्वाऽत्रानीय-ताम्, तदा परिहारं कूर्वन्ति-अत्र विषये वयं न शक्ताः । एवं क्षुद्रदेवताः साधिताः सन्तः सर्वज्ञविषये परिहारं कूर्वन्ति । तस्मात् सर्वज्ञपदाभिलाषिणां दृष्टदेवतासाधनेन कि प्रयोजनम्, गुर्वाज्ञया च भसंसारधर्मस्वरूपिण्या । उक्तं भगवता मुलतन्त्रे-

> शिवतत्त्वं कामतत्त्वं विषतत्त्वं यथाऽऽज्ञया सञ्चारि(र)णं भवेत् पुंसां बुद्धतत्त्वं तथा न च ॥ रागादिमलिनं चित्तं क्षरं संसारकारणम्। विशुद्धं तद्वियोगेन शुद्धं प्रकृतिनिर्मलम् ॥ नापनेयमतः किञ्चित् क्षेप्तव्यं किञ्चिदाज्ञया। न दातव्यं न हर्तव्यं शुद्धतत्त्वं महाक्षरम्॥ दाता हर्ता गुरुनीस्ति शुद्धतत्त्वस्य सर्वतः। पुण्यसम्भारहीनानां सर्वज्ञोऽपि प्रभुः स्वयम् ॥ परोपकारतः पुंसां पुण्यसम्भार उत्तमः। बुद्धत्वमुत्तमम् ॥ उत्तमाज्ज्ञानसंभारस्ताभ्यां शिवतत्त्वे कामतत्त्वे विषतत्त्वे त्रिधा भवेत्। वेघो गुर्वाज्ञया पंसां परमाक्षरसुखं न च॥

30

25

T 450

10

आणवः शाम्भवो वेघः शाक्तेयस्वात्त्रया भवेत्। चित्तवाक्कायवेघेन निद्रास्वप्नजायतः॥ शिवतत्त्वमिति स्थातं मूर्खाणामात्रया गुरोः। चित्तवाक्कायसंक्षोभश्च्युतिः शुक्रस्य देहिनाम्॥ गुरोराजाप्रसादेन कामतत्त्वमिति स्मृतम्। विषं निर्विषमित्याहुनं विषं विषमेव च॥ स्थावरं जङ्गमं कृत्यं गुरोराज्ञाप्रसादतः। विषतत्त्वमिति स्था[201b]तं सद्यःप्रत्ययकारकम्॥ जितन्त्वं नाक्षरं सौस्यं संभवेत् सर्वदेहिनाम्। गरोराज्ञाप्रसादेन तस्मात् तद्भावयेद् व्रती॥

अतो भगवतो वचनात् परमाक्षरज्ञानमहामुद्राभावना कर्तव्या मोक्षायिनेति ।

न्तु यद्यच्युतशीलेन विना पश्चाभिज्ञा न भवन्ति, तदा धर्मोद्गतादिवोधिसत्त्वानां विश्वशिद्याद्विभूषिणां कथं पश्चाभिज्ञा स्यूरिति केपाध्विद्यिभ्रायो भविष्यित्, तस्मादुच्यते—इह हि यद्वत्त्व्यं वालजनैवीधिसत्त्वानां भ्रद्वाव्यं नास्ति, तन्न, कस्मात् ? द्विधा वोधिचित्तच्यवनात् । इह सत्त्वानां वोधिचित्तच्यवनं दिधा—एकं शुभाशुभकर्मवशात्, दितीयं चित्तविद्यात्वात् । तत्र यत् कर्मवशाच्च्यवनं तत् संसारभ्रमणार्थस्, यिच्यत्तविद्यां चित्तविद्यात्वात् । तत्र यत् कर्मवशाच्च्यवनं तत् संसारभ्रमणार्थस्, यिच्यत्वविद्यात्वानां नष्टमार्गणां मार्गदर्शकेन विना मार्गदर्श(गम)नं न स्यात्, तथा संसार प्रपिततानां नष्टमार्गणां मार्गदर्शकेन विना मार्गयमं । यदि मार्गदर्शकेन सह वर्द्यनं नास्ति वयापि मार्गाभावः । अय मार्गदर्शकेन विना मार्गमनं । यदि मार्गदर्शकेन सह वर्द्यनं नास्ति वयापि मार्गाभावः। अय मार्गदर्शकेन विना मार्गमनं । यदि मार्गदर्शकेन सह वर्द्यनं नास्ति वयापि मार्गाभावः। अय मार्गदर्शकेन विना मार्गममनं । यदि नाम्तास्त्य स्वात्ताः अय मार्गदर्शकेन विना मार्गमानः । एयां नष्टमार्गणां सन्त्रासं दृष्ट्वा नानष्टमार्गम्य सन्त्रासं भवित । एवं वोधिसत्त्वानां एवां नष्टमार्गणां सन्त्रासं प्रवेशः. न कर्मविपाकतः। यदि वोधिसत्त्वानां दश्मुमीस्वराणां दशपारमितानिर्यातानां दश्चिधात्राप्तानां कर्मविपाकेन संसारभ्रमणं तदा सत्त्वानां मोक्षो नास्ति । नाज्ञातमार्गणान्जातमार्गणां मार्गोपदेशः कथ्यते, यथान्धेनान्यस्य । तस्मादोधिसत्त्वानां जन्मप्रहणं सत्वार्थम् । उत्तते व्यामकायिकर्ममं लोकनायस्य सत्त्वारं प्रति नरकप्रवेशकाले—

ये मुक्ता भववन्धनैरिप भवं गृह्धित्त सत्त्वाधिनः काळात् कर्मफळं त्यजन्ति नहि तच्छूत्यार्थसंदेशकाः। संज्ञानानछदम्बचित्तकळुषाः सम्यक् कृपाद्रीः सदा तान् सत्त्वार्थरतानतवर्यचरितान् बुद्धान् नमामो वयम् ॥ इति ।

र. मो. Sems Pa Chen Po rNams (महासस्वानां) इत्यिषकम् । २. मो. Yan Dag Par mThon Ba (संदर्शनं) । ३. मो. bDud Kyi Ris (मारकाविक:)।

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

एवमनेकगुणवर्ता दरम्बन्छेशावरणानां सत्त्वार्थाक्र्यात्मकं लवमात्रं क्लेशावरणं जन्मग्रहणार्थम्, अन्यया सत्त्वानां मार्गदेशना न स्यात्। मार्गेण विनाऽनादिसंसारात् सत्त्वानां निर्मामो न भवति, बोधिसत्त्वसंसर्गाभावादिति है इह बोधिसत्त्वैः प्राग्वोधित्तत्तं सुदृढीकृतम्। अस्य बोधित्तित्तस्य द्विधा बन्धः—प्रज्ञाविरागेण, प्रज्ञारागेण च। यया सूतकवन्ध एकः स्वेदसंन्यासयोगेन, द्वितीयो लोहादिजारणागिनिव्हसंयोगेन। तयोर्थः स्वेदसंन्यासयोगेन बद्धः सुतः, स तीव्राग्निना ध्मातः किञ्चित्तत्त्रप्रणागिन वद्धः, स कदावित्तीव्राग्निना ध्मातः सन्त प्रपलायित। यः सर्वलेहरुत्कारणातीव्राग्निना बद्धः, स कदावित्तीव्राग्निना ध्मातः सन्त प्रपलायिति, तस्येव ग्रासजारणान्तरविना[2024]वस्थान्तरं भवति। तथ्या—

धूमिंदचिटिविटिश्चैव मण्डूकप्लुतिरेव च। कम्पो निष्कम्पता चैव पञ्चावस्था रसस्य तु॥

तथा भावनाभ्यासवशेन बोधिचित्तस्यावस्थान्तरं भवति, मृदुमध्याधिमात्रा-घिमात्राधिमात्रप्रभेदतः । यः स्वेदसंन्यासयोगेन बन्धः स बोधिनतस्य बन्धः, तदनित्यपुदुगलभावनाबलेन पृथिव्यादिकृत्स्नसाक्षात्करणेन प्रज्ञाविरागेणेति । यथा स्वेदसंन्यासयोगेऽपि रसस्य लोहग्रासभक्षणं कालान्तरवशादस्ति, ग्रासभक्षणेना-वस्यान्तरं भवति, तथाऽनित्यपुद्गलभावनया पृथिव्यादिकृत्स्नभावनया जडस्कन्ध-धात्वायतनक्षयादवस्थान्तरं भवति । अवस्थान्तरं नाम भूमिलाभः। अत्र द्विधा भूमिः -- बीतरागभूमिः, सम्यक्सम्बद्धभूमिरिति । भूमिवशाद् ऋदिरेकाकार-ऋद्धिः सर्वाकारऋद्धिश्च । एवं पञ्चाभिज्ञाः षडभिज्ञाश्च । तथा अर्थसंख्यादर्शनं सर्वार्थसंख्यादर्शनं ³च । तथा भाषा सत्त्वसंख्यात्मिका सर्वसत्त्वसंख्यात्मिका च । तथा धर्मदेशना सत्त्वसंस्थालक्षणा सर्वसत्त्वसंस्थारतलक्षणा च । तथा निर्वाणं सोपधिशेषं निरुपधिशेषमिति । तथा पुद्गलनेरात्म्यं धर्मनेरात्म्यम् । तथा चतुरार्यसत्यभावना सर्वधर्माभावस्वभावशून्यतासमाधिरिति । एवं भूमिविशेषाद् द्विघा सत्त्वार्थिकया भवति । इह प्रथमभूमिलाभादेकलोकधानुपर्यन्तमदृष्टार्थसंद-र्शनम्, द्वितोयभूमिलाभाद् दशदिग्द्वितोयलोकघातुपर्यन्तम्, तृतीयभूमिलाभाद् दशदिक्चतुर्यलोकघातुपर्यन्तम्, चतुर्यभूमिलाभाइशदिगष्टलोकघातुर्यन्तम्, पश्चमी-षष्टीभमिलाभाद् दशदिग्द्वात्रिश-भूमिलाभाद्शदिक्षोडशलोकघातुपर्यन्तम्, ल्लोकघातुपर्यन्तम्, सप्तमोभूमिलाभाइशदिक्चतुःपष्टिलोकघातुपर्यन्तम्, अष्टमीभूमिन नवमीभूमिलाभाहशदिक्-लाभाइशदिगष्टाविशदिधकशतलोकधातुपर्यन्तम्, षट्पञ्चाशदिधिकशतद्वयलोकधातुपर्यन्तम्, दशमीभूमिलाभाइशदिग्द्वादशाधिकपञ्चशत-एकादशभूमिलाभादृशदिक्चतुर्विशत्यधिकसहस्रलोकधातुपर्यन्तं लोकधातुपर्यन्तम्, परोक्षार्थसंदर्शनमिति । एवं द्विसाहस्रत्रिसाहस्रलोकघातवः संस्यालक्षणाः। एकसाहस्र नाम सहालोकधातुर्मध्यत ऊर्ध्वाघ एकेक सहस्रम्, अध ऊर्ध्व पूर्वापरं वामदक्षिण नैकांत्ये-शानं वायव्यान्नेयमिति । एवं द्वित्रिसाहलमिति । ततो महासाहस्रं नाम महासंस्येयलोक-

१. मो. 'किञ्चित्' नास्ति । २. ३. ४. ५. च. 'च' नास्ति ।

T 451

A 85.1.21-24.

घातवः। तेष्वदृष्टार्थसंदर्शनं द्वादशभूमिलाभात् सम्यक्संबुद्धस्य भवति, न वीतरागाणाम् । एषां तथागतभूमीनां लाभो महाक्षरसुंबक्षणेः प्रज्ञारागोद्भवैः । प्रथमो भूमिलाभोऽष्टादश-शतेरच्यतलक्षणेलंब्यैः। अनया संख्यया द्वादशभूमिपर्यन्तं षट्शताधिकैकविश[202b]-त्सहस्रेरक्षरक्षणेद्वदिशभूमिलाभः, द्वादशाङ्गिनिरोधं यावत् । द्वादशलग्निनरोधाद् द्वादश-राशिनिरोधः, द्वादशमासिनरोधात् पष्टयत्तरशतत्रयदिनानां निरोधः, पष्टयुत्तरशतत्रय-दिननिरोधात् षट्शताधिकैकविंशत्सहस्रघटिकानिरोधः । एवं "यथा बाह्ये तथा शरीरे घटिकासंख्याश्वासानां निरोधः, श्वासनिरोधात् कायनिरोधो बोधिचित्ता-क्षरक्षणैरिति । यथा सुतको जारितो लोहरत्नानि भक्षयित्वा तेषां महारागं गृहीत्वा तिष्ठति, न जडधातुत्वम् । तेन महारागेण येषु लोहेषु स्पर्शं करोति तानि लोहानि कालिकारहितानि भवन्ति, पाषाणा रत्नानि भवन्ति, तथा बोधिचित्तं भावितं स्कन्धधात्वायतनानि सत्राणानि भक्षयित्वा तेषां महारागं गृहीत्वा तिष्ठति, न जड-त्वम् । तेन रागेण पूण्यवशाद् येषु सत्त्वेष्विष्ठानं करोति तेष्विभिज्ञा भवति, न सम्य-क्संबृद्धत्वम्, यथा रसविद्धानां लोहानां कालिकाभावो न जडधातुत्वाभावः । जडधातुत्वा-भावस्तदा भविष्यति यदा जारितानां लोहानां रसेन सहैकत्वं भविष्यति । अतः परस्पर-संयोगाद् धातूनां धातूत्वं नास्ति, सूतकस्य सूतत्वं नास्ति, पूर्वस्वभावपरित्यागात् । एवं कायधातुनां चित्तेन सहैकीभृतानां धातुत्वं नास्ति, चित्तस्य चित्तत्वं नास्ति, प्राक्संसारवासनाभावात् । अत उक्तं भगवता—"अस्ति तिचत्तं यिचत्तमचित्तम्" (अ॰ स॰, प॰३) इति । एवमनेनोक्तकमेणाष्टभूमीश्वराणामोश्वरादिदेवानां पञ्चाभिज्ञा वेदितव्या बोधिसत्त्वानामपि । ऋषीणां विश्वष्टादीनां पूनः पञ्चाभिज्ञा नास्ति, कस्मात् ? रामायणभारतप्रामाण्यात् । इह रामायणे श्रूयते वाल्मीकवाक्ये विशयदत्ते लग्ने रामदेवेन सीतापाणिग्रहणं कृतम् । तेन विशिष्ठदत्तलग्नप्रसादेन रामो राज्यभ्रष्टो वनं प्रविष्टः, सीतापि सदा दुःखवती । तथाऽप्युक्तम्-

> पूर्वकर्मफलं भोग्यं; ग्रहनक्षत्रे निर्थके। विशिष्टदत्तलग्नेन जानकी दुःखभाजनम् ॥ इति ।

तथा भारते व्यासवाक्ये श्रयते कौरवपाण्डवानां येऽमावस्यायां कुरक्षेत्रे प्रवेशं करिष्यन्ति ते विजयिनो भविष्यन्ति, एतद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवास्त्रयोदश्यां प्रविष्टाः, कौरवा अमावस्यायां प्रविष्टाः । तेषु ये त्रयोदश्यां प्रविष्टास्ते विजयिनो जाताः, येऽमावस्यायां प्रविष्टास्ते मरणमुपगताः। अय दुष्टर्षीणां वाक्यमिह् ब्राह्मणवाक्येन त्रयोदश्याममावासी जाता, चन्द्रसूर्येकयोगादिति। तदेव न घटयति, कस्मात्? चन्द्रस्य पञ्चदशकलाक्षयाभावात् । इह त्रयोदश्यां चन्द्रस्य पञ्चदशकलाक्षयो न भवति । येन वारेण येन नक्षत्रेण त्रयोदशी जाता, तेन वारेण तेन नक्षत्रेण नामावासी कुत्र-चिद् भवेदिति । अतः कारणात् तेषां ज्योतिषासिमतं न पद्याभिज्ञाभिरर्थसंदर्शनम् । तथा पुराणधर्मा मिथ्यापापमतीनाम् । तद्यथोक्तम् -

"क्षीर[203₄]समुद्रमथने वलिराजकाले, उच्चेःश्रवेरावण(त)**कोस्तुभपारि**-

वाक्यम् । यद्येवं तदा अन्धकस्यैव राज्ये तिथिवरिो मासं नक्षत्रमृतुनं स्यात्, चन्द्रादित्योदयास्तमनाभावात् । समुद्रे स्थितस्य चन्द्रस्य नक्षत्रभोगाभावात् प्रतिपदादिकलाग्रहणं न स्यात्, आदित्यस्याप्यदयास्तङ्गमनं मङ्गलादिग्रहाणां सप्तवारपरिभोगश्च न स्यात् । एवं हि हिरण्यकश्यपस्य राज्ये वाराद्यभावः । तत्र कुळे कालवशाद् बलिर्जातः। ततः समुद्रो मथितो देवासुरीरिति। अथ नायं चन्द्रः, स ईश्वरमोलिचन्द्रः, तदेव वचनं न घटयति, तस्यैवेन्दोरभिलाषादन्थको मरणमपगतः। कालक्टं विनिर्गतं तदेवासत्यम्, प्रागीश्वरो नीलकण्ठो न, बलिराजकाले कालक्टविष-भक्षणात् । तथा ऐरावणो(तो)च्चैःश्रवालक्ष्मीकौस्तुभामृतानि विनिर्गतानि, तदेवासत्यम्, येनान्धकयुद्धे सर्वे देवाः स्वस्विचह्नाः स्वस्ववाहनस्या इति । अथ दुष्टर्षीणां वाक्यं दुर्वाससः शापेनेन्द्रस्यद्धिः समुद्रं प्रविष्टा, तदेवासत्यम्, नेन्द्रस्य शापेनान्यदेवानामृद्धि-हानिरिति । एवमुक्तक्रमेण पुराणधर्माः सर्वे वृथाः स्युः । उक्तं भगवता पञ्चमपटले द्वयशीत्यधिकशततमेन वृत्तेन पुराणधर्मा वृथा इति । तद्यथा -

> लक्ष्मीरुच्चैःश्रवादवः स्रतरुगजपत्यप्सरःकौस्त्भेन्द्-पीयुषाण्यव्धिमथने यदि दिवि गगने स्युर्वले राज्यकाले। चन्द्राभावे न वारस्तिथय ऋतुगणश्चान्धकस्यैव राज्ये सोऽपोशार्घेन्द्लोभान्मरणम्पगतस्तस्य पश्चाद्वलिः सः॥

इत्यनया यक्त्या विचार्यमाणानि लोकपुराणान्यनृतानीति।

अथ ब्रह्मर्थीणां दुष्टवचनम्-इह प्राग्वेदधर्मः सहजः, पश्चात् सर्वज्ञदेशितो धर्मः कृतकः। तस्माद् वेदधर्मो ज्येष्ट इति । तदेवोच्यते — भवत् वेदधर्मो ज्येष्टः, पश्चात् सर्वज्ञधर्मः । अत्र को विरोधः ? प्राङ्महान्धकारः सहजः 'सर्वज्ञमार्गप्रकाशकः, पश्चात् तस्य विध्वंसनार्थं सहस्रकिरणालोकः सर्वमार्गप्रकाशकोऽभृत् । अनयोर्महान्धकारा-लोकयोर्नान्धकारः सहजो ज्येष्ठः, सचक्षुषां न प्रियः। एवं प्राग्वेदधर्मः सहजो ज्येष्टो निर्वाणमार्गाप्रकाशकः, पश्चात् तस्य विध्वंसनार्थं सर्वज्ञधर्मः कनिष्टो निर्वाणमार्गप्रकाशकोऽभृत् । अनयोर्वेदधर्मसर्वज्ञधर्मयोर्न वेदधर्मः सहजो ज्येष्ठो ज्ञानिना प्रियः, सचक्षुषां महान्धकारवत् । अतो ज्येष्ठकनिष्ठयोः कनिष्ठः श्रेय इति । तस्मात् परमाक्षरज्ञानसाधनेन निर्वाणं भवति, न च्युतिवासना वेदधर्मेरिति।

एवं मत्स्यादिपुराणमपि कल्किपर्यन्तं विचार्यमाणं निरर्थकम् । अयं वृद्धो भगवान् वासुदेवो नवमोऽवतारः, कल्की दशमश्चेति । [203b] बुद्धः कलियुगे महा-मायाच्छलेन यज्ञधर्मं दूषयिष्यति, संग्रामधर्मं पितृकार्यं जातिवादं प्राणातिपातं मुषा-वादमदत्तादानं कामिमध्याचारं पारुष्यं पैशुन्यं संभिन्नप्रलापमभिष्यां व्यापादं मिथ्यादृष्टि सर्वसत्त्वापकारं स्वगोत्रक्षयं क्षत्रधर्मं स्वर्गफलदायकं व्यासमहर्षिवचनं भारतं गीतावचनं वेदवचनं दूपयिष्यति । ततस्तान् दूपयित्वा शूद्रादीनां विपरीतधर्मं देशयि-

१. भो. Lam Thams Cad (सर्वमार्ग) । २. च. 'न' नास्ति ।

जातकाप्सरोलक्ष्मीचन्द्रामृतकालक्ट्रानि विनिर्गतानि" इति किल पुराणधर्म-Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

1) Veda

2) Purana

पटले, १२७ क्लो.]

T 452

व्यति । तद्यथा—दानपारिमता शीलपारिमता श्वानितपारिमता वीर्यपारिमता श्यानितपारिमता उपायपारिमता प्राणिधपारिमता बलपारिमता जानपारिमता प्राणिधपारिमता बलपारिमता जानपारिमता प्राणिधपारिमता बलपारिमता जानपारिमता प्राणिधपारिमता बलपारिमता जानपारिमता एता दक्षपारिमता बोधिसत्त्वैः परिपूरणीयाः । सर्वसत्त्वेषु मैत्रीवित्तं कर्तव्यम्, कर्दणावित्तं कर्तव्यम्, सर्वसत्त्वोपकारः कर्तव्याः, प्राणातिपात-मृषावाद-अदत्तादानकामिमध्याचार-स्थापेषुत्रयस्त्रीभन्तप्रलापिभध्याव्यापादिमध्यादृष्टिदशाकुशलाः कर्मपथा न कर्तव्याः, एक्रिविपरीतधर्मपर्यायैः शूद्रादीन् बोधियत्वा मुण्डियत्या काषायधारिणो भिस्तून् करिष्वति । ये प्राग्दानवपत्रे व्यवस्थिता वासुदेवेन संग्रामे न हताः, येन ब्राह्मणानां दूषणं कृत्वा नरकं गच्छित्ति, तेनेयं बुद्धमाया विष्णुना कृताः, शूद्रादीनां प्राग्दानवपत्रे स्थितानां नरकगमनार्थम् । एवं बुद्धावतार इति ।

कल्की पुनः संभलिवयये यशोबाह्यणस्य पुत्रो भूत्वा वासुदेवः शैलाह्यसारुद्ध दर्भमयैः शल्लेः सर्वम्लेच्छान्मारियत्वा बहुसुवर्णमेधयागं कृत्वा पुनर्ब्राह्मणमयीं पृथ्वीं करिष्यति ॥ एवमनेकवाक्यात्यघटितानि दुष्टविप्रैर्वृद्धोत्पादकाले रिचतानि, प्रायवेदपाठे न सन्ति । इहादिबुद्धदेशनाकाले तथागतेनोक्तं लोकघातुपटले (१.२६) ज्योतिष-प्रस्तावे म्लेच्छघमें जाते सति सिद्धा[न्ता]नां विनाशो भविष्यति, पृथिव्यां लघुकरणानि भविष्यत्ति, मञ्जूषोषोऽपि मृष्यि निवृते पड्वर्षशतैः संभलविषये शाक्यकुले सुरेशानस्य पुत्रो "विजयादेवीगभें यशोनाम कल्की भविष्यति । तद्यथा—

आद्याव्यात् षट्शताब्दैः प्रकटयशन्पः सम्भलाख्ये भविष्यत् तस्मान्नागैः शताब्दैः खलु मखिषये म्लेच्छधमंप्रवृत्तिः। तस्मिन् काले घरण्यां स्फुटलघुकरणं मानवैवेदितव्यं सिद्धान्तानां विनाशः सकलभुवितले कालयोगाद् भविष्यत्॥ इति। (का॰ त॰ १.२६)

मञ्जुघोषो व्याकृतस्तथागतेन । स च सार्धं त्रिकोटीनां ब्रह्मर्पीणां सूर्यरथप्रमुखानां वच्चयानाभिप्रायेणैकवर्णं करिष्यति । तेन कल्की नाम मञ्जुधोषस्य भविष्यति, न ब्रह्मजातिस्थापनेन । यदि यशोबाह्मणस्य पुत्रः कल्की तदा केनात्रासौ कल्की, धनेन विना धनी । कल्को नाम वर्णावर्णानामेकोकरणम्, स कल्कोऽस्यास्तीति कल्की, धनेन विना धनी । कल्को नाम वर्णावर्णानामेकोकरणम्, स कल्कोऽस्यास्तीति कल्की, व कल्केन विना, स एव कल्की । पुन³र्युगावसाने मञ्च्छानामत्यन्ताधमं दृष्ट्वा शैळवित्रष्कम्पो भूत्वा परमाश्वसमाधिनाऽनन्तान् परमाश्वान् स्कार्प्यत्वा तैम्र्लेच्छानां चित्तानि द्रावित्रत्वा स्वधमं स्थापिष्ठपति । तेषां धर्मोत्पाटमं करिष्यति, न प्राणत्यागम् । उक्तं भगवताऽध्यात्मपटळेऽष्टचत्वारिश्वा[204a]त्तमेन वृत्तेन—

१. भो. Lha Mo sNa Tshogs Yum Gyi mNal Nas (माता विश्वदेवीगर्से)।

२. मो, Gat La Yod Pa(यस्यास्ति)। ३. मो, Dus bऽ। (जनुर्जुगा)।
Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

चकी वच्ची स्वदेहे सुरवरपतयो द्वादशाङ्का निरुद्धाः सम्यग्ज्ञानं हि कल्की गजतुरगरथा किङ्करार्याप्रमाणाः। प्रत्येकं रुद्धसंज्ञां प्रभवति हेनुमान् श्रावकं प्राणिनां च पापं म्लेच्छेन्द्रदुष्टं त्वकुशलपिय यत् कुन्मतिर्दृश्वदाता॥
(का॰ त॰ २.४८)

90

10

25

इत्यादि म्लेच्छ्युद्धं तथागतेन व्याकृतम्, यत् प्रथमपटले (१.१६१) उक्तम्— शैलाइवै: कल्की म्लेच्छान् हरिष्यति, तत्तेषां दुष्टर्षीणां चित्तावकर्पणार्थम्, अन्यथा प्रथमं संदेहचित्ते जाते सति बोधयित् न शक्यन्ते । तस्मादुक्तं भगवता बोधिसत्त्वे-नोपायकौशलेन भवितव्यमिति । अतः पुराणधर्मा निर्यका विचार्यमाणा इति । अथ दुष्टर्पीणां वाक्यम्—

> पुराणं मानवो घर्मः साङ्गो वेदश्चिकतसया(कम्)। आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥ मानवं व्यासवाशिष्टं वचनं वेदसंयुतम्। अप्रमाणं हि यो बूयात् स भवेद् ब्रह्मघातकः॥ इति।

एतदेव वालानां व्यामोहजनकं दुष्टर्षीणां मिथ्यावाक्यं विचारशून्यं स्वजाति-प्रतिष्ठापनार्थमिति ।

नत् यदि सत्त्वानां रागच्यतिवासनाऽनादिस्तस्याः प्रभावेण संसारः, तदा किमर्थं भगवता द्वादशाङ्गप्रतीत्यसमृत्पादो देशितः, क्लेशकर्मदुःखेषु यथाक्रमेणाविद्या-दीन्यङ्गानि त्रिषु संगृहीतानि । ततः क्लेशात् कमं भवति, कमंणो दुःखं भवति, दुःखात् पुनः क्लेशो भवति । एतदेव भवचक्रं हेत्ः फलं च सर्वं जगत् । अन्यो नास्ति किंचत् सत्त्वः । शून्येभ्यो धर्मा भवन्ति, धर्मेभ्यः शून्याश्च भवन्ति । स्वाध्याया-दिभिर्दृष्टान्तैस्ते ज्ञातव्याः । तस्माच्च्यतिवासनेयं संसारचक्रं न भवति, इह कस्यचिद-भिप्रायो भविष्यति, तस्मादुच्यते —इह हि यदुच्यते बालेरविद्यादिद्वादशाङ्गं प्रतीत्य-समृत्पादः क्लेशकर्मदुःखात्मकः, तदेव संसारचक्रम्, तन्न, कस्मात् ? भगवतः परमा-क्षरिवद्याधरत्वात् । इह हि भगवान् वज्रसत्तः परमाक्षर महाविद्याधरः संसार-वासनातिकान्तः, तद्वैधर्म्येण संसारिणः क्षरिवद्याधराः संसारवासनाग्रस्ताः । तस्मात् पर-माक्षरो महारागो विद्या, अविद्या इहानादिरागवासनासत्त्वानास्, तया रागप्रवृत्तिः, रागोऽपि क्षरः, क्षराद्विरागः । विरागो नाम द्वेषः, द्वेषात्मिका मृर्च्छा, मृर्च्छा नाम मोहः। एवं रागद्वेपमोहात्मिका अविद्या नाकाशपुष्पमाला। अविद्यानाम क्लेशः अविद्यायाः संस्कारः कर्म, संस्काराद्विज्ञानं दुःखमिति प्रथममृदुमात्रा कायवाक्चित्तमिति। ततो विज्ञानान्नामरूपं क्लेशः, नामरूपात् पडायतनं कमं, पडायतनात् स्पर्शो दुःख-मिति द्वितीया मध्यमात्रा कायवाक्चित्तम् । ततः ^३स्पर्शाद् वेदना क्लेशः, वेदनायास्तृष्णा

T 453

कमं, तृष्णाया उपादानं दुःखमिति तृतोयाधिमात्रा कायवाक् चित्तम् । तत उपादाना-द्भवः क्छेद्यः, भवाष्त्रातिः कमं, जातेर्जरामरणं दुःखमिति चतुर्षी अधिमात्राधिमात्रा कायवाक् चित्तम् । एवं कायवाक् चित्तम् । एवं कायवाक् चित्तम् । मकरोऽविद्यागभंः, गर्भद्वारबाह्यमेरेषु । तत्र नराणां गर्भाधान् [204b]मासो मकरोऽविद्यागभंः, विद्वतीयो मासः कुम्भः संस्कारो द्वारम्, तृतीयो मासो मीनो विज्ञानं बाह्य इति त्रिमासात्मिका मृदुमात्रागर्भजानाम् । तत्रष्ट्यावृष्यो मेषो नामरूपं गर्भः, पञ्चमो वृषमः पडायतनं द्वारम्, पट्टो मिथुनः स्पर्धो बाह्य इति त्रिमासात्मिका मध्यमात्रा । ततः ससमो मासः कर्कटको वेदनागर्भः, अष्टमः सिहस्तृष्णाद्वारः, नवमः कन्या उपादानं बाह्य इति त्रिमासात्मिका तृतीयाधिमात्रा । ततो दशमो मासस्तृष्ठाभवो गर्भः, एकादशमो वृष्टिको जातिर्द्वारम्, द्वादशमो धनुर्जरामरणं बाह्य इति त्रिमासात्मिका अधिमात्राविमात्रा । एवं कायवाक् चित्तक्षान्तमेदेन ज्ञानस्य प्रथममृदुमात्रा कायस्य सा चतुर्थी वेदितव्या । उक्तं भगवता तन्त्रराजे ज्ञानपटले पञ्चमे सप्तत्यधिकशतत्वमेन वत्तेन —

कर्मक्लेशाच्च दुःखं प्रभवति च ततः क्लेश एव स्वदुःखा-देतत्संसारचकं भ्रमति फलसमो हेतुरत्यो न सत्त्वः। शून्येभ्यः स्कन्धधर्माः पुनरिह मरणान्ते च तेभ्यदच शून्या ज्ञेयाः स्वाध्यायदीपोदककुसुमरवैः सूर्यकान्ताम्लवीजैः॥ इति ।

एभिः स्वाध्यायादिभिर्दृष्टान्तैः स्कन्धानामुत्पादिनरोधो वेदितव्यः। यया स्वाध्यायेनींपाध्यायस्य विद्याक्षयः, नाप्राप्तिः शिष्यस्य । एवं प्रदीपात् प्रदीपिनर्गमः । उदकेऽपि च चन्द्राच्चन्द्रः । पुणाद् वस्त्रे गन्धः । सूर्यात् सूर्यकान्तेऽनिनः, रवात् प्रतिरवः । अम्छाज्ञिह्वास्रावः । वीजादङ्कुरः । तथा स्कन्धानामिसिसिन्धः क्षररागवासना-वद्यात् । अतो भगवतो वचनात् संसारचक्रं क्षररागोऽविद्यति । इह यदा क्षरपागे नष्टस्तदा परमाक्षरो भवति । परमाक्षरो महारागः । महारागाद्विरागो नष्टः । विद्यागो नाम द्वेषः । द्वेषक्षयान्महाद्वेषो भवति । महाद्वेषाद् मृच्छनाम मोहो नष्टः । मोहस्रयान्महामोहो भवति । महाराग-महाद्वेष-महामोहाद्वापदेषमोहमानात्मिकाऽविद्या नष्टा । अविद्याक्षयाद् महाऽविद्या भवति । एवमविद्यानिरोधात् संस्कारिनरोधः, संस्कारिनरोधः, विज्ञानिनरोधः, विज्ञानिनरोधः, स्वर्गनिरोधात् वृष्यानिरोधात् प्रवानिरोधात् प्रवानिरोधः, वृष्यानिरोधात् प्रवानिरोधः, वृष्यानिरोधात् प्रवानिरोधः, अविनरोधाः, अविनरोधाः । वृष्यानिरोधाः, अविनरोधाः । वृष्यानिरोधाः, अविनरोधाः । वृष्यानिरोधाः विद्यानिरोधः । वृष्यानिरोधाः । वृष्यानिरोधः । विद्यानीति ।

नतु यदि क्षररागेण घ्वस्तेन योगिनां बुद्धत्वं भवति, तदा मृत्युस्कन्धवस्रोवदेव-पुत्राणां चतुर्णां विघ्वंसनं किमयं तथागतेन कृतम् ? तस्मात् क्षररागविध्वंसनेत बुद्धत्वं न भवति, इह कस्यचिदभिप्रायो भविष्यति । तस्मादुच्यते—इह [205a] हि यदुच्यते मर्खेर्बाह्यमारास्तथागतेन विध्वंसिताः, तन्न, कस्मात् ? पूर्वापरविरोधात् । इह यदि प्राग्वद्धत्वं पश्चान्मारभङ्गस्तदा बृद्धस्य निरावरणता नास्ति, मारोपद्रवात् । अय प्राग्मारभङ्गः पश्चाद् बृद्धत्वम्, तदाऽन्येऽपि संसारिणो मारभङ्गं कि न कूर्वन्ति बद्धत्वं विना । अथ युगपच्च मारभङ्गो भवति, तथा युगपच्च मारभङ्गो न कृतः, यस्मिन् क्षणे मारस्तिस्मन् क्षणे बुद्धत्वं न स्यात्, सावरणिचत्तात् । यस्मिन् क्षणे बुद्धत्वं तस्मिन् क्षणे मारो नास्ति, सर्वावरणक्षयात् । तस्मात् सत्त्वानां कायवाक्चित्ताविद्यावासनात्मकाश्चतु-र्माराः । तेषु कायावरणं स्कन्यमारः, वागावरणं क्लेशमारः, चित्तावरणं मृत्युमारः, वाह्या-विद्याप्रवृत्तिर्देवपुत्रमारः । इयं बाह्याविद्याप्रवृत्तिः शुभाशुभकर्मफलोपभोगपरीक्षकाणां बालमतीनां संसारभोगाभिलाषिणां देवपुत्रमारवाक्येन भवति । अत्र देवपुत्रमाराणां वचनं चन्द्रबलेन सत्त्वानां शुभाशुभं भवति, सूर्यबलेन मङ्गलबलेन वृधबलेन वृहस्पतिबलेन शकबलेन शनिश्च रबलेन राहुबलेन केतुबलेन वारबलेन तिथिबलेन नक्षत्रबलेन योगबलेन करणबलेन लग्नबलेन शुभाशुभं भवति । तथाऽन्येषां स्वरोदयबलाभिरतानां वचनम-संग्रामे स्वरोदयबलेन विजयो भवति, योगिनीबलेन ताराबलेन राहबलेन "भद्रबलादिना संग्रामभुम्यां विजयो भवति । एवं श्रावकबौद्धानामपि बाह्याविद्याप्रवित्तः। प्रतीत्य-समत्पादाभिप्रायेण सत्त्वानां शुभाशुभं भवति । तथाऽन्येषां देवपुत्राणां वचनम्-देवता-प्रसादेन सर्वं शुभं भवति, इत्येवमाद्यविद्याप्रवृत्तिः सत्त्वानां देवपुत्रमारवाक्येन। इह हि यदि जन्मान्तरपुण्यपापाभ्यां विना देवपुत्रमारवचनैः सत्त्वानां शुभाशुभं भवति, तदा पूर्वीजितं शुभाशुभं सर्वं निरर्थकं स्यात्, ग्रहादिबलाबलोपभोगात्। न चैवम्, तथा च दश्यते व्यभिचार:-

> न लग्नात् सुखबती सीता विजयी दुर्योघनो न च । अमावास्याप्रसादेन भीमसेनेन चूर्णितः ॥ अर्जुनं हन्तुकामा ये योघा भूमिवले स्थिताः । तेऽर्जुनस्य शरीभिन्नाः सर्वदिक्षु क्षयं गताः ॥

अतः प्राक् शुभाशुभकर्मफलं भोक्तब्यं सत्वेरिति । तथा चोक्तं भगवता— कायवाङ्मानसं कर्म यत्करोति शुभाशुभम् । सत्वस्तस्य फलं भुङ्क्ते फलटा नान्यदेवता ॥ इति ।

अय देवताप्रसादोऽपि यो दृश्यते, स प्राक्पुण्यवलेन सत्वानां न पापवलेनेति । पुण्यमपि सत्त्वोपकाराद्भवति न देवतापितृकार्ये प्राणातिपातादिति । उक्तं भगवताऽ-ध्यात्मपटले एकोननवतितमेन वृत्तेन कर्मफलम् । तद्यथा—

AND THE PROPERTY OF THE PARTY O

१. भो. Drag Po (रुद्र)।

१. भो. hDi 1Ta sTe (तदाया) इत्यधिकम् ।

T 454

10

15

तस्मात् कर्ता न कश्चिद् ददति न हरति प्राणिनां सोख्यदुःखं संसारे पूर्वकमं प्रभवति फलदं यत्कृतं त्रिप्रकारम्। मुढानां [205b] बुद्धिरेषा ददति स हरते सुष्टिसंहारकर्ता देहे च्छिद्रं न पश्यन्त्यपरिमितशुभं हार्यमाणं स्वकाक्षैः॥ (का॰ त॰ २.८९)

तथा देवपुत्रमारोऽप्युक्तः भिञ्चमपटले षडशीतितमेन वृत्तेन— क्ररकर्मस्वभावा-ये प्रोक्तानेकमन्त्रास्त्रिभ्वनपतिना स्ते सर्वे मारपक्षक्षयभयजनकाः प्राणिनां नो कदाचित । कर्तारो ये स्मृतीनां रणविषयरता मारकान्येऽपि तीर्था-स्तेषां ते योजनीयाः परमजिनस्तैः प्राणिनां रक्षणार्थस् ॥ इति । (का० त० ५.८६)

अतो भगवतो वचनादविद्याप्रवृत्तिर्मारवचनैर्योगिना वन कर्तव्येति। एवं सत्त्वानां स्वचित्तवासनाप्रतिभासो भगवान् वज्रसत्त्वः। एवं सत्त्वानां प्रतिभासो भगवान् पुण्यराशिः पापराशिरिति । उक्तं भगवता ज्ञानपटले पञ्चाकारस्तवे चतुर्थवृत्तेन । तद्यथा-

> चिन्मात्रं मन्त्ररूपं त्रिदशपरिवृतं दुःखसीख्यस्वभावं साधनां शान्तरूपं स्वकृतमनुभवं दारुणं दारुणानाम । यो यत् कर्मावकूर्यात् स्वमनसि विधिवत्तत्फलं तस्य जातं लोकेशं विश्वरूपं त्रिभुवनजननं वज्रसत्त्वं नमामि ॥ इति । (का० त० ५.२४७)

अतः सत्त्वानां स्वचित्तवासनाप्रतिभासो वज्रसत्वश्च मारश्च, न भगवतो मार इति। ³एषामुक्तानां कायवाक्चित्ताविद्यामाराणां जनकः क्षरः क्षणः कामदेवोऽभिधीयते । स तथागतेन विष्वस्तः परमाक्षरक्षणेन, तस्य भङ्गो मारवलभङ्गो राणद्वेषमोहकोधाना-मिवद्यारूपाणां क्षयः । इह क्षरवासनानिरोघाद् रागद्वेषमोहक्रोधनिरोधः, एषां निरोधाः दिवद्यानिरोध:। एवं क्रमशो द्वादशाङ्गानां निरोध:, द्वादशाङ्गिनिरोधाद् भवचकस्य निरोधः, भवचक्रनिरोधाद् बुद्धत्वं निरावरणं भवतीति । एषु श्रावकपारमितामन्त्रनयेषु परमाक्षरहृदयं वच्चधरभगवतो नामसंगोत्यां तथागतेन देशितम् । अस्यार्थमजानन्तोऽ-सद्गुरवो नष्टाः परमाक्षरज्ञानभ्रष्टा अनागतेऽध्वनि भविष्यन्ति । तैर्विनष्टेः सत्त्वा विनाशियतव्याः। तेन **मूळतन्त्रे** पञ्चाकारज्ञानस्तवे पञ्चरलोकेः पञ्चाकारभावना भगवतोक्ता । तद्यथा-

१. च. 'पञ्चमपटले' नास्ति । २. च. 'न' नास्ति । ३. भो, sNar brJod Pa hDi

श्न्ये भावसमहोऽयं कल्पनारूपर्वाजतः। दश्यते प्रतिसेनेव कुमार्या दर्पणे यथा॥

परमाक्षरज्ञानसिद्धिर्नाम महोहेशः

पटले, १२७ वलो.]

इति लोकोत्तरसत्ये रूपस्कन्यादर्शज्ञानम्, सर्वभावसमो भत्वा एको भावोऽक्षरः स्थितः। अक्षरज्ञानसंभूतो नोच्छेदो न च शाक्वतः॥

इति वेदनास्कन्धः समताज्ञानम्, सर्वसंज्ञात्मका वर्णा अकारकुलसम्भवाः। महाक्षरपदप्राप्ता न संज्ञा न च संज्ञिनः॥

इति संज्ञास्कन्धः प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्, अनुत्पन्नेषु धर्मेषु संस्काररहितेषु च। न बीधर्नेव बुद्धत्वं न सत्त्वो नैव जीवितम्॥

इति संस्कारस्कन्धः कृत्यानुष्ठानज्ञानम्, विज्ञानधर्मतातीता ज्ञानशृद्धा ह्यनाविलाः। प्रकृतिप्रभास्वरा धर्मा धर्मधातुर्गीत गताः॥

इति विज्ञानस्कन्धः सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्।

तथा लघुतन्त्रेऽप्युक्तमेकोत्तर[206a]शतादिवृत्तत्रयेण चक्रचिह्नादितयागत-स्कन्धलक्षणम् । तद्यथा-

चकं स्वच्छं समन्तात् त्रिभव इति सुखं रत्नमस्येव रागः पद्मं क्लेशक्षयोऽसिः कुलिशमपि महाज्ञानकायो ह्यवेद्यः। छेदोऽज्ञानस्य कत्रीं त्विह षडिप च कुलान्येभिरुत्पादिता ये तेऽप्येवं वेदितव्याः खमिव समरसाः स्कन्धघात्विन्द्रियाद्याः॥

यस्मिन् वे जातिरूपं व्रजति निधनतां तन्महारूपमक्तं यस्यां संसारदुःखं व्रजति निधनतां सा महावेदनोक्ता। यस्यां संसारसंज्ञा व्रजति निधनतां सा महावज्वसंज्ञा यस्मिन् संसारवृद्धिर्वजिति निधनतां वष्ठसंस्कार एव॥

यस्मिन् जाग्राद्यवस्था वजित निधनतां तच्च विज्ञानमुक्तं यस्मिन्नज्ञानभावो व्रजति निधनतां तन्मुनेर्ज्ञानमेव। एते वैरोचनाद्याः परमजिनवराः षड्विधाः षट्कुलानि अन्ये षड्घातुभेदा अवनिशिखिपयोमारुताकाशशान्ताः॥

(का० त० ५.१०१-१०३)

rNams (पूर्ण 🖰 केंग्रासesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

15

20

30

T 455

30

तद्यथा-

10

15

घ्मादीन् भावियत्वा तु चित्तं कृत्वा तु निश्चलम् । मध्यमायां शोधियत्वा भावयेत् परमाक्षरम्॥ पद्मे बच्चं प्रतिष्ठाप्य प्राणं बिन्दौ निवेशयेत । बिन्दंश्चक्रेषु बिन्दूनां स्पन्दं वज्जे निरोधयेत्॥ स्तब्धलिङ्गः सदा योगी कर्ष्वरेताः सदा भवेत्। महामुद्राप्रसङ्के न वज्रावेशैरधिष्टितः॥ एकविशत्सहस्रेश्च पट्शते: क्षणेः पूर्णेर्महाराज वज्रसत्त्वः स्वयं भवेत्॥ पटले, १२७-१२८ बलो.] परमाक्षरज्ञानसिद्धिनीम महोहेशः

उक्तं भगवता तन्त्रराजें ज्ञानपटले पञ्चाकारस्तवे आदिवृत्तेन निर्वाणं निर्नि-मित्तमिति । तद्यथा-

> यस्यान्तं नादिमध्यं स्थितिमरणभवं शब्दगन्धौ रसङ्च स्पर्शो रूपं न चित्तं प्रकृतिरपुरुषो बन्धमोक्षौ न कर्ता। बीजं न व्यक्तकालं न सकलभवने दु:खसौस्यस्वभावं निर्वाणं निर्निमत्तं व्यपगतकरणं निर्गणं तं नमस्ये॥ इति। (का० त० ५.२४४)

वज्रमुपायः । अत्रैव पञ्चमेन वृत्तेन प्रज्ञा उक्ता निर्निमित्ता -

एको नैकोऽपि चैकः समविषमसमः सञ्यवामाग्रपष्ट कध्वीघो वै समन्तात् सितहरितमहाविश्ववर्णेकरूपः। ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चागुण इति सगुणः स्त्री नरश्चानरस्त्री-र्यः सर्वाधार एकः सुभगवरभगस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ इति । (का० त॰ ५.२४८)

सत्त्वं पद्मं प्रज्ञा, एवं वष्यसत्त्वः । उक्तं भगवता तन्त्रराजे ज्ञानपटले-प्रज्ञोपायाम्बुजं वज्जं साधाराधेयमुच्यते। तयोर्दन्दं समापत्तिर्वज्रयोगोऽद्वयोऽक्षरः॥ चतुर्घा वज्रयोगं तं कालचक्रं नमाम्यहम्। कलापे निर्गतो राजा पौण्डरीकोऽब्जधुक् स्वयम् ॥ इति ॥ १२७॥

> इति श्रीलघुकालचक्रतन्त्रराजे द्वादशसाहस्रिकायां विमलप्रभाटीकायां परमाक्षरज्ञानसिद्धिर्नाम महोद्देशस्तृतीयः ॥

(४) नानोपायविनेयमहोद्देशः

पत्राक्षरं महाशुन्यं बिन्दुशुन्यं पडक्षरम्। प्रणिपत्यादिकादीनां श्वाससंख्या वितन्यते ॥

लुाद्या यास्त्वष्टमात्रा विषयगुणगताश्चार्धमात्राविहीना अन्योन्यं भेदभिन्नाः सपदरसशरा मध्यमाश्वासवाहाः। दीर्घा लग्ने द्वितीये विषयगुणवशाद् भेदिताऽन्योन्यभेदै-र्भूयः सन्धौ तृतीये प्लुतविषयगुणा मध्यमाश्वासवाहाः ॥१२८॥

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

20

25

लु। होत्यादि । इह लुकारादयो याऽष्टमात्रा अर्धमात्राविहीना विषयगुणगता इति ह गन्धगुणगता, उ रूपगुणगता, ऋ रसगुणगता, इ स्पर्धागुणगता, अ अन्द-गुणगुता, अं सत्वगुणगता, अः रजोगुणगता, अाँ तमोगुणगता प्लुता। अनाहतोऽर्ध-पुराप्ता अनेताताः सार्धसप्त, एवमप्टमात्रा अर्धमात्राविहीनास्ता अन्योन्यं भेद-भिन्ना इति प्रत्येका सार्धसप्तमेदभिन्ना समुदयसत्येन सर्वास्ता गुणिताः [207a] सपादपद्भञ्जाशद् भवन्ति सपदरसशरा इति । ताश्च उत्पन्नस्य बालस्य मेषादिलाने हस्वा मध्यमाद्वासवाहा भवन्ति । ततो वामनाड्यां मण्डले सञ्चारः प्रथमोत्पन्नस्य बालस्य । दीर्घाऽप्येवं द्वितीये लग्ने वृषभादिके समे मध्यमाश्वासवाहा इति । इह यद्यपि ह आद्या उक्ताः, तथापि वामनासापुटे आकाशादिमण्डले प्राणस्य गमनम् । अत्र पुन-र्नाभ्यादिपञ्चगुणादिनियमेन प्राण आकाशादिपृथिव्यादिसाधम्येण गृह्यते, ह्रस्वदीर्ध-भेदेन विषमसमलग्नयोरिति । भूवः सन्धौ तृतीये प्लुतविषयगुणा मध्यमाञ्चासवाहा इति । इह यदि बालः संक्रान्तिकाले 'भवति, तदा प्राणो मध्यमायां प्लतो भत्वा वामदक्षिणे संचरित । एभिः पूर्वोक्तैः सर्ववर्णसञ्चारो वेदितव्य इति । अत्र छ-कारभेदः। तद्यथा— ह लु लु लि ल लं लः लां ल्, इति, एवं उ व्ह वु वृ वि व वं वः बांव इति, तथा ऋ रुॡ हरिर रंरः रांर् इति, तथा इ य्छ यु यु य ये यः यां य इति, तथा अ अल ओ अर ए अं अः आं ह इति, तथा अं म्लट मु मु मि मं मः मां म् इति तथा अ रूछ र र्ऋ रि र रंरः रां र्इति, तथा ह हू छ हू ह हि ह हं हः हां हु इति सपादषट्पञ्चाशत्। एवं दीर्घाः प्लुताश्च वेदितव्या अन्योन्यभेदै-रिति॥ १२८॥

इदानीमहर्निशक्वासमात्रा उच्यन्ते-

एवं सन्ध्याचतुष्के सशरगिरिरसा मध्यमाश्वासमात्रा-स्त्रिशत् काद्यक्षराणि प्रकटनवशतान्येव त्रिशद्धतानि । षण्मात्राभेदभिन्नानि खखयुगशराणि त्रिलग्नत्रिनाडचा-मेवं दीर्घंप्रभिन्नान्यपरदिनगतानि त्रिलग्नत्रिनाडचाम् ॥१२९॥

त्रिशत् काद्यक्षराणीति । क च ट प त शानां षण्णां ककारादोनि त्रिशदक्षराणि प्रकटनवज्ञतान्येव भवन्ति, त्रिशत्प्रभेदादेकैकाक्षरस्य परस्परसंयोगात् त्रिशद्भेदा भवन्ति । तदाया—क्क क्ख का क्ष कड़ क्च क्छ क्ज क्झ क्ल कट कड कड कि बप बफ बब बम बम बत क्य बद बघ बन बश बर्प क्य बस बर्का। एवं खादयो वेदितव्याः । प्रकटनवशतान्येवं भवन्ति ॥ १२९ ॥

भूयः पण्मात्रभिन्नान्यपि निशिसमये च त्रिलग्नत्रिनाडचा-मेवं दीर्घप्रभिन्नान्यपरनिशिगते च त्रिलग्नत्रिनाड्याम् । इवासोच्छवासान् वहन्ति प्रतिदिनसमये खखषट्चन्द्रनेत्रान् पूर्वा आहत्य शुन्याः समविषमगतेर्योजयेन्मध्यमायाम् ॥१३०॥

पुनस्तानि नवशतानि वण्मात्रभेदभिन्नानीति । अ इ ऋ उ ऌ अं इत्येभिभिन्नानि खखयगशराणीति चतुष्पञ्चाशतशतानि भवन्ति । त्रिलग्नत्रिनाड्यामधरात्रादुदयं यार्वादति । ततो दीर्घपण्मात्राभिन्नान्युदयान्मध्याह्नं यावदपरत्रिलम्नत्रिनाड्यां व्वासमात्रा भवन्ति पूर्वसंख्या इति । भूयो ह्रस्वपण्मात्राभिन्नं मध्याह्मान्निशिसमय-स्तिस्मन्नस्तङ्गतपर्यन्तं त्रिलग्नित्रनाड्यां पूर्ववत् संख्या इति । एवं निशाया अपरभागेऽर्ध-रात्रं यावत् त्रिलग्नत्रिनाड्यां पूर्वसंख्या समात्रा । एवं इवासोच्छ्वासान् वहन्ति प्रतिदिन-समये खखबट्चन्द्रनेत्रानिति षट्शताधिकैकविंशत्सहस्राणि । एभिः श्वासमध्ये पूर्वा आहृत्य शून्याः समविषमगतेर्योजयेन्मध्यमायामिति । इह पूर्वोक्ताः प्रत्येकमण्डले सपादैकादश, ते च मकरादिलग्नो दयभेदेन प्रत्येकमण्डलान्ता दकारादिभेदेन मध्य-मायां योजयेदिति । असौ महाप्रपञ्चो बहत्वान्न लिखितः, 'परमादिबृद्धे पष्टिसाहिस-कायां टीकायां ज्ञातव्य इति । न चानेन लोको[207b]त्तरकारणं किश्चिदस्ति, येन प्रयतनः कर्तव्य इति । अस्यादिकादेलींमकेशसंख्यं यावन्निर्गम इति ॥ १३० ॥

इदानीमष्टमार्घा या सार्धसप्तानां परा, सा उच्यते-बाह्ये या चाष्टमार्धा प्रभवति घटिका राहुभोगात् परस्था श्वासार्धं सा स्वदेहे खलु विगततमा सर्वलोकावभासा। पूर्वार्घा सान्धकारं त्रिभुवनसकलं लीयते यत्र शुन्ये तस्मात्तां भेदयित्वा विशति गततमां कालचक्रेकयोगी ॥१३१॥

^४बाह्य इत्यादि । इह बाह्ये लोकधातौ या चाष्ट्रमार्घा मात्रा प्रभवति घटिका राहुभोगात् परस्थेति । इह प्रत्येकर्तौ मास द्वयेन राहुः पञ्चविषयलक्षणाः पञ्चनाड्यः, तथा सत्त्वरजस्तमोलक्षणास्तिस्रस्ता भृङ्क्ते, राशिचक्रमध्ये तासु सार्धसप्त भृङ्क्ते। अर्धनाडीं भोक्तुं न क्षमः। सा राहुभोगात् परस्था श्वासार्धं सा स्वदेहेऽजुत्पन्तस्य बालस्य दण्डाकारं नाभिललाटयोर्मध्ये बाह्ये निर्गमाभावादर्धश्वास उच्यते। मन्त्रभेदेनार्धमात्रा। सा खलु विगततमा सर्वलोकावभासा षाण्मासिकगर्भस्य पञ्चाभिज्ञातः। पूर्वार्घा सान्धकारं त्रिभुवनसकलं लीयते यत्र शून्ये मरणान्ते तुर्या त्यक्त्वा सा सुषुप्तायां विशति, पण्मासं यावत् । ततः स्वप्नावस्थां प्राप्तो गर्भोऽपरार्धमात्रां विशति । तस्मात्तां तमोऽ-

T 456

15

रे. भो. 'उदय' नास्ति । २. च. ह । ३. भो. Zla Ba bZan Pos mdZad Paḥi (सुचन्द्रकृतं) इत्यधिकम् । ४. च. 'बाह्य इत्यादि । इह' नास्ति । ५. भो. 'इयेन' नास्ति । ६. च. 'प्राण' इत्यधिकम् । Ղ 🕆 ու «Kyes PaCourtesy; Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

पटले, १३१-१३२ क्लो.]

वस्यां भेदियत्वा हृदये प्रविक्षति गततमां नाभिचक्रे स्थितां कालचक्रकयोगी प्राण-वाहनिरुद्ध इति गर्भावस्थां गत इति योगिनां योगनिष्पत्तिः ॥ १३१ ॥

इदानीमुत्पन्नानां बालानां कलाहान्यादिरुच्यते—

चन्द्रोना याऽधिकार्के विभूपरमकला साऽत्र सन्ध्याचत्र्के यामे यामे व्रजन्ती निशिदिवसवशादधंलग्नप्रभेदै:। षट्त्रिंशत् कालदूत्यो द्विगुणनृषतयोऽन्यास्तिथौ द्वचष्टभेदे वाराणां चाष्टभेदे खलु पुनरपरे नैकसन्धिप्रदेशे ॥१३२॥

चन्द्रोनेत्यादि । इह यथा बाह्ये तथाऽध्यात्मनि चन्द्रस्य प्रतिदिनं षष्टिघटिका तिथिनं भवति, एकघटिकोना सा चाध्यात्मनि शुक्रस्येति । याऽधिकाऽकं इति सूर्यभोगे पूर्वोक्ताऽध्यात्मपटले द्वे नाडिके । विभुरिति बोधिचित्तम्, तस्य परमकला ज्ञानधीमणी चन्द्रकलाहानिः, विज्ञानधर्मिणी सूर्यभोगहानिरिति । साऽत्र सन्ध्याचतुष्के यामे यामे वजन्ती निशिदिवसवशादर्घलग्नप्रभेदैः षट्त्रिशत् कालदूत्य इति त्रिचकसंवरे डाकिन्यः। तासां कृष्टिकायोगे सञ्चारः। सन्ध्याभेदेन प्रहरलग्नार्धभेदेन। यथा बाह्ये भोगो लयो-ऽधिकार आधिपत्यम्, तथाऽध्यात्मन्यादित्योदयभेदेन प्राणोदयभेदेनेति । इह बाह्ये चत-द्वीपेष यत्रादित्योदयस्तत्र भोगः, यत्रार्धरात्रं तत्र लयः, यत्र मध्याह्नं तत्राधिकारः, यत्रा-स्तमनं तत्राधिपत्यम् । कृलिकाया निशाप्रवेशतो 'योगिनीभुक्तयेऽर्धरात्रं याविदिति उदयानमध्याह्नं यावद् भिक्षणां भोगो दिवाकाले, तेन "दिनस्तु भगवान् वच्ची प्रज्ञा नक्तं प्रमुक्तये" इति नियमः। तेन उदयान्मध्याह्नं यावद् भिक्षभिर्भवतं निरामिषं भोक्तव्यम्। अस्तङ्गमनादर्धरात्रं यावद्योगियोगिनोभिः समयकार्यं कर्तव्यम् । तदूष्वं संवरभङ्गः श्रावकमन्त्रिणोः, तद्भञ्जादृद्धिसिद्धिहानिरिति । एवं यथा सन्ध्याभेदेन चतुर्योगिनीनां भोगलयादिकं तथा इमशानयोगिनीनामष्टानां प्रहरभेदेनार्धरात्रान्मध्याह्नं यावदनुलोमेन [2082] पूर्वदक्षिणपिहचमोत्तरेषु सञ्चारः, चतुःप्रहरेषु मध्याह्नादर्धरात्रपर्यन्तं विलोमेन ईशानवायव्यनैऋत्याग्नेयदिक्षु तथा लग्नाधंभेदेन वृहिचकधनुर्लग्नाधंभेदेन चित्तचके दक्षिणावर्तेन सञ्चारः । चतसृणां मकरकुम्भे वामावर्तेन । एवं वाक्चके मीनमेषवृष-मियुनाधंभेदेन तथा कायचके कर्कटसिंहकच्यातुलाभेदेन सञ्चार इति पट्विशददूतीनी सञ्चारः प्राणभेदतः । ताश्च कालदूत्यः, तथाह चक्रसंवरे-

मध्यमोत्तमश्वासेन गन्घोदकयुतेन च। कुलिकां पूजयेन्नित्यं कालविशेषेण दूतिकाः ॥ इति ।

अत्र परमाक्षरसुखेन विष्मृत्रचन्द्रसूर्यनाडीनिरोधेन कुलिकां वच्चवाराहीं पूजयेत्। उक्तकाळविशेषेण दूर्तिकाः पर्तिश्वात् पूजयेत्, प्राणसञ्चारेण बाह्योऽध्यात्मिनि च । इह

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivedii (तिकारीको अधिक - 17 Feb 2012) १. भो. rNal hByor Pa (योगी)।

नाभिचके प्रथमपरिमण्डले चतुर्दलानि । तेषु पूर्वदलमात्मपीठं दक्षिणं परपीठं पश्चिमं मन्त्रपीठमत्तरं तत्त्वपीठमिति । तथा मुखद्वारं शुलमेदश्मशानं पूर्वं दक्षिणे नासारन्ध्रं दक्षिणं शवदहनमपानद्वारं पश्चिमं पूर्तिगन्धं वामनासारन्त्रमृत्तरं क्लिन्नम् । एवं वामकर्णमीशाने बालमृत्युः, नैऋत्ये दक्षिणकर्णं घोरयुद्धम्, वायव्ये सर्पद्ध्टं दक्षिणनेत्रम्, अग्नो वामनेत्रम्च्छिष्टमिति । एवं हृदयचक्रेऽष्टनाडीनां संज्ञा रोहिणी पूर्णगिरिः पूर्व-नाडी पिङ्गला, जालन्घरं दक्षिणनाडी जया, ओडियाणं पश्चिमनाडी इडा, अर्वद-मत्तरनाडीति दिक्षु । तथा विदिक्षु — ईशाने कृहा गोदावरी, वायब्येऽलम्बुषा रामेश्वरी, नैऋत्ये पूषा देवीकोटम्, आग्नेय्यां हस्तिजिह्वा मालवकम् । एवं कष्ठचके प्रथमपरि-मण्डलेऽष्टनाड्यः क्षेत्रोपक्षेत्रच्छन्दोहोपच्छन्दोहसंज्ञाभिर्जेयाः। एवं ललाटेऽपि प्रथमपरि-मण्डलेऽज्टनाङ्यो मेलापकोपमेलापक इमशानोपश्मशाननामभिर्वेदितव्या इति चक्रसंवरे नियम:। आसां बीजान्यन्तस्था य र ल वाः कायचक्रे पूर्वीदिदिक्ष, तथा ईशानादि-विदिक्ष वा ला रा या इति । ह हा हं हः अग्नि-वायु-ईशान-नैऋंत्यश्मशानेषु । एवं ए अर् अल् ओ वाक्चक्रे दिक्षु, विदिक्षु औ आल् आर् ऐ। अ आ अं अ: पूर्वापरवाम-दक्षिणश्मशानेषु । चित्तचक्रे इ ऋ छ उ दिक्षु, विदिक्षु ऊ लू ऋ ई इति । गर्भपद्मदले अ आ पूर्वापरे, अं अः वामदक्षिणे द्वादशभुजस्येति । तथा मूलतन्त्रे भगवानाह-

> नाभिमध्ये स्थितं चित्तं ज्ञानविज्ञानयोगतः। प्राणस्याष्टगुणैर्बद्धं कोशकीटैरिवात्मजैः॥ जाग्रत्स्वप्नसृषुप्तावस्था त्रिज्ञानभेदतः। प्राणिनां त्रिमुखं चित्तं तुर्याकालाचतुर्मुखम् ॥ एवं विज्ञानयोगेन पञ्चषड्विषयात्मकम्। पञ्चास्यं पण्मखं चित्तमचित्तं चित्तमन्यत्(माप्यते)॥ नाभिमध्ये स्थितो बिन्दुविसर्गः संपुटै[208b]स्तयोः। ज्ञानविज्ञानयोगेन बोधिचित्तं व्यवस्थितम्।। प्राणसञ्चारभेदतः। सन्ध्यायामधंलग्नेष षट्त्रिशद् दूतिकाऽत्रोक्ता बालानामवतारणे ॥ इति ।

एतास्तावत् षट्त्रिशन्नाडिकाः प्राणप्रवाहतः कालदूत्यः शरीरक्षयकारिण्यः। तस्मात्तामु गतः प्राणो निरोधनीय इति नीतार्थः। इदानी गृह्यनाङ्यो बोधिवित्तवाहिन्यो हार्त्रिशदुच्यन्ते — हिगुणनृपतय इत्यादि । इह हिगुणनृपतय इति हात्रिशद् गृह्यचके ज्ञानभेदेनावस्थिताः, तासां षोडशरागपक्षे शुक्ले कलाभेदेन स्थिताः, षोडशविरागभेदेन कुष्णपक्षे चन्द्रकलाक्षयभेदेन पूर्वोक्ताः। तथा हेवन्त्रे—

"अभेद्या सुक्ष्मरूपा च दिव्या वामा तु वामनी" इत्यादि । (हे० त० १.१.१६) 20 T457

15

200

30

25

206 द्वात्रिशन्नाड्य आधारभृता एतावत्यो डाकिन्य आधेयधर्मिण्योऽपानवायसंयो-गादिति । एताभिस्त्रयस्त्रिशदात्मको हेरुकः समाजो वा भवति, गुह्यतन्त्रत्वादिति । तस्य द्विगुणं निर्माणचक्रे चतुःषष्टियोगिन्यात्मकं चक्रं पञ्चमण्डलप्रवाहकमिति। वाराणां चाप्टभेदे पुनर्वारनाड्यो हत्कमले गीर्याद्यष्टी, ललाटे पोडश नैरात्म्याद्या इति । एवमनेकसन्धिप्रदेशे पष्टयुत्तरित्रशतसन्धिप्रदेशे नाड्यो वर्षदिनसंख्यास्तासामाधेयभता योगिन्यः। एवं द्वासप्ततिसहस्रयोगिनोनामाधाराधेयभेदेनेति। यावत्यो नाड्यस्तावत्यो डाकिन्यः प्राणापानचारत इति निष्प्रपञ्चवचो भगवतः ॥ १३२ ॥

इदानीं भगवतो मुद्रोच्यते-

वेदर्तुश्वासशेषा त्रिभुवनजननी डाकिनी विश्वरूपा या हीना चन्द्रमध्ये परमजिनपतेः सा स्वमुद्रा द्विधा स्यात् । याऽर्कस्था साष्ट्रभेदा दिशिविदिशिदले यामभोगावसाना शेषाऽन्याश्चकदेव्यः परमभयकरा बाह्यदेहे समस्ताः ॥१३३॥

वेदित्वत्यादि । इह वेदर्तरिति चतुःषष्टिस्तदन्ते या नष्टचन्द्रकला संसारिणाम्, तद्वैधर्म्येणानष्टचन्द्रकला इवासशेषा चतुःषष्टिश्वासानामन्तिमा श्वासधर्मिणी त्रिभुवन-जननी डाकिनी विश्वरूपा। या हीना चन्द्रमध्ये परमजिनपतेः बोधिचित्तस्य, सा स्वमुद्रा द्विया स्यात्। एका संवृतिधर्मिणी महामाया महारौद्रा भृतसंहारकारिणी, द्वितीया महाप्रज्ञा वोधिचित्तस्य बुद्धानां प्रज्ञापारिमता उत्पादव्ययरिहता बुद्धमाया महासौम्या सृष्टिसंहारनाशिनो । सा अनाश्रवभेदादपानस्था । याडकंस्था साष्टभेदा इति प्राणस्था रजोधिमणी, साऽष्टभेदा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तगुणत्रयपञ्चिवषयभेदेनाष्ट-गुणात्मिकेति । सा च मण्डले पद्माष्ट्रदलेषु स्थिता इति कल्पना । शेषा अन्याः पूर्वोक्ताश्चकदेव्यः परिकल्पिताः। ताः परमभयकरा बाह्यदेहे समस्ता इति नाडी-सञ्चारनियमः॥ १३३ ॥

इदानीं ग्रहचारभोगडाकिन्य उच्यन्ते-

25

मन्दे रन्त्रा दिनास्या तमिनि सुरगुरोः सार्धनेत्राक्षिसंख्याः सार्घाः षड् वेदजाताः परमजिनपतेश्चित्तवज्त्रोद्भवास्ताः । भौमे शून्याहिचन्द्रा रिवबुधभृगुकेतोश्च शून्याहिखेका खाक्ष्यक्ष्येकाश्च जाताः खलु परमिवभोः शुद्धवागुद्भवास्ताः ॥१३४॥

मन्द इत्यादि । इह बाह्ये सूर्यप्रचारेण मासद्वयेन ऋतुः सूर्यस्य, अध्यात्मिन लग्नद्रयेन प्राणस्य ऋतुः। स च वामदक्षिणदशमण्डलप्रवाहेण भवति सृष्टिसंहारभेदेन। तेन ऋतौ मन्दे मह्दणेयार्सङ्गुः इतिमन्मक्षियागोष्टीआंभृदिद्याके प्रमुखंभागु क्रियन् of Late Vra Vallabh Dwivediji (1क्रि.)धीर्म**92**क प्राप्त (प्रकृति 2012)

एवं दिनाख्या इति [2092] पञ्चदशेति रात्री भोगे सुरगुरोः साधनेत्राक्षितंत्र्या इति सार्धद्वाविशदिति, एकीभृताः सार्घाः षड् वेदजाता इति सार्धपटचत्वारिशदिति । परमजिनपतेश्चित्तवज्ञोद्भवास्ता इति चित्तविन्दुजनिता इत्यर्थः। भीमे शुन्याहिचन्द्रा इति प्रपञ्चः। तस्य मण्डलेन यल्लभ्यते षष्टिभागेन तावत्यो नाड्य इति नियमः, सामान्येनाशीत्युत्तरशतम् । इह यत्र मञ्जलस्य ऊनो भागस्तत्र रविकाभोगो न हर्तव्यः, चन्द्रभोगो मासेकः क्षेपणीयः। इह मङ्गलस्य त्रयोविशतिमासेः स्वदिनं लोकस्ख्या अष्टादशमासैः, तन्न घटते, तेनात्र यथाभूतं वर्षशतं ग्रहाणां मण्डलदिनैर्भवति, अष्टमासैक-विंशतिदिनाधिकमिति नियमः। एवं भौमे शून्याहिचन्द्राः। रविबुधभगुकेतोश्च शन्याहिस्वैका इत्यष्टाशीत्युत्तरसहस्रम्। एषां पञ्चग्रहाणामेकत्र भोगात् खाक्यक्ये-काइच जाता इति विशस्यिधकद्विशताधिकैकसहस्रम् । खलु परमिवभोः शृद्धवागृदु-वास्ता इति वागबिन्द्रजनिता इत्यर्थः ॥ १३४॥

या चन्द्रस्यर्तुभुक्तिः खखरसशिखिनः कायवज्रोद्भवास्ता एकीभृताः समस्ता रसषडहियुगाश्चार्धनाडीस्तथैव। डाकिन्यः कालरूपाः सकलतन्गताः प्राणिनां प्राणहन्त्र्य-स्तस्मात्ताः साधनीयाः प्रतिदिनसमये रोधियत्वा स्वमार्गम् ॥१३५॥

या चन्द्रस्पर्तभक्तिः खखरसशिखिन इति पट्शताधिकसहस्रत्रयं घटिकाभोगः, कायवज्रीद्भवास्ता इति कायबिन्दुद्भवा इति । एकीभूताः समस्ता नवानां रसषडहि-युगा इति षट्षब्टबिकाष्ट्रशताधिकसहस्रचतुष्कम्, अर्थनाडी तथैवेति संख्या डाकिनीनामेकर्ती । ता डाकिन्यः कालरूपाः सकलतनुगता देवादीनां प्राणिनां प्राणहन्त्र्य एकर्तौ । पडृतुषु पुनरयुतद्वयं नवसहस्रशतमेकं षण्णवत्यधिकमिति डाकिनीसंख्या सत्त्वानां ग्रहचरणान्तर्भृता इति नियमः। तस्मात्ताः साधनीयाः प्रति-दिनसमये रोषियत्वा स्वमार्गं तासां प्राणापानिनरोधेन चतुर्विन्दुनिरोधेनेति नियम: ॥ १३५ ॥

याव-द्भुक्तिर्ग्रहाणां स्वपरगतिगता श्वासनिःश्वासचारात् तावत् किं कालदूती प्रभवति वरदा व्यापिनी या त्रिधातौ। दूतोसूक्ष्मप्रचारो गुरुवचनगतो बोधिचित्तेऽक्षरे च ज्ञातच्यो योगयुक्तैर्व्यपगतकलुषैर्नान्यथा रागचित्तैः ॥१३६॥ द्वितीयवृत्तेनोक्ता यावदित्यादिना सुबोधमिति॥ १३६॥

\$\$0.

T 458

इदानी चन्द्रचरणे राहुप्रवेश उच्यते—
मार्तण्डेन्द्वोः पदान्यप्युभयगतिवशात् तृष्णया ताडितानि
अङ्गेर्भागावशेषं ग्रसति स चरणं राहुवेशे च केतुः।
सर्वाः सन्ध्याष्ट्यामाः प्रतिदिनसमये प्राणिनां द्वादशाङ्गाः
स्वासाद्येकैकलग्ने द्विगुणनवशतप्राणवाहाङ्गमुक्तम् ॥१३७॥

मातंण्डरपादि । इह मातंण्डपदात्येकादश "रसयुगशशिनः" इति पूर्वोक्तानि, इन्दुपदानि पर्वावश्य "भूता भूतेषु" इत्यादिना, अनयोरेकत्र मिलितानि पर्वात्रश्च भवन्ति । एवं तृष्णया ताडितान्यप्टाभिति । अङ्गीरित । अङ्गीरित हादशलग्नेभागलञ्चानि चतुर्विशतिचन्द्रपदानि भवन्ति । अञ्चोत्ति । अञ्चोति हादशलग्नेभागलञ्चानि चतुर्विशतिचन्द्रपदानि भवन्ति । अव्यात्मिन मन इन्द्रियं शुक्रधातुचरणं शून्याङ्गं यदिति । सर्वाः सन्ध्याद्यत्रस्य प्राणनां द्वादशलग्नोतियर्थः । व्वासाद्यत्रेष्ठप्रहराः प्रतिदिनसमये प्राणनां द्वादशलग्नानीत्यर्थः । व्वासाद्यत्रेष्ठप्रहराः प्रतिदिनसमये प्राणनां द्वादशलग्नानीत्यर्थः । व्यासाद्यत्रेष्ठप्रहराः प्रतिदिनसमये प्राणनां द्वादशलग्नानीत्यर्थः । व्यासाद्यत्रेष्ठप्रहराः प्रतिदिनसमये प्राणनां द्वादशलग्नानीत्यर्थः । व्यासाद्यत्रेष्ठप्रहर्मा सासेकेनैकाङ्गम्पटा-दशलत्वर्थः, मासद्वयेन ऋतुः पर्विश्वर्थः (209b]भः शतैः । एवं द्विद्वि-अङ्गोः पड्तवः । ऋतुत्रयेण प्रहणं चन्द्रार्कराहभोगवशादिति ॥ १३७ ॥

द्विद्यच्चेष्वेष्वाद्यविद्या प्रथमदिनवशाद् द्वादशाङ्गानि यावत् तस्मादृत्वादिनाङ्गानि च परनवमी पूर्ववद् यानि तानि । एवं पञ्चप्रकारैकंतुरिप च भवेत् सवंतो द्विद्विमासाद् यस्मिन्निदोः कलैका जजति निधनतामादिमासः स एव ॥१३८॥

ेडिड्ड प्रङ्गेष्वादितिजेडिद्या, द्वितीये दिने संस्कारः, एवं क्रमेण जरामरणम् । पुनस्त्रयोदशमे दिनेऽविद्या, चतुर्दशमे संस्कारः, एवं क्रुष्णनवस्यां जरामरणम् । पुनर्दशस्यामिवद्या, एकादश्यां संस्कारः, एवं क्रमेण शुक्रव्यष्ठ्यां जरामरणम् । पुनः सप्तस्यामिवद्या, अष्टस्यां संस्कारः, कृष्णतृतीयायां जरामरणम् । पुनश्चनुष्यामिवद्या, पञ्चम्यां संस्कारः, एवं क्रमेणामावास्यां(स्यायां) जरामरणमिति पृथिव्यप्तेजोवाय्वा-काशस्वभावेन ऋतौ पञ्च परिवर्ता मता इति । एवमेकपक्षो हस्यः, मासो दीर्घः, ऋतुः प्रहृतः। पत्रः सत्ववर्मी, मासो रजोधर्मी, ऋतुस्त्वमोधर्मीति । एवं पञ्चप्रकारैः ऋतुरिष् च भवेत् । सर्वते द्विद्यासात् । यस्मिन् मासे इन्दोः कर्लका व्रजति निधनतां द्वयोमिस्ययोरादिमासः स एव तृतीय इति चतुःपश्चितेः कर्लाक्षयतः ॥१३८॥

षण्मासर्तुत्रयेण ग्रहणमपि भवेद् द्वादशाङ्गप्रतीत्या षष्ठोऽर्कस्यर्तुभेदश्चरणगतिवशाच्चन्द्रमध्ये प्रविष्टः । तस्मिन् स्पर्शाङ्गमध्ये ग्रसति सचरणं राहुरिन्द्वकयोश्च ओषध्यः सिद्धिदास्ता दिननिशिसमये राहुणाऽऽलोकिता ये ॥१३९॥

इदानीं मङ्गलादीनां क्षेत्राण्युच्यन्ते-

भौम: शुको बुघेन्दू रिवबुघभृगवो भौममन्त्र्याकमन्दा मन्त्री मेषादिराशौ प्रतिदिनसमये क्षेत्रिणः सर्वकालम् । शान्ताविन्द्वकराशो बुघभृगुकुजमन्त्र्याकराशिश्च पृष्टौ वश्याकृष्टौ वियोगे प्रभवति मरणे क्षेत्रिणोऽस्मिन् यदि स्यात् ॥१४०॥

भोम इत्यादि । इह भोमादयो ग्रहा मेषादिराशो क्षेत्रिणः। मेषे भौमः, शुको वृषे, बुधो मिथुने, इन्हुः कक्टे, रिवः सिंहे, बुधः पुनः कन्यायाम्, भृगुस्तुलायाम्, भौमो वृश्चिक, मन्त्रीति वृहस्पितिधंतुषि, आकिरिति शनिमंकरे, मन्द्र इति पुनः शनिः कुम्भेऽपि, मन्त्री मोन इति । प्रतिदिनसमये द्वादशलग्नोदये क्षेत्रिणः सर्वकालं भोक्तार इत्ययं। इह शान्तौ कर्माण, इन्द्रकंराशोति कर्कर्टीसहे हे राशी, बुधराशी हे मिथुनकन्ये पुष्टो, शुक्रराशी [2104] हे 'वदये वृषतुले, "आकृष्टी कुजराशी हे मेथवृश्चिक, मन्त्रियाशी हे ज्ञान्यात्री क्षेत्रिणे नहान्य-भोगवशेनास्मिन् स्वत्रेत्रे यदि स्यात्तदा नान्यस्मिन् कालेऽन्यप्रहेणाविधितो राशिस्तत्मलदायको भवति पूर्वोक्तकर्मस्विति नियमः ॥ १४० ॥

१. च. बाकुष्टी । २. च. वश्ये ।

पटले, १४१-१४४ क्लो.]

T 459

10

283

25

इदानीं भगवतो वक्त्रभेदेन शान्त्यादिकमुच्यते— शान्तावादौ सितास्यं सितकनकिनभं पौष्टिके हस्तयामे पीतं स्तम्भेऽग्नियामे कनकरिविनिभं मोहनेऽज्धी च रक्तम् । आकृष्टौ पञ्चमे स्याद् रविजलदिनभं षष्ट्यामे च वश्ये कृष्णास्यं मारणेऽद्रौ कषणसितमिहोच्चाटनेऽहौ निशान्ते ॥१४१॥

शान्तावित्यादि । इह शान्तावादौ प्रथमप्रहरे उदयाद् भगवतः सन्ध्यासञ्चारवशेन शक्लमुखं पूर्वे नायको भवति, तेन शान्ती शान्तिविषये पूर्वसाधितमन्त्रध्यानेः प्रहरेकेण फलं साध्येत् । सितकनकिनभं हस्तयाम इति द्वितीयप्रहरे अमणवशात् पश्चिममत्तर-मधीं पूर्वे नायको भवति, तेन मिश्रेण पौष्टिकं साधयेत् । पौतं पश्चिमवक्त्रं मध्याह्नात प्रहरमेकं नायकम्, तेनाग्नियामे तृतीयप्रहरे स्तम्भविषये सिद्धिदम् । चतुर्थप्रहरे कनक-रविनिभं पीतरक्तं विमिश्रं नायकम्, तेन मोहनं कूर्यात् । एवं पञ्चमे प्रहरे रक्तमखं नायको भविष्यत्याकृष्टी । षष्ठे रक्तकृष्णं मिश्रं नायकस्तेन वश्यं साध्येत । एवं कृष्णास्यं मारणेऽद्राविति सप्तमे प्रहरेऽर्घरात्राविति । कषणसितिमहोच्चाटनेऽहावि-त्यन्तिमे प्रहरे निशान्तादृदयपर्यन्तिमिति । एवं प्रहरभ्रमणभेदेनाष्टास्यः कालचको भगवान यदा, तदा चतुःसन्ध्याभेदेन चतुश्चरणो भवति, अर्धप्रहरभेदेन षोडशभूज इति सिद्धः। एवं भूजभेदेनाष्टी कर्माणि दिवायामध्य्रहरभेदेन रात्री चेति नियमः। चतुःसन्व्याभेदेन चत्वारि कर्माणि - पूर्वसन्ध्यायां शान्तिकम्, मध्याह्ने स्तम्भनम्, अस्तङ्गते आकृष्टिः, अर्धरात्रौ मारणमिति । अत्राप्यष्टाननस्य प्रज्ञा द्विभुजेति पूर्वापरसन्ध्याचरणद्वयम्, मध्याह्नादर्धरात्रं भुजद्वयी, समस्तमहोरात्रं मुखमिति भावनानियमः कर्मसाधने ॥१४१॥

अस्माद् वृत्ताद्यद् द्वितीयं तत्स्वोधमिति । पृथ्वोतोयाग्निवाता न शशिरविसुरा जीवभोक्तार एते एषां जीवश्च भोक्ताऽप्यशुभफलवशाद मन्यतेऽहं च भक्तिः। दृष्ट्वा दुःखान्रको ग्रहभुजगस्रान् प्राथंयेद् भूतवृन्दं मोक्षे यस्य प्रसादात् प्रभवति मनसस्तं न शान्ति करोति ॥१४२॥

इदानीं जातबालस्य श्वासलक्षणमुच्यते-आदिश्वासोऽगुणात्मा त्रिविधगुणवशात् सोऽपि याति त्रिसंख्यं तिथ्याख्यास्तेऽपि जाता विषयगुणवशात्तेऽपि भूयस्त्रिगुण्याः । जाता भूताव्यिसंख्या पुनरिप च चतुरचारभेदैर्हतास्ते नाडचर्घश्वाससंस्था पुनरपि घटिका श्वाससंस्था द्विगुण्याः ॥१४३॥ दितीयः श्वासो निर्गतः, रजोवशात् तृतीयः, तमोवशाच्चतुर्यः। तेषु पूर्वोञ्गुणो न गह्मते । तेन सह त्रिसंश्यं गण्यते व्यापकत्वात् । पुनस्ते सत्त्वरजस्तमःस्वभावाः प्रत्येकं पञ्चविषयगुणभेदेन एकेकः पञ्चविद्यो भवति, तेन तिष्यास्या इति पञ्चदश, तेऽपि भवस्त्रिगुण्याः कायवाक्चित्तभेदेन जाता भुताव्धिसंख्या इति पञ्चचत्वारिशत् । पुनर्पि च ततः चारभेदेहंतास्ते इति चन्द्रादित्ययोश्चारा चतुर्घा शीघ्रमन्दवक्र-निर्गमपदानां धनवृद्धिक्षय-ऋणवृद्धिक्षयभेदेनेति । तैरचतुभिहंता नाड्यर्घश्वाससंख्या इति अशीत्युत्तरशतसंख्या, पुनरिप द्विगुण्याः श्वाससंख्या घटिकाश्वाससंख्या भवति पष्ट्यत्तरिशतसंख्या [210b] प्रज्ञोपायस्वभावत इति । सा एकनाडी एकमण्डल-वाहिनी बालस्य वामे दक्षिणे वा। ततो द्वितीया ततीया ॥१४३॥

द्वित्रयब्धीष्वृत्वगाष्ट्रग्रहदशभिरियं वर्धिता कालनाडी तस्माद् वर्गप्रभेदेद्विविधपथि गता कालनाडी समन्तात्। त्रैलोक्यं पूरयन्ती समसूखफलदा चन्द्रसूर्यप्रचाराद यावद् वेदाहिवह्निः प्रभवति नियता कृतिका शुक्तिहस्ता ॥१४४॥

दिज्यवधी दिवत्यादिना दशिभिरियं विधिता कालनाडी मध्यमा दशमण्डल-वाहिनी वामे दक्षिणे वींधता, अहोरात्रेण षष्टिमण्डलानि यावदिति। तस्मादवधे-वंगंप्रभेदैः पूर्वोक्तेः ककारादिवर्गेर्मकरादिलग्नैरिति । दिविधपथि गता कालनाडो समन्तात् । त्रैलोक्यमिति शरीरं पूरवन्ती द्वासप्ततिसहस्रनाडीः पूरवन्ती । समसुख-फलदा सा चन्द्रसूर्यंप्रचारादिति ललनारसनाप्रचारात्, पञ्चमण्डलवाहत इति इवासनिर्गमात् कालनाडीभेदः। द्वितीयो भेद आधाने गर्भस्य कालनाडीवर्गभेदेन उत्पादाय वर्धते । तत्र वर्गस्यैकस्य एकः, षट्चकेषु मध्यमाऽवध्तो । द्वयोर्वर्गश्चतस्र उष्णीषकमलनाड्यो नाभौ प्रथमपरिमण्डलम् । त्रयाणां वर्गो नव, ता हृदयनाड्योऽष्ट नाभौ द्वितीयपरिमण्डलम्, नवमी चन्द्रजन्मस्थानम् । चतुर्णा वर्गः षोडश, ता ललाटे नाभिचकराशिपरिमण्डलबाह्ये । पञ्चानां वर्गः पञ्चविश्वतिस्तानि ललाटे चन्द्र-पदानि । पण्णां वर्गः पट्त्रिंशत्तेषां मध्ये कण्ठे द्वार्त्रिशच्चत्वारो मङ्गलव्यवहस्पति-शुकाणां जन्मस्थानं नाभौ चन्द्रपदपरिमण्डलवाह्ये। सप्तानां वर्ग एकोनपञ्चाशत कण्ठे द्वितोयपरिमण्डले राशिपदान्यष्टचत्वारिशत्, एका सूर्यस्य जन्मस्थानं नाभौ च। अष्टानां वर्गंश्चतुःपष्टिनीभिचक्रे पष्टिमण्डलवाहित्यः षष्टिश्चतस्रः शून्यनाड्यः। नवानां वर्ग एकाशीतिः, दशानां शतम् । एतद'शीत्यृत्तरशतं वाह्यभेदेन रजीर्घीम-त्वाद् द्विगुणं षष्ट्युत्तरित्रशतसन्धिप्रदेशेषु ज्ञातव्यम् । एवं यथा कण्ठे तथा गृह्यचके, यथा ललाटे तथा वच्चे, यथा उज्जीपे तथा वच्चमण्यमे चत्वार इति शरीरव्याप्तिः। याबद्वेदाहिबह्निरिति चतुर्विवतिपक्षाः पष्टयुत्तरित्रधतदिनानीति । एवं कालचक-वर्षायनकाल-ऋतुलग्न-पक्ष-दिनभेदेन नाडीभेदः सिद्धः, द्वितीयसन्ध्याप्रहरार्धप्रहर-

आदीत्यादि । इहोत्पन्नस्य वालस्य य आदिश्वासः प्रथमोऽसी, अगुणातमा

१. भो. Dal Bahi sKyo gNas So (गर्भजानां जन्मस्थानम्) इत्यधिकम् ।

888 भेदेनेति नियमः । एवं भगवती तद्योगात् प्रभवति नियता कर्तिका गुक्तिहस्ता । इह भगवान् वर्षशुद्ध्या, भगवती प्रतिदिनशुद्ध्या । दिवा कर्तिका, रात्रिः कपाल-मित्यर्थः ॥१४४॥

इदानीं कवर्गचकाण्युच्यन्ते — चकाणीष्विव्धसंस्या विषयगुणवशात् कायवाक्चित्तभेदै रक्षां कुर्वन्ति भर्तुः समसुखफलदान्यष्टध्मादिदेव्यः। एवं सूर्यंस्य भर्ता परमशशिकलालिङ्गितो विश्वरूप: देवी बुद्धामराणां विषयविषयिणां राहुचन्द्रार्कवन्द्यः ॥१४५॥

चक्राणीत्यादि । इह ककारादीनि व्यञ्जनानि त्रिशत्, अकारादयः स्वराः पञ्च-दश, एते पञ्चनत्वारिशत्। विषयाः पञ्च गुणास्त्रयस्तद्वशादिति पञ्चस्वरह्नस्वदीर्घ-यक्ता ङादय आत्मिबन्दुविसर्गयुक्ताः पञ्चदश । एवं दशाराणि चक्राणि त्रिशत्, सकार-पर्यन्तमन्योन्यानुवर्तीनि । लाद्यानि षडाराण्यकारपर्यन्तानीति चक्राणीष्विधसंख्या विषयगणवज्ञात कायवाकचित्त भेदै रक्षां कुर्वन्ति भर्तः कालचकस्य महासुखस्य। समसुखफलदान्यष्ट्रधमादिदेव्य इति । अत्र ङकारचक्रमुच्यते सर्वचक्राणां बाह्येऽ-ध्यात्मिन लोमाग्रे ङ ऊर्ध्वे [211a] ङि पूर्वे ङ् दक्षिणे ङ् उत्तरे ङ्ख पश्चिमारे ङ्ख वायव्ये डू ईशे डू नैऋत्ये डी अग्नी डा पाताले। एवं घगखकलोमधाती, चर्ममांसे चवर्गः, रक्ते टवर्गः, रसे पवर्गः, अस्थिषु तवर्गः, मज्जसु शवर्गो विलोमेन । एवं विशन्यकाणि दशाराणि मन्जान्तानि । ततः पडाराणि पूर्वारे ल, दक्षिणे लः, उत्तरे लं, पश्चिमे ला, अघो ला:, ऊर्घ्वें लां नाडीषु प्राणादिषु । एवं व र य ह इति । तथा रजिस अल् पूर्वे, अलः दक्षिणे, अलं उत्तरे, आल् पश्चिमे, आलः अधिस, आलं मूर्धिन । एवं ओ अर् ए अ इति । शुक्रधातौ रक्षा ॡ पूर्वे, ॡ: दक्षिणे, ऌं उत्तरे, ³ल्ल पश्चिमे, लृ: अवसि, लृं ऊर्घ्वे । एवं उऋ इ अ इति लोमादिशुऋपर्यन्तं नव धातवः । ततो विज्ञान-धातुरचन्द्रमध्ये धूमादिभिः श्न्यैर्वेष्टित इत्यर्थः । तत्र पञ्चविषयश्न्यं त्रिगुणशून्यं धूमा-दिकम्, ततः कलाबिन्दुदर्शनम्, ततो विम्बदर्शनमित्यर्थः। एवं सूर्यस्य भर्ता परमशिश-कला षोडशो, तयालिङ्गितः सन् सर्वकालं विश्वरूपः सर्वाकारत्वात् । देवोति धातवः, बुढा इति स्कन्धाः। तेषां किविशिष्टानाम् ? अमराणां जातिजरामरणरहितानाम्, विषय-विषयिणां च राहुचन्द्रार्काणामपि वन्द्रो महाक्षरसुख: कालचक्रो भगवानिति ॥ १४५ ॥

अत ऊर्घ्यं चत्वारि वृत्तानि सुबोधानि ।

या भर्तुः सूक्ष्मरूपा वरगुणविषयाभ्यन्तरा बाह्यमुद्रा डाकिन्यस्तास्त्रिधातौ परमभयकराः क्रोधचित्तप्रसूताः। पटले, १४४-१५० इलो.] 224 भर्तुर्यानीन्द्रियाणि त्रिविधभवगतं कायवाक्चित्तवज्रं तान्येते वज्रडाकाः स्वस्वविषयगुणालिङ्गिता मङ्गलाद्याः ॥१४६॥ रूपं शब्दं रसो गन्धमपरमपि तत् स्पर्श्वमो रजश्च सत्त्वं चित्तं क्रमेण प्रकटमपि तथालिङ्गितं राहुणा च। तेषां पण्मन्दचाराद् विविधगतिरियं शीघ्रवकादिचारा-दष्टानां षट्पदेऽष्टौ खलु विषयगुणा संस्थिताश्चक्ररूपाः ॥१४७॥ आदिश्वासोऽष्टभेदो विषमगुणगतश्चावृतो डाकिनीभि-र्धुमाद्याभिः समन्तात् त्रिविधगतिवशाद् भ्राम्यते षड्गतिस्यः ।

यः श्वासं छेदयित्वा विशति जिनतनं कालचकः स एव ॥१४८॥ श्वासच्छेदावसाने त्रिविधगतिरियं षट्प्रकारा न चास्ति बिन्दो रोघे समन्तात् परमविभुमुखं वर्ततेऽनन्तकालम् । त्यक्तवा संसारसौख्यं परमगुरुसूखं योगिना भावनीयं चर्यां श्रुङ्गाररूपां परमभयकरां योगिनीनामत्ष्टिम् ॥१४९॥

तन्मध्ये कालचकः स्फ्रदम्तकलालिङ्गितः शुद्धकायो

इदानीं वज्रश्वासे ग्रहचरणप्रवेश उच्यते-भर्तुः श्वासे समस्तं ग्रहगणचरणं नीयते कालयोगात श्वासे खं खं ख खाक्ष्यग्निजलनिधिगते चोदिते सर्वशन्ये। एतैर्वर्षेरच बाह्ये परमविभुपदे सुष्टिसंहाररूपे ज्ञातव्यं स्वस्वमानैजिनपतिचरणं श्वासमध्ये गतिस्थम ॥१५०॥

भर्तुरित्यादि । इह यथा बाह्ये तथाऽध्यात्मनीति न्यायाद्वाह्ये शक्तिश्वासो वर्ष-धर्मः, तैर्वर्षेर्यदा युगान्तं भवति सं सं स साक्ष्यग्निजलनिविरिति द्वययुताधिकत्रय-श्चत्वारिशल्लक्षाणि वर्षाणां श्वासानां शक्तेः। एवं सर्वेषां सत्त्वानाम् । एषां श्वासाना-मन्ते श्वासमेकं वर्षम्, बाह्ये लोकघातौ मध्यमायां श्वासमेकं यस्मिन् वर्षे कलेनिर्गमः कृतयुगप्रवेशः । एवं चतुर्युगैर्दशमण्डलनाडीप्रवाहः शक्तेः । एकेकमण्डलं द्वात्रिश-त्सहस्राधिकं चतुर्वर्षलक्षामिति । एवं कृते चत्वारि मण्डलानि वामनाड्यामाकाशवायुतेज-उदकानीति । तत्रैव त्रेतायामेकमण्डलं वामनाड्यां पृथ्वीलक्षणम्, ततो मध्यमाप्रवेशः रे. भो. Rab Tu dBye Ba (प्रमेर्दै)। २ और प्रियमिक किसी किसी प्रमान करा । ततो दक्षिणे Late Vraj Vallach हम्मिक प्रमान करा गृहोत्वा मध्यमाकालः। ततो दिक्षणे हैं. भो. हा Courtesy: और Tarun (Divivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallach Divivedii, 15 प्रमान प्रमान करा स्वारः पृथिवीमण्डलम् प्रमान करा स्वारः प्रमान करा स्वारः प्रमान करा स्वारं प्रमान करा स्वरं प्रमान करा स्वारं प्रमान करा स्वारं प्रमान करा स्वरं प्रमान करा स्वरं प्रमान करा स्वारं प्रमान करा स्वरं प्रमान करा स्वर

पटले, १५०-१६२ वलो.]

आकाशमण्डलम् । तत ऋतुः पूर्णो भवति । ततो मध्यमाश्वासानामन्ते एकः स्वासोऽ-धिकः सर्वालोकं करोति । यदि तेन श्वासमात्रेण जाग्रदवस्थायां तिष्ठति स श्वासः सर्व-सत्त्वानां निद्रावस्थायां भवति । एवं द्वययुताधिकत्रयदचत्वारिशल्लक्षदवासेनाध्यात्मनि ग्रहाणामेक ऋतुर्भवति । मध्यमायां शून्यमण्डलान्ते ज्ञानमण्डले प्रवेशो भवति, तेन स ग्राह्य इति । एवं ज्ञातव्यं स्वस्वमानैजिनपतिचरणं श्वासमध्ये गतिस्थमिति नियमः 11 240 11

अत ऊर्ध्वं चतुर्दशवृत्तानि सुबोधानीति [211b]।

28€

15

श्नये मन्दप्रवेशः स्वदिनगतिवशाज्जायते वै युगान्ते रेवतीभोगशेषैः। शन्याकाशाम्बराब्ध्यब्धिशश्यरदिनै खं खं खं खाब्धिनेत्रैः स्वगतिगतदिनैस्तत्र राहप्रवेशः स्रं सं सं सर्वातगतिगतिन देवेवमन्त्रिप्रवेशः ॥१५१॥

खं खं शन्याम्बराष्टाहिनयनदिवसैमं क्ललस्य प्रवेशः सुर्यादीनां प्रवेशः ख ख ख ख नयनाग्न्यव्धिसंख्यैदिनैश्च । खं खं खं खाब्धिनागैकशरगतदिनैस्तत्र चन्द्रप्रवेश-स्तस्मिन् काले विनाशः प्रभवति जगतः स्वस्वमानेन राजन ॥१५२॥

नाडीसंचार एष प्रभवति च ततश्चन्द्रसूर्योदिते च एकद्वित्र्यब्धिबाणा रसगिरिवसवो विधता गुह्यनाडी। रन्ध्राख्या वारनाडयो भवति च दशमी सूक्ष्मनाडयूर्ध्वमार्गे भयः सा वर्गभिन्ना सगुणसविषयाश्चकनाडघो भवन्ति ॥१५३॥

उष्णीषे हृत्प्रदेशे शिरसि शशिपदे कण्ठदेशेऽर्कचारे नाभौ वै चक्रनाडचो युगभुजगनृपाश्चन्द्रचारैरभिन्नाः। द्वात्रिशत्तद्द्विगुण्याः सकलरविपदैमिश्रितैरप्यभिन्ना एकाशोतिः शतं यत् करचरणगताः सन्धिनाडचो द्विभेदाः ॥१५४॥

उप्णीषे हृत्प्रदेशे शशिरविचरणे कण्ठचक्रेऽवशेषा एकाशोत्यन्तिमा या प्रकटदशविधास्ते ग्रहाः सौम्यरौद्राः। तेषामाद्यन्तभागं विभुचरणगतं भुज्यते कालनाड्या वारान्तं चाप्टि<mark>क्पुण्यत्व भूत्रभूतेमा Tarun Dwivedi. Surviving Son of Late</mark> Vraj Vallabh Dwivediji (गुड्यप्रमुद्धे 19कूर्याकृनि-e<mark>स्ट्युप्यद्विम्चे</mark> प्रविष्टे । वारान्तं चाप्टिक्पुण्यत्व भूत्रभूत्वनजननी डाकिनी वज्जदहा ॥१५५० ।

आदी या शुन्यरूपा विषयगुणगता तत्स्वभावा बभव घातुस्कन्धान् प्रविष्टा पुनरपि च समा चक्षरादीन्द्रियेषु । जाग्रत्स्वप्नादिविष्टा परमसुखसमानाहते संप्रविष्टा सा विद्या बुद्धमाता कुल्छिशपदगता योगिनाऽन्वेषणीया ॥१५६॥

भर्तः कायप्रभावाद् भवति वरतनौ योगिनां दिव्यचक्षः श्रोत्रं तद वाक्प्रभावात् परहृदयगतं ज्ञायते तस्य चित्तात । प्रज्ञाकायप्रभावात् त्रिविधभवगता पूर्वजानुस्मृतिः स्यात् प्रज्ञाया वाक्प्रभावात् प्रभवति खसमा सर्वदा सर्वगिद्धः ॥१५७॥

प्रज्ञाज्ञानस्वभावाद् भवति समसुखं सर्वदाऽनाहतं यद अक्ष्णाऽद्र्यं त्रिविधमपि भवं दिव्यचक्षःप्रभावात । दिव्यश्रोत्रप्रभावाद् हृदयसुखरवः श्रुयते प्राणिनोक्त एवं स्पर्शादि सर्वं भवति नरपते कायवाक्चित्तयोगात ॥१५८॥

या नाडचोऽपानमध्ये त्रिविधपथगता मत्रविटशकवाहाः प्राणात्तासां प्रचारो भवति नवविधश्चान्तिमो बद्धवक्त्रम । श्रोत्रे घाणे च नेत्रे दिविध इति भवेल्लम्बिकायां सजिहे बिन्दावण्णीषरन्ध्रे भवति च दशमी मुद्रितोऽज्ञानिनां यः ॥१५९॥ प्राणापाने निरुद्धे क्षुभितश्रशघरः सूर्यविम्बं प्रयाति अब्जे वज्रप्रबद्धे द्रवति पुनरसौ सूर्यंबिम्बार्चिषा वै।

एवं चैवं तथैवं त्रिविधमि भवेन्नापरं किञ्चिदस्ति ॥१६०॥ ग्रस्ते चन्द्रार्कबिम्बे नभसि न च दिवा नैव रात्रिः कदाचित् सा सन्ध्या देहमध्येऽप्यमृतपदगता योगिनां सर्वेकालम् । पक्षक्षीणो यथेन्दुर्वजित समरसं सूर्यविम्बेऽम्बरस्यः प्राणागनक्षये वै स्फटमपि च तनौ सिद्धिकाले सरोधः ॥१६१॥

विज्ञानं ज्ञानमेकीभवति च मरुता चन्द्रसूर्ये निरुद्धे

नष्टे चन्द्रार्कविम्बेऽप्युभयपथि सदा प्राणवाते निरुद्धे

15

10

10

15

भावाभावेकभूते त्रिविधभवगतेऽनाहते तस्मिन् काले सयोगी व्रजति परपदं न द्वयं यस्य किञ्चित् ।।१६२॥

कोधा वद्धाः सदेव्यः खलु रसकुलिशा भूमिगभदियश्च प्रत्यक्षाः खे भवन्ति प्रमुदितहृदया योगिनः सिद्धिकाले । प्रत्यषे चार्घरात्रे भवति शशिदिने चेष्टसिद्धिश्च तस्य रत्नेर्वा पृष्पवृष्टिभवति भृवितले कालयोगात् प्रकृष्टा ।।१६३।।

स्वच्छः कायोऽण्नष्टः प्रभवति खसमो लक्षणाद्यैः प्रपूर्णः स्वच्छं त्रैलोक्यमेवारणविरहितं स्वप्नवद भाति विश्वम । भाषाऽच्छिन्ना समन्तात् परहृदयगताऽनेकभाषान्तरेण चित्तं सत्सौस्यपूर्णं न चलति सहजालिङ्गितं सर्वकालम् ॥१६४॥

इदानीं लोकधातुपसंहार उच्यते-

भूमेराकृष्य चाण्न् जलशिखिपवनं प्रेषयेत् तोयधातौ तोयाद् भूवित्वययं शिखिनि च शिखिनो भूमितोयानिलाणुम् । वायौ चाकुष्य बायोः क्षितिजलशिखिनं कर्मवातश्च शन्ये अन्यं क्षेत्रं गताऽन्ये त्रिविधभववशात् कर्मवाताहता ये ॥१६५॥

भूमेरित्यादि । इह बृद्धस्य भगवतो धर्मदेशना द्विधा-एका लोकसंवृत्या, द्वितीया परमार्थतः। तत्र लोकसंवृतिमाह-

> अक्षजा घीरनाकारा साक्षाद्वेदाणुसंचयम्। सत्काश्मीरमताम्भोधिवैभाषिकमतं मतम् ॥ इति ।

एवं तीर्थिकाः सर्वे परमाणुसंचयग्राहका इति। तेन बाह्ये बुद्धक्षेत्राणां लोक-धातृनामप्युत्पादक्षयो वेदितव्यः। स च सत्त्वानां शुमाशुभफलभोगहेतोभवति, यावत् सत्त्वराधिस्ताविदिति नियमः। तेन लोकघातुपसंहारकाले कर्मवातोऽयं लोकघातुर्येनो-त्यादितः पूर्वं बुद्धनेत्रं च, तस्य द्विषा स्वभावः—एको निश्चल आकाशेषु नक्षत्रवल्लोक-घातोर्बुद्धक्षेत्रस्य न कुत्रचिद्दिश्च गमनम्, द्वितीयो भ्रमणस्वभावो राशिचक्रवदाकारो । एवं छोकधात्वन्तर्गतानां स्थावराणां निरुचलस्वमावः, प्राणिनां चलस्वभावः। कर्मवात इति विज्ञानधर्मतः। एवं परमाणुघटितानां शरीराणामुपसंहारः, तेन लोकधातूपसंहारः बुढ्छेत्रोपसंहारकाळे आवर्तविवर्ताळा वेसाराणानुपसहारः, तन लाकधातूपसहारः रित भूमेये परमाणव अद्भाविकपुरः हिन प्रकृतिकिष्टिका क्षेत्र क्ष

भूमिपरमाण्त् पृथक् पृथक् कृत्वा तोयघातो अप्परमाण्राशो क्षिपति । एवं तोयघातो-राकृष्य वह्नौ क्षिपति, बह्नैराकृष्य वायौ क्षिपति, बायौराकृष्याकाशे पृथक् पृथक् संचरित । एवं लोकधातुपसंहार: । स पुनः कश्चित् पाताले कालाग्निर्नाम देवता, सा लोकधातं दहति भस्मं करोतीति यः कालाग्निः, स एव परमाणसंचयः। अपरधर्म-भक्षणतो यः परमाणुरहितः, स न किञ्चिह्हित न च भक्षयतीति । एवं स्थावराणां विनाशे जाते सति ये विज्ञानवर्मिणः प्राणास्तेऽन्यं क्षेत्रं लोकघातं गताः, यत् कर्मवातेन जनितं तेषामुपभोगाय । एवमनन्ताः कर्मवाता लोकधातुजनका बुद्धक्षेत्रजनकाः, यथा प्राणिनां प्राणाः पथक् पथक् शरीरजनका इति स्थावराणां वृद्धिजनका इति सिद्धान्तः संवृती ॥ १६५ ॥

इदानीं कर्मवातयुक्तानां विहरणम्च्यते-

बुद्धक्षेत्रं समस्तं त्रिभुवनजनकोऽकर्मकं वीक्षयित्वा शुद्धाणी सर्वबुद्धा उभयसमरसे वेष्टिते बोधिसत्त्वाः। प्रत्येकैकं रसाणावभयक्लवशाद वेष्टिते वज्जपुत्राः भूम्याद्याश्चाम्बरान्ताः सकलकूलगताश्चाचलाद्यां प्रविष्टा ॥१६६॥

बुद्धक्षेत्रमित्यादि । इह भद्रचरीपाठे भगवतोक्तं तद्यथा-"एक रजाग्रि रजोपम-बुद्धा बुद्धसुताश्च निषण्णकु मध्ये" (ग० सू० ५६.३) इति वचनात् संवृत्या विहरणं बुद्धानां यत्तदाधारवर्जितं निराधारं न भवति, निरावरणधर्मेण पूनः परमार्थतो विहरणं नास्ति । उक्तं प्रज्ञापारिमतायां धर्मोद्गतपरिवर्ते—"बुद्धानां क्त्रचिद् गमनं वाऽऽगमनं वा न भतं न च भविष्यति न भवित'' इति । तेन एकरसाग्रे शद्धपरमाणौ सिद्धरसे सर्व-धातुवेधके आधारे सर्वबुद्धाः समस्ता ये शुन्यलक्षणा निरावरणा इति । एवं *[212a] बुद्धक्षेत्रं समस्तमकर्मकं कर्मवातरहितम्, त्रिभुवनजनको ज्ञानकायेन वीक्षयित्वा शुद्धाणौ सर्वबृद्धास्ते सार्धं विहरन्ति, उभयसमरसे शुद्धाणाविति । प्राकृतरसं सिद्धरसं कृत्वा संसारिणं बोधिचित्तमक्षरं कृतमित्यर्थः। बोधिसत्वा वेष्टित इति प्रणिधिचित्तेने-पन्मात्रावरणैर्युक्ता वज्रपुत्रा इति । प्रत्येकैकं रसाणाविति प्रज्ञोपायोभयधर्मे स्थिताः, अचलादिषु स्थिता इत्यर्थः । एवं भम्याद्यणी रागरहितादिकृत्स्नानि साक्षात्कृता-न्यनन्तान्यचलाद्यां प्रविष्टानीत्यर्थः । इहाणुशब्देनाचलादयो भूमय उक्ताः, न परमा-णवः । शुद्धाणुशब्देन आधारभृता द्वादशभूमयः, सर्वावरणक्षयत इत्यर्थः ॥ १६६ ॥

तै: साधं वज्रसत्त्वो विहरति गगने वर्तकालं हि यावद् धत्ते सन्धारणोऽणं क्षितिजलहतभुग्वायुश्न्यस्वभावम्।

^{*} पत्र सं० २१२ (a + b) नोपलम्यते । अतः भोटपाठसाहाय्येन पुनब्द्धत्य पाठोऽत्र

T 461

25

15

मन्यानो मन्ययन् हि पृथगणुप्तकलं यावदेकत्वमेति तेषामन्योन्ययोगः पुनरपि च भवेद् मुख्यभावेऽल्पभावः ॥१६७॥

तैः सार्धं बज्जसस्वो विहरति गगने वर्तंकालं हि याविति। इह यावत् सत्वानां पुष्पज्ञानसंभारो न भवतः, तावत् तैर्वृद्धोत्पादो न दृश्यते, अतो विहरति गगने धर्मकायगत इत्यर्थः। इदानी लोकधात् दृश्य उच्यते—संवर्तंकालिमिति। "संवर्तो अञ्च आख्यातः"। अत्रदं पदं नास्ति। संशुद्धाकारेण धर्माधर्मयोः प्रवृत्तत्वाद् वर्तः, तस्माद्धतोः कर्मवातः त्रिविधो भविति—सन्धारणः, मन्धानः, संस्थानश्च। तेषां संधारणः क्षित्याविषरमाणुसन्दोहं धत्ते, यथा वृष्टिवात उदकपरमाणुसंदोहं धत्ते। ततो मन्धानः ज्ञित्वां त्रप्तान्तं परमाणुसन्दोहं मञ्ताति, यावद् धातवो लवणिमव कठिनतां व्रजन्ति। एवं तेषामन्योग्योगो भवेत्, मुख्यभावेऽत्यभावः। अतः कठिनधर्मे भूमिपरमाणुर्मृद्धाः, शेषा अल्याः। एवं जले जलम्, अग्नाविगनः, स्पन्दात्मके वायुः, रसे सकलं समानम्, स्वस्वगणरहितम्॥ १६७॥

बुद्धक्षेत्रं समस्तं विरचयति महासर्वसंस्थानवायुः प्रत्येके लोकधातौ पुनरिप च महाचक्रवालं समन्तात् । तन्मध्ये लोकधातुः प्रभवति च महाकर्मभूमिस्वभावः शेषा भोगस्वभावा विषयसुखकराः सर्वरत्नप्रपूर्णाः ॥१६८॥

ततो बुद्धक्षेत्रं समस्तं विरचयित महासर्वसंस्थानवायुरिति। प्राणापानादिभिर्दश-भिरित्यर्थः। यथा बाह्य आश्रितानां क्षयवृद्धिकारणानि, तथा देहेऽपि प्राणादीनाम् । प्रत्येके लोकघातौ पुनरिष च महाचक्रवालं समन्ताद् इति । यथा सत्त्वानां प्रत्येकदेहे लोम चर्म, तस्य बुद्धक्षेत्रस्य मध्ये कर्मस्वभावो लोकघातुरेको भवति, यथाऽवधूत्येका सर्वनाडीनाम् । लोकघातुशेषा भोगस्वभावा अन्या नाड्य इव । ते लोकघातवो विषयमुखकरा देहनाड्य इव । सर्वरस्तप्रपूर्णा इति यथा रुधिरपूर्णा नाड्यः । बुद्धक्षेत्रं लोकघातुसहितं भवति, यथा द्वासप्तिसहस्रनाडीसहिता कायोत्पत्तिः ॥ १६८ ॥

इदानीं लोकधाती मेर्वादीनां लक्षणमुच्यते—

पूर्वे शुद्धेन्द्रनीलः सकलगिरिपतिदंक्षिणे पद्मरागः
पृष्ठे कर्केतपीतः शशधरधवलश्चोत्तरे चन्द्रकान्तः।
मध्ये श्यामस्तदन्तर्गिहितमिह महामण्डलं तस्य गर्भे
आदौ चित्तस्वभावं द्विगुणमपि ततो मध्यतो वाक्स्वभावम् ॥१६९॥

पूर्व इस्यादि । इह पूर्व इति पूर्वविदेहाभिनुखः, शुद्धेन्द्रनीलः, वायुधमित्मकत्वात् सकलगिरिपतिरित्यर्थः । अन्तःस्या य र ल वाः । पूर्वे य । दक्षिणे पद्मरागो रकार- धर्मात्मकत्वात् । पिरचमे ककॅतपीतः, लकारधर्मात्मकत्वात् । शशयरधयलश्चोत्तरे चन्द्रकान्तः, वकारधर्मात्मकत्वात् । एवं य र ल वा चतुर्द्वपिषु ज्ञातव्याः । मध्ये श्यामः, शूत्यहकारधर्मात्मकत्वात् तदन्तिनिहत्तिमह महामण्डलं तस्य गर्भं इति, पूर्वमृक्तम् । आदाविति चित्तमण्डलं चित्तस्यभावम् । मध्ये तद् द्विगुणं वाक्कायमण्डलम् ॥ १६९ ॥

तस्मादन्यद् द्विगुण्यं शरदशगुणितं योजनानां सहस्रं तद्वाह्ये चक्ररूपं त्वृतुभिरपि ततो लोकघातुस्वभावम् । षट्चकैः षट्कुलैश्चानिलवलयगतं मण्डलं वेदलक्षे-द्वर्षेष्टस्तम्भेश्च कूटं नृपतिशशिकलाभिर्वृतं योनिरूपम् ॥१७०॥

मेरोः क्रिणकास्थाने ज्ञानचक्रम्, हृदयस्थाने चित्तमण्डलम्, कण्ठस्थाने वाङ्मण्डलम्, ललाटे कायमण्डलम् । तद्वाह्ये सर्वमण्डलानि लोकधातुस्वभावेनावस्थितानि ।
शरदशपुणितं योजनानां सहस्रमिति मेरोरूष्वे पञ्चाशत्सहस्रयोजनं कायवाक्षित्तनः
मण्डलम् । हृदये कालचकं मुदालक्षणं च । तद्वाह्ये पञ्चाशत्सहस्रयो वृद्यक्रकृष्यम् ।
ऋतुभिरिति पहुत्नां विशुद्धया लोकधातुस्थभावं पहुतुस्थभावम् । यदचक्रेः यद्कुलैश्चेति, उक्तपूर्वम् । योजनैवेदलक्षेः, अनिलबलयगतिमिति वायुमण्डलान्तं मण्डलम् ।
गर्भे द्वयष्टस्तस्भैश्च कूटं पोडशकलाभिः शुद्धम्, ते स्तम्भैः, गर्भे परिवृतं ज्ञानचक्रम्,
योनिरूपं सर्वसिद्धिजनकमिति मेष्टनिष्यत्तिः ॥१७॥॥

इदानीं भगवतः कायमानेन बाह्यमण्डललक्षणमुच्यते—

उष्णीषादूर्णमध्यं भवति जिनपतेः सार्धसूर्याङ्गुलं तु तस्मात् कण्ठाङ्जमेवं हृदयमपि ततो नाभिगृह्याङ्जमेवम् । पादोऽधो जानूरूकस्फिकमपि मनुभिस्तत्त्वतत्त्वैरच वेदै-रघोरः सार्धस्यैः स्वभुजभुजकराः खाक्षिराजाकमात्रैः ॥१७१॥

विंशत्येकाधिकं यच्छतमृतुनविभर्लोकमानं नराणां वेदैः सार्धेश्चतुर्भिजंलधिजलिथिभिः सार्धवेदैश्च वेदैः। उष्णीषं मस्तकाधो भवति जिनपतेः श्रीललाटं च नासा चिब्वन्तं नासिकाधो गलकमपि ततः कण्ठमूलाब्जमध्यात्।।१७२॥

तस्माद्धृत्राभिगृह्यं भवति नरपते सार्थसूर्येः क्रमेण गृह्याव्जं नाभिम्ले कुलिशमपि मुनेरूवं उष्णीष एव । कर्णा गृह्यावजनव्येऽक्षरमुखजननी शुक्रविन्दोः स्थितिर्या एषा श्रीवज्ञभूमिहर्युभयकुलवशात् कायवाक्चित्तचके ॥१७३॥

पटले, १७१-१७८ वलो.]

25

177

उज्जीषादिति । इह भगवतो जिनपतेः, उज्जीषाद्ध्वंम् ऊर्णमध्यमिति भ्रमध्ये सार्यसूर्वाङ्गलं भवति सार्थद्वादशाङ्गलिमानम् । तस्मात् कण्ठाःकमेवं सार्थद्वादशाङ्गलि-मानम् । **हृदयमि** सार्थद्वादशाङ्गुलि । ततो नाभिगुह्याष्ट्रमेविमिति नाभिकमलं सार्थद्वाद-शाङ्ग्रिल । एवं गुद्यान्त्रं सार्धद्वादशाङ्ग्रिल । तत उठणीपाद गुद्धापद्यान्तं सार्धद्वाषप्रध-ङ्गलिकायमानम् । पादोऽघो मनुभिरिति चतुर्दशाङ्गलिभः। जानु तत्त्वमिति पर्वविश्वतिः, करू अप्येवम् । पादोच्छ्यो वेदैरिति साधेचतुरङ्गुलिभिः। एवं जानुसन्धिः स्फिकमपि चतुरङ्गिलिमः। एवं सार्धद्वाषष्टयङ्गिलिभः स्फिकात् पादाधोऽन्तम्। तथा पञ्जविशत्यधिकशतं बृद्धकायः । अर्घोरः सार्धसूर्येरिति सार्धद्वादशमानेः । स्वभुजभुजकराः खाक्षिराजाकंमात्रेरिति विश्वतिभिविद्वः, पोडशिमरुपवाहुः, द्वादशिभः करो मध्य-माङ्गल्यन्तम् । एकेन करोपबाहुसन्धिः, बाहूपबाहुसन्धिः । एवं सार्धद्वाषष्ट्यञ्जलयः । यया वामे तथा दक्षिणेऽपि । सर्वत्र पञ्चितिहास्यधिकज्ञातं कायमानं चतुरस्रम् । तदेव सत्त्वानां चतुर्हस्तं नराणां पण्णवत्यङ्गलि अध्विधो चतुरशीतिः, तथा नरा न लक्षण-यक्ता इति सिद्धम् । वेदैरिति चतुर्भिरुष्णीयमानम् । सार्धचतुर्भिः शिरउच्छयः, चतुर्भिलंलाटम्, चकारात् चतुर्भिनासिका, सार्धचतुर्भिनासिकाधिश्चबुकान्तम. चर्त्रभः कण्ठः। तस्माद् हुन्नाभिगृह्यं भवति नरपते साधंसुर्यः क्रमेण। गृह्याब्जं नाभिमूले कुलिशमिप मुनेरूध्वं उष्णीष एव । ऊर्णा गुह्याव्जमध्येऽक्षरसूख-जननी शुक्रविन्दोः स्थितिया । एषा श्रीवच्यभूमिहर्चुभयकुलयशात् कायचक्रं ललाटनामि, वाकचकं कण्ठहदयम्, चितचकं गृह्योष्णीषम् । ॥१७१-१७३॥

इदानीं कायमण्डलशद्धिरुच्यते-

सार्घाकं पञ्चिविशद् द्विगुणमपि ततिश्चत्तवाक्कायचकं चित्तार्धं षट्सपादं हृदिगतसहजं चाङ्गुलं ज्ञानचक्रम् । त्रिभ्यो द्वाराणि कूर्यान्मणिमयरचनां मण्डलेभ्योऽष्टमांशाद गत्यागत्याप्यघोघ्वं द्विगुणमपि भवेत् कायवाक्चित्तचक्रम् ॥१७४॥

सार्घार्कमित्यादि । इह काये गृह्योणंमध्ये [213a] हृदयम्, तदेव चित्तचक्रम्, नाभिकण्ठमध्यतः साघंद्वादशाङ्गलम्, नाभिकण्ठसीम्नः पञ्चविशस्यङ्गलं वाक्चकम्, तथा गुह्यकमलोर्णान्तं पञ्चाशदङ्गलं कायचक्रं वस्त्रभ्म्याम् । चित्तार्धमिति चित्तचकः स्यान्तर्गतं षट्सपादेरङ्गुलेज्ञानचकं शोधनीयम् । त्रिम्य इति सप्तम्यर्थे पञ्चमी । त्रिपु मण्डलेषु द्वाराणि कुर्यादिति चित्तद्वाराणि जाग्रदाद्यवस्थाचतुष्कम्, वाग्द्वाराणि मुखगुदनासारन्ध्राणि, कायद्वाराणि चक्षुःश्रोत्ररन्ध्राणीति द्वादशद्वाराणि । शेप पूर्वोक्तवत्। एवं बोधिचित्तस्य गतागतभेदेनाध ऊध्वं द्विगुणमि भवेत् कायवाक्-चित्त चक्रं शताङ्गलमित्यर्थः ॥१७४॥

१, प. वजां।

मेरुस्थेऽप्यङ्गुलार्घं भवति जिनपतेर्योजनानां सहस्र-मेवं कायप्रमाणो भवति सुरगिरिविस्तरेणार्थमात्रः। तस्योध्वें तस्य चार्वं भवति हि कुलिशाकारक्टं त्रिभाग-मेवं चाघो घरापो हविरपि पवनः सार्चिषा वज्रमाला ॥१७५॥

एवं मेरुस्थेऽपि मण्डले जिनपतेर्यदर्धाङ्गुलं तन्मत्यें योजनानां सहस्रम् । एवं वायवलयान्तं चतुर्लक्षयोजनं भवति चतुर्हस्तेष् । एवं कायप्रमाणो भवति मुर्गारि-विस्तरेणार्धमात्रः पूर्वीवत इति । तस्योध्वे तस्य चार्धं भवति हि कुलिशाकारकटं त्रिभागं मेरोर्वाह्ये धरावलयमब्बलयं तेजोवलयं वायुवलयम्, अधोभागे साविषा वज्र-माला वज्जवलयबाह्ये ॥१७५॥

सार्धंसूर्येभवति जिनपतेनीभिकण्ठाब्जमध्ये वाक्चकं कायचकं कुलिशमणिगतादूष्वंमुर्णाधंसीमनः। निर्युहां(हं) श्रीकपोलं भवति नृप ललाटोध्वं उष्णीषसीमनः साधर्किर्भुमितोयानलचलवलयं सार्विषा वज्रमाला ॥१७६॥

'सार्धमित्यादि (हच्चक्रमित्यादि) वृत्तमेकं सुबोधम् ॥ १७६ ॥ ऊध्वीधो बुद्धकायो भवति समिमदं कायवाक्चित्तचकं तिर्यंङमानैः समन्तात् पवनगतिवशाद्वा त्रिभिः षड्भिरेवम्। चकं चाष्टारचकेभंवति जिनपतेरङ्गुलैः षट्सपादे-रष्टद्वारैश्च वत्तं स्वकरतलनखैः कल्पयेच्छ्रीश्मशानम् ॥१७७॥

कर्ध्वांघो बुद्धकायो भवति समं चतुरस्रं कायवाक् वित्तचकं चतु रस्नम् । तियं-ङ्मानैः समन्तात् पवनगतिवशाद् बाह्ये वायुवलयगतिवशादध्यात्मिन वामहस्तनखान्तं दक्षिणहस्तन्खान्तं वायुगमनं समानादीनाम् । तेन शरीरमण्डलं चतुर्वस्तं वतुरस्रमिति नियमः । वा अथवा, त्रिभिश्चकैः संवरं वा, षड्भिश्चकैः संवरमण्डलं वृत्तमष्टद्वारिकं प्रत्येकचकमानैः षट्सपादैः षड्भिरङ्गुलैभैवति, जिनपतेरष्टद्वारैश्च वृत्तं पूर्वोक्तम्, स्वकरतलनखेः कल्पयेत् श्रीश्मशानम्, तत्र तिर्यङ्मण्डले अव कर्ष्वे पुनर्मुखाद्यष्टद्वाराणि इमशानानीति नियमः ॥ १७७ ॥

इदानीं भगवतीकायशुद्धिमण्डलमुच्यते — ऊर्ध्वाघो वक्त्रगुह्याद् भवति भगवतीमण्डलं द्वचव्घिमानैः पद्माधं गर्भमध्यात् त्रिभिरपि च ततः सावली चक्रषट्कम्।

१. च. 'सार्घ सुबोधम्' नास्ति । २. च. हंस्तं । ३. भो, रह्नं ।

T 462

15

25

द्वाराद्यं सर्वेचकात् प्रभवति नियतं पञ्चमांशैः कपोल्लं न प्रज्ञा नाप्युपायः सहजतनुरियं स्तूपरूपं समन्तात् ॥१७८॥

क्रध्वांचे बक्त्रगृह्याद् भवति भगवतीमण्डलं द्वपिष्टामितिति द्वाचत्वारितः दक्कुलैभविति, कर्णागुस्तकमलाभ्यां त्यवत्वा 'द्वाचत्वारिशद्भिरङ्कुलै रलोधातुः। तेन भगवतीमण्डलं भवति। पद्मार्थं पदन्वकं तुल्यभागेरिति। अत्र द्वारं विसदृशं चक्रात् पद्धमांश्वम्, चक्रात् पव्यमांश्वम चन्चतुल्पीठादौ तत् कस्य हेतोरिति ? अत्र प्रसूतिकाले पद्धमांश्वम्, चक्रात् पञ्चमांश्वम चन्चतुल्पीठादौ तत् कस्य हेतोरिति ? अत्र प्रसूतिकाले मातुर्योनिर्द्वाद्वाणुले भवति पण्णवतिविभागेनाष्टमो विभागः। तेन चतुर्द्वपिषु योनयः स्त्रीणां चतुर्द्वाराणि, गर्भाधानमण्डलगृहं वालशरीरं देवतागणिमिति प्रपञ्चो वालानां स्त्रीणां चतुर्वाराणि, गर्भाधानमण्डलगृहं वालशरीरं देवतागणिमित प्रपञ्चो वालानां देवताकारिणोत्पत्तिर्द्वातां भगवतिति। किन्तु गुह्यादुष्णीपविभागेन पञ्चमांशं द्वारिमिति त्यायात्। एवं सत्त्वानां शरीरं मण्डललक्षण³क्ष्यम्, स्तूपं पुनर्नं प्रज्ञा नाप्युपायो नर्षः सक्तिति नियमः॥ १७८॥

बाह्यं मेरोरघो वै क्षितितलिनलये संस्थिताः सिद्धयोऽधौ पूर्वे खङ्को रसेन्द्रोऽमृतफलगुलिकाश्चाञ्जनं रोचनं स्यात् । सब्ये श्रीपादुका चाक्षयसकलिषिमंण्डलस्याग्निकोणे मध्ये यज्ञोपवीतं त्रिदशनरगुरोब्रह्मघोषस्तदेव ॥१७९॥

बाह्ये मेरोरघो वै क्षितितलितलेलये संस्थिताः सिद्धयोऽष्टो, पूर्वे खङ्गो रसेन्द्रो रुद्रकोणे, अमृत् [213b]फलमृतरे, गुलिका वायव्ये, अञ्जनं पश्चिमे, नैर्ऋत्ये रोचनम्, सब्ये पाडुका, अक्षयितिषरस्थानिकोण इति । मध्ये मण्डलस्य यज्ञोपयोतिमिति, त्रिद्यानरगुरोः कालचकस्य । ब्रह्मघोषस्तदेवेत्यनाहृतध्वनिर्देवादीनां प्रबोधक इति नियमः ॥१७९॥

इदानीं वर्षाविशृद्धिलक्षणमुख्यते — मण्युष्णीपे ललाटे गलहृदयगते नाभिगृह्ये च वज्ज-मेकद्वघव्धीष्वहीन्द्रैः सनवदिनकरैरङ्गुलैस्च ऋमेण । मध्योध्वीधस्त्रिभागं मुकुलितविकरालं च शान्तौ च रौद्रे घष्टाऽप्येवं त्रिभागोपरि कृलिशसमा गोमुखाः पद्मरूपाः ॥१८०॥

मणीत्यादि । इह वज्ञमणिविशुद्धधा एकाङ्गुलं वज्रं भवति, उदणीयचक्रविशुद्धधा हथङ्गुलम्, छष्ठाटविशुद्धधा चतुरङ्गुलम्, कण्ठविशुद्धधा पञ्चाङ्गुलम्, हृदयविशुद्धधा

१. भो. gSor brGyad (अष्टाङ्गुलं) इत्यधिकम् । २. च. 'अत्र' नास्ति । १. भो. Ran bSin (स्वरूपं) । अष्टाङ्गलम्, नाभिविशुद्धया नवाङ्गलम्, गुह्यविशुद्धया द्वावशाङ्गलम्। वायुतेजोदकपृष्ट्यीकृत्स्नानां कामावचरा 'सुरनराणां यथासंख्यम्। तेन कर्णमुराणामेकाङ्गलम्, अङ्गुष्टबज्जं द्वयङ्गलम्, ललाटे वच्यमालार्थं चतुरङ्गुलम्, कच्छे वापि पञ्चाङ्गुलम्, स्कन्ये
वच्यमालार्थमण्टाङ्गुलम्, हृदयोत्कर्पवच्यं नवाङ्गुलम्, उल्लालवच्यं द्वादाशङ्गुलम्
वोगिना कर्तव्यं वच्याभरणाय । तेषां लक्षणमृष्ट्यं मध्येष्टः समभागिष्टित्रभाग इति तरेवोल्लालवच्यं मुकुल्तिं शान्तो धान्तिकर्माण्, विकरालं विकसितवार्कं रोद्र इति रोद्रकर्माण् । घण्टाऽप्येवं त्रिभागा मध्ये अर्ध्वं वच्चं मुखं च तुल्यम् । गोमुखाः शान्तो । पद्मविकासमुखा रोद्रे करालवच्येण सह ॥ १८० ॥

विस्तारस्तित्त्रभागं समुखवरटकं तित्त्रभागाद् दलं च शूकं विस्तारतुल्यं दिश्चि विदिशि चतुर्भागिकं शूकवृत्तम् । बाह्यं शूकं त्रिभागोऽध उपरि वदरोकण्टकाकारयोगो घण्टावक्त्राणि तद्वद् दलमपि कुलिशंगोमुखाद्यं तथैव ॥१८१॥

इह वज्जमानाद् वज्जश्कानां विस्तारिहत्रभागिको वज्यस्य मध्ये वरटकं चतुर्मुखम् तस्य विभागस्य त्रिभागम्, एवमध ऊध्यं वरटकस्याष्ट्रकानि वरटकमानेनेति, श्रूकं वज्जस्य विस्तारतुरूपमिति विभागम् । विशि मध्ये विविश चतुर्दिक्षु विविश्च वा । श्रूकवृत्तं वज्जविभागस्य चतुर्विभागिकम् । बाह्ये श्रूकानां त्रिभागोऽष्यः, भागद्वयमूर्ध्यं वदरोकण्टकवरमूर्धिन, योगो मध्ये मिश्रेणेति मुकुलितं विकराले (विकीणे) विकाशो मूर्धिम कर्तव्य इति । घण्टायां वक्त्राणि तद्वदिति यथा वज्जे चतुर्ववशाणि कायवाक्तिज्ञान- विवृत्वशुद्ध्या मैत्र्यादिविहात्तरः, तथा प्रज्ञाया राजधर्मेण श्रूयतादिवर्मोक्ष-मुख्यविशुद्ध्या चतुर्मृखानि कर्तव्यानीति न्यायादेकः । द्वितोयो "दिनस्तु भगवान् वज्यो" इति कालिव्यंक्षनचर्माजुरुच्चायंः, स्वराभावात् । तेन वज्जवरटकं मुखाभावः। "तक्तं प्रज्ञा प्रकीतिता" इत्याणिः स्वरधर्मः, तेनोच्चारणस्वभावादेकमुलं भगवत्या इति वज्जवर्याशाः सिद्धम् ॥ १८१ ॥

इटानीं चैत्यलक्षणमृच्यते— गृह्याब्जोर्णान्तभागैः परमजिनपतेरूध्वंतश्चेत्यमानं पीठायामस्तदर्धेः क्षितिरिव सुसमं तत्त्रभागीर्दशांशाः । सार्धान्तो निर्गमोऽब्जं हृदिगतवलयं पीठमानेन वृत्तं पद्मान्ताद् भागहीनं तलसममुरसस्तद्शांगैश्च कण्ठम् ॥१८२॥

१. भो. Lha Min (असुर) इत्यधिकम् । २. च. 'बिन्दु' नास्ति ।

गृहोत्यादि । गृह्याक्जोणान्तभागीरित पद्याधाद जुलैः, परमजिनवते रूध्यंतद्यस्य मानम् । योठायामस्तवर्धेरित पद्यविद्यातिभिः, क्षितिरिव चतुरसः, सुसमस्तियंन्-विभागेत । तस्य प्रिभागीदिवाद्याः इति । अञ्चलक्षभागेन सहितान्यप्राञ्चलािन, साधि-जुलित्याः। तस्य पीठोपरि पद्यस्य निर्गमः, तैनैव मानेन हृदिगतवलयस्यापि निर्गमः। एवं हृदिगतवलयं भवति पोठमानेन चृतं [2142] पर्यं च । पद्यान्तात् त्रिभागहीनं तलसममुरसी वृत्तं साधीङ्गलहीनमिति । तस्य विद्यादीक्षण कण्ठमिति, अष्टाञ्चलं त्रिभागिकं तिर्यहमानेन, ऊर्ध्यमानेन चतुरङ्गलम् ॥१८२॥

वक्त्रं पीठाधंभागैः क्षितिरिव सुसमं तत् त्रिभागादिशांशा गृह्याब्जात् साधंसूर्यैः सुसममपि भवेदूर्ध्वतः पीठमानम् । पीठादब्जादिसीम्नो हृदिगतवलयान्तं ततः कण्ठमूलं तस्माद् वक्त्रान्तमेवं जलधिरपि युगैः साधेवेदैस्त्रिखण्डम् ॥१८३॥

वक्त्रं पोठार्धभागिरिति । सार्धद्वादशिमः, तियंग्विभागेन तदेव चतुरसं यथा कण्ठम्, स्नितिरित सुसमिनित तस्य वक्त्रस्य कण्ठस्य त्रिभागिका चतुरिद्वांशा कण्ठस्यार्धाङ्गुलिनर्गमो दिगंशानां वक्त्रस्य पादोनाङ्गुलिनर्गम इति । गुह्याब्जात् सार्धसूर्येः सार्धद्वादशाङ्गुलेरुब्वंः पोठमानं चतुरसं सुसममिष भवेविति पोठतलात् । पोठा-वब्जादिसोम्न इति नाभिकमलपर्यन्तमवभूतीस्थानं यावदिति सार्धद्वादशमाना । ततो हृविगतबळ्यान्तं च सार्धद्वादशमाना, ततः कण्ठमूलं भार्धद्वादशमानम्, तस्मात् सम्भोगकस्थानाद् वक्त्रान्तमेवं छत्रावली स्थानपर्यन्तं चतुरङ्गुलं कण्ठम्, विवृकान्मुल-स्थानपर्यन्तं सार्धचतुरङ्गुलम् । एवं सुनासिकास्थानं तथा चतुरङ्गुलम्, भएवं विदारक्ष्याने छत्रावलीति । एवं जलियरिय युगैः सार्धवेदिस्त्रखण्डं कण्ठादिवक्त्र-मिति॥ १८३॥

पीठाद् वेदैश्च पद्मं हृदिगतवलयं कण्ठमानं च तद्वत् सार्घाण्टैवंक्त्रमानं भवति तदुपरि च्छत्रमाला नरेन्द्र। ऊर्णासीम्नो ललाटे शिरसि तत इहोष्णीषपयंन्तमेषा एवं वे लोकथातुः सकलजिनतनृश्चक्रचैत्यस्वरूपः॥१८४॥

पीठादिति । पीठोध्वंतः पद्मासनस्योज्ज्यां वेदैरिति चतुरङ्गुलैः पद्मम्, एवं हृदिगतवलयं चतुरङ्गुलम्, कष्ठमानं च तद्वच्चर्तिमः श्राधाटः, वक्त्रमानिमिति चितु-कान्मुखान्तं सार्धचतुर्भिः, नासिकान्तं चतुर्भिः, तत ऊर्णास्थानं भ्रुवोमंध्ये । तद्दव्यं उलाटादारस्य भवति तदुपरि च्छत्रमाला नरेन्द्र ! ऊर्णासीम्नश्छत्रावली ललाटे शिरसि इहोज्जीवपर्यन्तमेषा सार्धद्वादशाङ्गुला इति नियमः। एवं सुमेरलोकघातुः सकल-जिनतनुः स्तूपभावो मेरः, रूपस्वभावा बुद्धप्रतिमा, निमितकायो द्वात्रिशन्महापुरुषलक्षण-मिति । अत्र महापुरुषलक्षणानि, तद्यया-तयागतस्य चक्राब्द्वितपाणिपादतलो, चक्रे सहस्रारे परिपूर्णे सनाभिके सुप्रतिष्ठितपादतली, सर्वपादतलेन पृथ्वीं स्पृश्चित, साज्य-न्निमिते पादतले उन्नमित निमते नमित, जालावनद्धे पाणिपादतले राजहंसस्येव जालिनी-यतो हस्तो, पादौ जातबालस्येवातिमृदुत्तरो, सप्तोत्सद इति द्वयोः पादयोहंस्तयोः स्कन्धयोः कण्ठेऽपि उत्सद इति । करपादयोदीर्घाङ्गुल्यो वृत्ता आयता सुपर्वाङ्गुष्ठकाद्या इति । आयतपादपाष्टिणः, वृहदुज्गात्रः, उच्चैर्जान्वङ्गुल्यग्रा, अर्ध्वाग्राणि लोमानि दक्षिणावतीनि, ऐणेयजङ्घः, कोशावगतवस्तिगृह्यः, हस्तिन इव कोशेन प्रच्छादितं बस्तिगह्मम्, सूनर्णादिस्निग्धवणं:, सूनर्णवच्छवि:, मलरजोऽग्राहिणो रोमकपे एकैकरोम-भ्रवोर्मध्ये, कर्णोपरि मण्डलं कर्पासांश्वभुक्लातिसूक्ष्मशुक्लद्वात्रिशदात्मकं दक्षिणकुण्डला-वृतम् । सिंहपूर्वार्धकाय उपरिविशालः सुवृहत्स्कन्धः परिमण्डलग्रीवा, अङ्गप्रत्यङ्गेषु रसरसाग्राः, रसं रसमस्तीति रसरसाग्राः, [214b] ताः पुनः शिरा आहारिण्योऽग्रत इति वातिपत्तरलेष्मिभरिलसत्वात्। न्यग्रोधपरिमण्डलो महापूरुष इति, आयाम-व्यायामयो: समन्तादेव उष्णीषावर्तिशरः, उष्णीषं छत्र इव परिगतमुन्नतम्, आकेश-श्रोतसी जिह्वाऽग्रेण स्पृशति, केशपर्यन्तं ललाटं च जिह्वपाऽज्ज्वादयति । ब्रह्मस्वरोऽनन्त-पर्वदा यथा बाह्ये तथाभ्यन्तरे श्र्यते सर्वसत्त्वेरि । सिंहस्येव वत्तहनुः, समा दन्ता-इचत्वारिंशच्छक्लाः सर्वदोषरहिताः । 'अभिनीलाद्यं नेत्रम्, नेत्रयोर्यन्नीलं तदभिनीलम्, यत्र रक्तं तदभिरक्तम्, यच्छुकलं तदभिशुक्लम्। गोपक्ष्माणि वृपभस्येवाक्षिपत्राणि, अध ऊर्ध्वायतनानीति । विश्ववर्णकायः सत्त्वानां नानावणीवलोकनतः । एवं पादतला-दारम्य उष्णीपान्तानि द्वात्रिशन्महापुष्पलक्षणानि धर्मसंग्रहे (म. सू. सं., पृ. ३३४) उक्तानि, तेन वृत्तेर्न सुचितानीति । एवं लोकघातु(तो)रुत्पत्तिः । एवं बुद्धनिर्माणकाय-तुल्यः। एवं रजोमण्डलं सत्त्वानां पृण्यलाभाय। यथा मेहस्त्या चैत्यः। सूर्यादीनां दक्षिणावर्तभ्रमणाय चेत्यवन्दनाय मत्यें दिशतः। यथा बृद्धस्तथा बृद्धप्रतिमा कार्या, पूजादिकरणाय । एवं संवृतिसत्यं पूष्यलाभाय दर्शितम् । अत्राज्ञीतिव्यञ्जनानि ग्रन्य-बाहुल्यभयान्नोक्तानि सर्वत्रोक्तायेने(न्येवे)ति ॥ १८४ ॥

इदानों लोकघातौ नानाधातुस्वभाव उच्यते—
पृथ्वी स्याद्धेमधातुर्जलमिप रजतं विह्नधातुरच ताम्रं
वायुरचायरच शून्यं त्रपु भुजगिमदं मिश्रधातुस्वभावम् ।
पृथ्वी स्यात् पीतरत्नं सितमिप च जलं रक्तरत्नं चविह्नः
कृष्णं वायुरच नीलं हरितमिप तथा मिश्रधातुद्भवं तत् ॥१८५॥

A A A MILL

१. च. 'सामंद्रादशमानम्' नास्ति । २. च. 'एवं' नास्ति । ३. च. सार्घाष्टिभः ।

१. मो. 'अभि' इत्यस्य स्थाने सर्वत्र Sin Tu (अति)।

176

पृथ्वीत्यादि । इह पृथ्वी स्वाद्धेमधातुरिति हेम पृथ्वीस्वभाव पीतम्, रजतं तोय-स्वभावं धवलम्, ताम्नं बह्निस्वभावं रक्तम्, अयो बायुस्वभावं कृष्णम्, त्रपु नागं च मिस्रमिति। रसलोहमाकाशलक्षणं ज्ञानघातुलक्षणमिति। एवं स्वर्णीदेलोहपट-[कम् ।] तथा मणिरत्नानीति । पीतरत्नं पृथ्वीस्वभावम्, स्वेतं जलस्वभावम्, रक्तं बह्निस्वभावम्, कृष्णं वायुस्वभावम्, श्याममाकाशस्वभावम्, नीलं ज्ञानधातुस्वभावम्, तद्वातुद्भवत्वादिति ॥१८५॥

भूमिः क्षाराऽम्बु मिष्टं प्रभवति कटुकोऽग्निरुच तिक्तोऽनिलश्च मिश्रश्चाम्लः कषायो रस इति च पुनः क्षेत्रपाषाणयोनिः । ओषघ्यः षट्प्रकारा रसपरमरसा घातवोऽन्ये मणीन्द्रा नानास्पर्शाश्च भूम्यां सकलरुजहराण्येव तोयानि सम्यक् ॥१८६॥

तथा षड् रसा:-भृमिस्वभावः क्षाररसः, मधुरस्तोयस्वभावः, कदुकोऽग्निस्वभावः, तिकतो वायुस्वभावः, आकाशस्वभावः कषायः, ज्ञानस्वभावोऽम्ल इति । एवं क्षेत्र-पाषाणानां योतिः पृथिव्यादिः । एवमोषध्यः षट्प्रकाराः । रसाः परमरसा इति सिद्ध-रसाः। घातवोऽन्ये मणीन्द्रा इति षट्। एवं नानास्पर्शाश्च भूम्यां सकलरुजहराः, एवं तोयानि शैलोदकानीति षटप्रकाराणीति सम्यक् ॥१८६॥

इदानीं मणिरत्नगुणा उच्यन्ते-पृथ्वी शुलापहारी विषमपि च हरेत् तोयधातुश्च वह्नि-र्भृतं स्तोभं च वायुर्गगनमि हरेत् क्षुद्रदृष्टिप्रपातम् । ज्ञानं सर्वापहारी मणिरिप च तथा संस्थितोऽङ्गे नृपाणां सर्वेऽचिन्त्यस्वभावाः सिललरसमणिस्पर्शमन्त्रौषधीनाम् ॥१८७॥

पृथ्वीत्यादि । इह पृथ्वीजातिर्मणिर्वा रत्नं वा शूलापहारी भवति, तोयजाति-विवापहारी भवति, भूतावेशापहारी अग्निजातिः, स्तम्भनापहारी वायुजातिः, क्षुद्र-दृष्टिप्रपातापहारी शून्यजातिः, ज्ञानजातिः सर्वदोषापहारी। यथा रत्नं मणिस्तथा सामान्योऽपि दर्दरादीनां शिरसि जातो दोषापहारी मणि: संस्थितोऽङ्गे नृपाणामिति । एवमुक्ता ये सर्वेऽचिन्त्यस्वभावाः पृथिव्यादिधमिणः । एवं वृद्ध[215a]क्षेत्र-निष्पत्तिः॥१८७॥

बुद्धक्षेत्रं समन्तात् प्रविशति भगवान् ज्ञानचकस्वरूपी भूयः सत्त्वप्रवृत्तिभंवति फलवशात् सर्वसामग्रियोगात्। मासास्तेद्वीदशाञ्जे: स्वदिनगतिवशान्मेरुनिष्पत्तिरत्र

बाह्ये ज्योतिष्कचकाण्यवनितलगताः कमंभूम्यां मनुष्याः षडद्वीपाभोगभूम्याममृतफलरसाहारिणोऽन्ये स्राद्याः । अष्टी शृङ्गानुरूढाः सुरपतिरनलः कालदैत्याब्धिवाता यक्षो रुद्रोऽघ ऊर्घ्वे परिजनसहितो विष्णुरेवाव्धिवक्त्रः ॥१८९॥

अतो वृत्ताद् वृत्तद्वयं सुबोधम् ॥१८८-१८९॥

पटले, १८५-१९१ वलो.]

इदानीं मकरादिराशीनां स्वभाव उच्यते-

विज्ञानं शून्यधातुर्मंकर इह घटश्चैव संस्कारवाय-मीनो मेषो वृषश्च प्रभवति मिथुनो वेदनाग्निश्च संज्ञाः। तोयं रूपं क्षितिश्चाक्षरमपि सहजा राशयः कर्कटाद्या एषां वज्रादिचिह्नानिक च ट प त शा दीर्घह्रस्वाधिदेवाः ॥१९०॥

विज्ञानिमत्यादि । इह मकरो विज्ञानशून्यघातुस्वभावः, कुम्भः संस्कारवायु-धातस्वभावः, मीनो वेदनाग्निस्वभावः, मेषः संज्ञातोयस्वभावः, वृषो रूपपृथ्वी -स्वभावः, मिथुनो ज्ञानस्कन्धज्ञानधातुस्वभावः। एवं सहजाद्यन्तस्वभावाः कर्कटादयो राशय इति विलोमेन। एषां मकरादीनां वज्रादिचिह्नानि वज्रखङ्गरलपग्रचक्रकर्तिका इह कर्कटादीनां सुष्टिक्रमेण विलोमानीति । कवर्गादयः क च ट प त शा मकरादीनाम्, क न म ण त्र ङादीनि कर्कटादीनाम् । लोकघातुपटलोक्तानीति दोर्घहस्वाध-देवानि दीर्घस्वरभिन्नानि ककारादीन्यशीत्युत्तरशतानि व्यञ्जनानि। एवं ह्रस्वस्वर-भिन्नानीति ॥१९०॥

इदानीं ग्रहाणां जन्मराशय उच्यन्ते-

मेषे युग्मे कूलीरे शशिसितरवयः सिंहकन्यातुलासु भौमो मन्त्री च राहुर्बुधशनिफणिनो वृश्चिकाद्यन्तचापे। एवं भूम्यादिधातोभंवति नरपते सर्वतोऽन्योन्ययोगः सत्त्वानां कर्मरूपं भवति जगदिदं सर्वरत्नप्रपूर्णम् ॥१९१॥

मेष इत्यादि । इह यथासंरूयं मेषे युग्मे कुलीरे शशी शुक्रो रविर्वभूव । सिंहे भोम:, कन्यायां बृहस्पतिः, नुलायां राहुः, वृश्चिके बुघः, घनुषि आदौ शनिः, तस्यान्ते केतुः । एवं कुम्मे आगस्तिः, वृषे धृरि(व इ)ति । **एवं** पूर्वोक्तक्रमेण **भूम्यादिवातोरि**ति

१. भो. Khams (बातु) इत्यधिकम् ।

स्तूपाकारोध्वंकूटं नृपकुलिशमयं मण्डलं तस्य गर्भे ॥१८८॥ Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012) परमाणुसमृहस्य सर्वतोऽन्योन्ययोगो मुख्यभावेऽल्पभावः समुदयधर्मादिति । सस्वानां कमंरूपं भवति जगविवं सर्वंरत्नप्रपूर्णं यद् वृद्धवोधिसत्त्वानामिति ॥१९१॥

इदानीं सत्त्वानां कर्मप्रभाव 'उच्यते, तद्यथा-ये भूम्यां कल्पवृक्षा रसपरमरसाश्चाणुभिर्वे बभ्व-रोषध्योऽन्ये रसेन्द्राः सकलरुजहरास्तान् न पश्यन्ति सत्त्वाः। पश्यन्ति प्राकृतं यत् तृणतरुसलिलं पांशुपाषाणलोहं प्रेतास्तोयं महाग्नि नरकगतनरारछेदभेदं समन्तात् ॥१९२॥

ये भूम्यां कल्पवृक्षा रसपरमरसाइचाणुभिवें वभूवुरोषध्योऽन्ये दिव्याः, रसेन्द्राः सकलक्जहरास्तान् न पश्यन्ति सस्वा अपुष्यवशेन । पश्यन्ति प्राकृतं यत् तृणतरुसलिलं पांगुपाषाणलोहम् । प्रेतास्तोयं नद्यादिषु ज्वलदग्निरूपंपश्यन्ति । नरकगतनराः पापवशेन छेदभेदं शूलादिकं पश्यन्ति ॥१९२॥

इदानीं बुद्धनिर्माणम्च्यते — एतेषां मुक्तिहेतोः ससुतजिनपतिः कर्मभूम्यां प्रविश्य गर्भाघानं हि कृत्वा परमकरुणया बोधिमृत्पादयित्वा। मारक्लेशान निपात्य क्षितितलनिलये धर्मचकं प्रवर्त्यं कृत्वा निर्माणमायां पूनरपि भगवान् शुद्धकायः स एव ।।१९३।।

एतेषामिति । एषां सत्त्वानां मुक्तिहेतोः पुण्योदयकाले ससुतजिनपतिरिति बोधिसत्त्वेः सह बुद्धो भगवान् कर्मभुम्यां प्रविक्य सत्त्ववैनेयाय गर्भाधानं कृत्वा, परम-करुणया बोधिमृत्पादियत्वा मारक्लेशान्तिपात्य क्षितितलितलये धर्मचक्रं प्रवत्यं, कृत्वा निर्माणमायां पुनरिप भगवान् शुद्धकायः स एव यथाऽऽगतस्तथा गतः । एवं बुद्धनिर्माण-माया निर्वाणरूपा सत्त्वानां प्रतिभासते पुण्यवशादपुण्यवशादिति नियमः ॥१९३॥

15

25

तस्माज्जातो न नष्टस्त्रिभवमपि गतः शुद्धकायो जिनस्य सत्त्वार्थं सर्वदा न त्यजित जिनपतिः कर्मणा बाध्यते न । एवं लोकेश्वरोऽहं त्रिभुवननिलये कर्मभूम्यां स्थितोऽकं सत्त्वानां मार्गदाता नरकभयहरो नान्यदेवः कदाचित् ।।१९४।। येषां घर्मेऽभिघातं स्वतनुपरतनोश्चानुबन्धः स्वनार्याः पुत्रात् स्वर्गोऽग्निहोत्रान्मरणमुपगते बान्धवे पिण्डपातात् ।

१. च. 'उच्यते' नास्ति । Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

यज्ञे हिंसा पशुनां रणमरणगते स्वगंछोके प्रवेशः तीर्थे कायप्रपातात् परपदगमनं सौस्यदास्ते न घर्माः ॥१९५॥ का माता कः पिता ते वरसुतद्दहिता भ्रातुभायाभिगिन्यः कः स्वामी मित्रवर्गो मरणभयहरस्तत्त्वमार्गं विहाय। मुनीनां कुरु मम वचनादेकवणंप्रवित्त तेनार्क त्वं येनामी यान्ति मोक्षं त्वृषय इह मयाधिष्ठिताश्चक्रमध्ये ॥१९६॥ दु:खं दण्डप्रहाराद् यदि भवति तनौ तत्र दण्डोऽपराघी नायं दण्डः करेण प्रहित इह करस्यापराधः समस्तः। नायं चित्तेन चित्तं प्रहितमिह महादृष्टकोपानलेन तस्मात कोपानलोऽयं रिपूरिव(ह) जगतो मारितो बोधिसत्त्वै:।।१९७।। रागाद् द्वेषादिदोषः प्रवरसुरनृणां स्वेष्टभार्यान्यसङ्गात

नानोपायविनेयमहोहेशः

पटले, १९१-२०१ इलो.]

सा तस्योन्मूलनार्थं सकलजिनसूतैः कामदाने प्रदत्ता। तस्माद दानानरागः समसुखफलदः पुण्यसम्भार एष जातस्त्रेलोक्यबन्धनेरकभयहरः सर्वकालं जनानाम् ॥१९८॥

सत्त्वा रागेण येन प्रलयमुपगतास्तायिनस्तेन मुक्ताः सत्त्वा यद्रक्षयन्ति प्रतिदिनसमये तायिनस्तद् ददन्ति । सत्त्वा यन्मोचयन्ति स्वहृदिगतसुखं तिज्जिना रक्षयन्ति तेनेदं दुष्करं स्याष्ज्जिनवरचरितं देवनागासुराणाम् ॥१९९॥

पृथ्वी तोयाग्निवाता गगनगुणमनोबुद्धचहङ्कारजीवा रूपाद्याश्चक्षुराद्या विषयविषयिणः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि । एषां को वर्णज्येष्ठः सपशुनरतनोर्व्यापकानां कनिष्ठो वर्णज्येष्ठः सनृपनरगुरुर्जातिगर्वाभिमानी ॥२००॥

इतो वृत्तादपरसप्तवृत्तानि सुबोधानि ॥१९४-२००॥

इदानीं महारसादिलक्षणमुच्यते-ताप्यं भूमिश्च तोयं प्रभवति विमला तुत्यकं विह्नरेव वायुर्व्यामिश्रधातुः सचपलशशकं हिङ्गुलं सप्तमं च।

25

15

20

पटले, २०१-२०५ बलो.]

10

25

T 464

10

काक्षीकासीसगन्धं समगगनचलं विद्वितीयं शिलालं गौरी पृथ्वी गर्तं यल्लवणमुदधिजं सैन्धवं कृष्णचौल्लम् ॥२०१॥

ताप्यमित्यादि । इह माक्षिकं महारसं भूमित्वभावम्, चकारान्महारसम् । विमला तोष्यत्वभावा, तुर्थकं बिह्नत्वभावम्, चपलो वाषुत्वभावः, रसकः शून्यस्वभावः, वाकाको हिङ्गुलि [दन] ज्ञान भातुत्वभाव इति महारसाः सप्त। तत उपरसाः कालिकमिति ज्ञानवातुत्वभावम्, कासीसमाकाशस्वभावम्, [215b] गन्धकं वायु वातुत्वभावम्, ज्ञानवातुत्वभावम्, तालकं तोयस्वभावम्, गैरिका भूमित्वभावेति पहुपरसाः । मनःशिका बह्निस्वभावा, तालकं तोयस्वभावम्, गैरिका भूमित्वभावेति पहुपरसाः । ततः पञ्च लवणानि—गतम्, सामुद्रम्, सैन्धवम्, कृष्णलवणम्, चृत्तिलकालवणं पृष्यव्यादिस्वभावं यथाक्रमेण ॥२०१॥

एतानि क्ष्मादियोनौ पुनरपि नवसारं यवक्षारसज्जं सौभाग्यं काचजातं खचलशिखिजलक्ष्मास्वरूपाणि तानि । पृथ्वी शैलोदकं स्यात् शशिजलमुदकं विह्नतोयं च वह्नि-वीयुः शुन्यस्वरूपा विषजलमपरा कर्तरी त्रिस्वभावा ॥२०२॥

ततः पञ्च क्षाराणि—नवसारम्, धवक्षारम्, सर्जिकाक्षारम्, टङ्गणक्षारम्, काचलवण्कारं यवासंस्यमाकाशादिस्वभावम् । ततः पञ्च तोयानि—शैलोदकं पृथ्वीस्वभावम्, चन्द्रोदकं तोयस्वभावम्, उष्णोदकं विह्नस्वभावम्, विषोदकं वायुस्वभावम्, कर्त्युदकमाकाशस्वभावम् । सा च कर्तरी त्रिविधा—स्पर्शकर्तरी, छायाकर्तरी, शब्दकर्तरी, साधकच्छेदनादिति ॥२०२॥

भूबातुः पीतमुस्तं जलशिखिमरुतः शक्तुकं श्रृङ्गिकृष्णं शून्यास्यं कालकूटं ह्युपविषमपरं पञ्चधा वेदितव्यम् । पाषाणा जीवरूपा विविधफलसमा मुण्डशङ्खादिरूपा-स्तेषां लोहानि षड् वा घनजमपि तथा देवकान्तं चतुर्घा ॥२०३॥

ततः पत्र्व विषाणि—पीतमुस्तं भूषातुस्वभावम्, शक्तुकं तोषधातुस्वभावम्, शृङ्को बह्निस्वभावम्, कृष्णविषं बाष्टुस्वभावम्, कालकूटं शून्यस्वभावम् । उपविषमपरं पञ्जषा वेदितव्यमिति । व्यञ्जी भूमिस्वभावम्, अर्कस्तोयस्वभावः, धुत्तुरकमग्निस्वभावम्, लाङ्गली वायुस्वभावा, करवीरः शून्यस्वभाव इति । इह पृथिव्यां क्षेत्रपाषाणा नानाजीय-क्ष्या नानाकलाकृतयः बाह्वादिनानास्त्रपः, ते च षड्विधाः । येन तेभ्यो धातुभ्यो

१. च. 'धातु' नास्ति । २. च. 'धातु' नास्ति । ३. च. वच्चां ।

ह्मोहानि षड्विधानि भवन्ति । 'तेभ्यः मुवर्ण भवति । एवमन्येभ्यो इयाधं भवित । धनलमपि चतुर्धा इति । पीताभ्रकलोहं पृष्वीस्वभावम्, व्वेतस्य तोय स्वभावम्, रक्तस्य विह्नस्वभावम्, कृष्णस्य वायुस्वभावमिति । एवं वेवलोहिमिति । एवमयस्कान्तलोह्य् । एवं भ्रामकस्य वायुस्वभावम्, चुम्वकस्य पृष्वीस्वभावम्, कृष्णस्य वायुस्वभावम्, चुम्वकस्य पृष्वीस्वभावम्, कृष्णस्यानिम्नत्वभावम्, द्वावकस्य तोयस्वभावमिति । तेषां द्वावकाणां नाना स्वभावाः । केचिद्वज्यवैकान्तका इति वज्यद्रावकाः अभ्रद्रावकाः । एवं केचिद्वमद्रावकाः, एवं रोप्यताम्रलोहानां द्वावकाः । ते विद्रोपभोगास्तेभ्यो लोहं न पातयेदिति ॥२०३॥

सिद्धोऽसिद्धो रसश्च द्विविध इह भवेद् वेधकोऽबेधकश्च सिद्धो लोहस्य वेधी पुनरिप स तनोवेंधको भक्षितश्च । योऽवेधी सूतकः स प्रभवित सरसो जारितः सारितश्च लोहे वेधानुवेधी सकलश्जहरः पूर्तिलोहं विहाय॥२०४॥

तत्र रसो द्विषा—सिद्धोऽसिद्धश्य भवित । लोहादीनां वेषकः सिद्धः, पातालादिषु कृपेषु स्थितः । अवेषको यः स पारदः स सूतकः प्रभवित रसो लोहादीनि जारितो बीजेन सारितः सन्निति प्रतिसारितोऽनुसारितो लोहे वेषानुवेषो भवित । भिन्नतः सक्लश्कहरो भवित । पूतिलोहं विहायेति नागवङ्गाभ्यां विना हेमादि जीणः सन्नित । इति रसो-परसादिनियमः । एपां माक्षिकादीनां रसवावप्रन्थोक्तविधिना सर्वेषां क्षोषनं ऋत्वा तत उक्तकर्मणि देयाः, अन्यथा अशुद्धा द्रव्यक्षयं कुर्वेन्ति रसोपरसाः । एवं हेमतार-शत्रवोऽपि न देया हेमतारमध्ये, हेमतारकार्ये मित्रं देयम् । लोहमारणे शत्रवो देया इति शास्त्रोक्तविधिना । एवं ताम्रं तीक्ष्णमप्यशुद्धं हेमतारे न देयम् । नागवङ्गं न मृतं देयं यत्र कुत्रवित् । ताम्रादिकं सजीवनिविद्यो महारसोपरसं शत्रुं दस्त्वा निविद्योते । तारहेमयोमित्रिवित बीजकार्यं ॥२०४॥ निविद्यो महारसोपरसं शत्रुं दस्त्वा निविद्येत् । तारहेमयोमित्रविति बीजकार्यं ॥२०४॥

इदानीं रसस्वभाव उच्यते—

पूर्वं धूमस्वभावेर्व्रजिति शिक्षिणतो जारितः स क्रमेण शब्देनैवोत्प्लुतेन प्रभवति स पुनः कम्पनिष्कम्प एव । वेधी शब्दी प्लुती न प्रभवति स पुनः सूत्रवेधी सकम्पो निष्कम्पः कुन्तवेधी त्रिविध इह पुनः सारितः सारणाभिः ॥२०५॥

रै. भो. ḥGaḥ Sig Las (केम्पश्चिद्)। २. च. 'स्वभावम्' नास्ति। ३. भो. ḥDren Byed (कर्षकस्य)।

838

15

25

पूर्वमित्यादि । इह पूर्व घूमस्वभावेर्वजिति शिखिगतो यः स जारि[216a]तः क्रमेण शब्दं कृत्वा व्रजति वालः, प्लुतेन व्रजति कुमारभूतः, प्रकम्पेन व्रजति प्रीटः, वृद्धो निष्कम्पो वेधानुवेधी यदा-भवति। अत्र वेधी लोहस्य शब्दी वालो न भवति. प्लुती च न भवति, किन्तु पत्रलेपेन मृद्धग्निना किञ्चित् कामयेदिति कुमारः। एवम्-

> बालः[श्च] पत्रलेपेन कुमारोऽप्यन्धमूषया। युवानः कुन्तवेधेन वृद्धो वेधी यथेच्छया॥

एवं वेघी शब्दी प्लुती च प्रभवति स पुनः पूर्व यो धूमगामी पत्रवेधी, सकम्पः कुन्तवेघो । सः पुनिस्त्रविधसारणाभिर्वक्यमाणाभिः सारितो वृद्धो भवति, स यथेप्सितेन लोहं विद्वयति । इति रसगुणनियमः ॥ २०५ ॥

इदानीमोषधीगुणमुच्यते-

दिव्यीषध्या बलेन प्रभवति बलवान् जारितः सर्वलोहान् कोऽसी तासामभावे क्षितितलनिलये यः करोत्यस्य बन्धम । बद्धे स्यात् खेचरत्वं मरणमपि तथा भक्षिते नाशमेति ज्ञानाभावे रसेन्द्रः क्षितिपतिभिरयं साधनीयः प्रयत्नात ॥२०६॥

दिव्येत्यादि। इह सर्वत्र रसशास्त्रे वज्जवेकान्तकस्पर्शाद् दिव्योषधीसंयोगाद् रसो-अभ्रकं निर्मुखं जरतीति तेन वज्राभ्रकद्रावकाः पाषाणाः, तेषां स्पर्शेन विडेनेति दिव्यौ-पघ्यो रसीपघ्यो वक्ष्यमाणाः, तासां बलेन प्रभवति बलवान् जारितः सर्वलोहान् अभ्र-कादीन् । कोऽसाविति । तासां दिव्योषधीनामभावे क्षितितलिलये योऽस्य सूतकस्य बन्धं करोति । दारिद्रयरागापहरणं बद्धे स्यात् । लेचरस्वं नृणाम्, मरणमपि तथा भिक्षते नाशमिति यस्य प्रभावतः । तस्माद् ज्ञानाभावे रसेन्द्रो रोगापहरणार्थं क्षितिपतिभिरयं साधनीयो रसेन्द्र इति नियमः ॥ २०६ ॥

द्रव्यं तेषामनेकं व्ययमिष च भवेद् गीतवाद्याभियोगै-स्तन्नष्टं यन्न दग्वं नृपरसविषये धर्मकार्ये न दत्तम्। यो द्रव्यं पापहेतोव्यंयमिं कुरुते तेन तत् पापबन्ध-स्तस्मात् सत्त्वार्यहेतोर्व्ययमपि सकलं बोघिसत्त्वः करोति ॥२०७॥ अपरवृत्तेनापि सुबोधेनेति ॥ २०७ ॥

इदानीं दिव्यीषधीलक्षणमच्यते-

पटले, २०५-२१२ वलो.]

या लेपात ताम्रपत्रस्य हरति सहसा कालिकामीषधीं तां धन्याः पश्यन्ति भूम्यां सकलरुजहरां जारणीं लोहजातेः। अन्याभियोऽस्य बन्धः प्रभवति नियतो वर्षकालान्तरैः स संन्यासयोगेरधिकरस भवेदेकसाहस्रवेधात ॥२०८॥

या लेपादित्यादि । इह ताम्रपत्रस्य या लेपमात्रादिग्निक्षिप्तस्य कालिकां सहसा तत्क्षणाद हरति, ओषघीं तां दिव्यां महारसत्त्वां घन्याः पश्यन्ति भूम्यां सकलक्जहरां भक्षितां जारणीं लोहजाते रसवन्धनाय। अन्याभिरोपधीभिर्योऽस्य सूतकस्य बन्धः प्रभवति नियतो वर्षकालान्तरैरिति द्वादशवर्षः, सः स्वेदैः संन्यासयोगैरिधकरसो भवेद बन्धः । एकसाहस्रवेघादूष्वं वेघो न भवतीति नियमः ॥ २०८ ॥

सर्वासामोषधीनामतिकट्करसैः क्षारवर्गाम्लवर्गः सन्धानं काञ्जिकेन प्रभवति हि सदा मदौनस्वेदनार्थम् । इवेतानां तारकार्ये पुनरपि कुसुमैर्वापितैर्बीजशुद्धि-र्द्वन्द्वं सौभाग्यकाचाखहयखरविषैः स्नेहसेको मुद्दवे ॥२०९॥

रम्भाचित्रादिभस्माधगजनरजलैः सप्तधा सर्वक्षारान् कट्रेचापि पुना रूपरसान् शोधितान् भावयेतान्। भयो भयोऽग्नितापैः पुनरपि शतधा भावयेच्छोषयेच्च एवं शङ्घस्य चुणै शतपुटितमिदं गन्धकं भावितं च ॥२१०॥

लोहानां द्रावणार्थं भवति विडमिदं सूतकस्याष्टमांशं रसहृदयगतं द्रावयेद् यावदेव। दोलास्वेदोऽष्टरात्रं क्वायात् तीव्रो मलक्व प्रभवति बलवान् मर्दितो जारितौऽसौ एके लोहे द्रुते स्याद्रविशशिवपुषा रञ्जयेत् सर्वलोहान् ॥२११॥ स व्यापी सारितश्च क्रमति समहतेर्नागरङ्गेः ससिक्यैः एवं यः सूतकस्य प्रतिदिनं कुरुते कर्मभिवंक्ष्यमाणैः। कालान्तरेण स्फुटगुरुघनतां सर्वदोषप्रमुक्तं तस्य व्याघि समृत्युं हरित वरतनौ सर्वदारिद्रचदुःखम् ॥२१२॥ अस्माद् वृत्तादपरवृत्तचतुष्टयं सुबोधम् ॥ २०९-२१२ ॥

25

इदानीं रसरक्षणार्थं जम्भलपूजोच्यते-

हस्तार्घे हेमपद्मे वसुदलसहिते कर्णिकागर्भेमध्ये वर्ज्य शुद्धेन्द्रनीलं सुरयमधनदे पद्मरागेन्द्रकान्तः। पृष्ठे कर्केतरत्नं शिखिदनुकहरे त्वायसं ताम्रतारं हेमं वायव्यपत्रे कनकपटलजा कर्णिकायां च पिष्टी ।।२१३।।

हस्तार्ध इत्यादि । इह हस्तार्धे वितिस्तिमात्रे हेमयपोऽध्वले कर्णिकार्या गर्भमध्ये बच्चं शुद्धहेम्ना बन्धयेत् । पूर्वपत्रे इन्द्रनोलम्, दक्षिणपत्रे पद्मरागम्, पश्चिमे कर्केतरत्ने पोतम्, उत्तरे चन्द्रकान्तरत्नम् । अय आग्नेय्यां तीक्ष्णं बन्धयेत्, नैत्रर्तये तास्रम्, बायव्ये स्वर्णम्, ईशाने रौष्यमिति । हेमाश्रकपिष्टी कणिकायां बच्चोपरि स्थापयेत् ॥ २१३ ॥

तस्या मूब्ति द्विहस्तं सनकुलवरदं जम्भलं हेमजं च गर्भे पत्रेऽष्टदेव्योऽम्बुजवरदकरा हेमजास्तारजा वा। मोलो रत्नेशबुद्धो मणिवरदकरो यक्षिणीनां तथैव हंहाद्या हस्वदोर्घा दिशिविदिशिदलेष्वष्टवर्णाः कमेण।।२१४।।

तस्याः पिष्ट्या उपरि हिभुजं जम्भलं सुवर्णेन कृतं वामे नकुलहस्तम्, दक्षिणे

15 वरदहस्तम्, चतुरङ्गुलमुल्णीयमानेन । एवं प्रवेज्वष्टयिक्षण्यः कमलवरदहस्ता हेमजा
1465 स्तारजा वा । इह यदि जम्भलस्तारंजस्तदा यक्षिण्यो हेमजाः, यदा जम्भलो हेमजस्तदा यक्षिण्यस्तारजाः । एवं यदा स्वर्णेकमलं तदा तारकुण्डम्, यदा तारकमलं गर्भे
तदा हेमकुण्डं जलदानाय भवति । मौली रत्नेशबुद्धो मणिवरदकरो यक्षिणोनां[216b]

तथैव । एवं सप्रज्ञो जम्भलो बसुधारासहितो हलाहलवत् । तयोवींजं कणिकायां हं 'हा

20 जम्भलबसुधारयोः । एवं पूर्वदेव्यां 'हीं, अन्तो हीः, दक्षिणे 'हतं, नैऋतं ये 'ह्नीः, उत्तरे
'हू, ईशे हूः, पिष्टचमे 'हृल् वायव्ये 'हृल् । तारा स्पर्शवच्या, पाण्डरा रसवच्या, मामकी

स्पवच्या, लोचना गन्यवच्या, वच्याद्वीद्वरी वसुधारा इति । द्रव्यार्थं सर्वधातवो

महारत्नमृद्रिताः सनायकाः कतंव्या इति नियमः ।। २१४ ॥

गन्धै: पुष्पैस्त्रिसन्ध्यं प्रतिदिनसमये पूजियत्वेन्दुकुण्डे ॐस्वाहान्ताद्य मध्ये जिमति भल जलेन्द्राय तोयं प्रदेयम् । मन्त्रेणानेन राजन् प्रमुदितमनसा वादिमा रक्षणायं-मेवं रक्षाविधानान्नहि हरति रसं भूतनाथोऽहिनाथः ॥२१५॥

१. मो. हा:। २. च. हि। ३. च. हूं। ४. च. हु। ५. च. हुं। ६. च. ह्नः। ७. च. हृः। ततो गन्धैर्थ् पेः पुष्पादिभिः पूजयेत् प्रतिहिनं त्रिसन्ध्यायां रोध्यकुण्डे । ततोऽ ह्टोत्तरशतं चुल्लकेन तोयं देयमनेन मन्त्रेण —ॐ जम्भलजलेन्द्राय स्वाहा इति । प्रमुदितमनसा वादिना रसरक्षणार्थं जलं देयम् । अनेन रसाविधानेन न हि हरित रसं भूतनायोऽहिनायो नागराजः । एवमन्येऽपि ये रसापहारिणो देत्या न हरिन्त रसं वष्णधराजया जम्भलरक्षणेनेति ॥ २१५ ॥

इदानीं रसजारणमुच्यते-

पटले, २१३-२१७ इलो.]

इष्टा क्षाराम्लवर्गेर्दशदिवसरसं मद्येत् स्वेदयेच्च कल्कस्यं पातियत्वा पुनरिप च ततः क्षेपयेत् सर्वकालम् । भूयस्तत्पात्तकल्के यदि स्त्रियति रस्रो जारयेत् सोऽपि तत्र सूतो भुक्तः स्वयोनि स च पुनरपरां सर्वयोनि प्रभुङ्कते ॥२१६॥

इण्टेरवादि । इह प्रथमं इप्टचूणं छवणं दत्त्वा बोजपूरकाश्चास्केत रसं मर्वयेद् दशदिनं यावत् स्वेदयेच्च । ततो मुख्यान्यरसं गृहीत्वा शेषोदकं शोषिवत्वा करकस्यं रसं पातियस्वा पुनरिष तिस्मानेव रसे क्षेत्रयेत् सर्वकालिमिति । मर्दितस्य सूतस्य यत् कल्कं भवति, तत्सकलं पातनीयं रसग्रहगाय । भूष इति पातिते रसे यदि रसो न पतित, तदा तिस्मानेव कल्के रसी मृतः संध्मातः ग्राह्मापरलोहेन सार्वं सोऽपि बारयेत्, तत्र शोधितः सृत स्वयोनि भुक्तः सन् स पुनरपरां सर्वलोहानां योनि मुङ्कत इति ॥२१६॥

इदानीं सर्वलोहसंकरजारणोच्यते—

नागं तोक्ष्णारताम्नं पटलजमपरं क्षेत्रजं वा विशुद्धं तुल्यं ह्येकन्न व्मातं सितघनजसमं तारकार्ये च बङ्गम् । षष्टचंद्यां ग्रासमादौ द्रुतमपि च ततो वर्धयेदेकवृद्धया पादांदां यावदेव प्रभवति हि ततद्वाधिकं न प्रदेयम् ॥२१७॥

नागिमित्यादि । इह लोहान्येवं परस्थरं जारयन्ति तेन संकरं कारयेत् । नागं तीक्ष्यम्, आरं ताम्नं परलजनमञ्जरुलेहं क्षेत्रजं वा नानापाधाणलोहं तीक्ष्णादिस्याने विद्युद्धम् । एतल्लोहपञ्चकं समभागिकमेकत्र घ्मातं संकरलोहं भवित हेमकार्य । रसायनं कार्ये नागं न देयम्, चतुर्लोहसंकरं कुर्यात् । तारकार्यं स्वेताञ्चकलोहं बङ्कं हाम्यां सह तारं जारयेत् तारकार्ये । एवं संकरं कुर्यात् । तारकार्यं स्वेताञ्चकलोहं बङ्कं हाम्यां सह तारं जारयेत् तारकार्ये । एवं संकरं कुर्यात् सं संबोध्य नानाजारणीयसन्त्रेषु नौकायस्त्रे श्रेष्ठम्, तेन नौकायन्त्रे रसं क्षेपयेत् । ततो रसात् विवादं गृहीत्वा खरलिशलायां संकरः पिष्टि कारयेत् । मूलरसस्य पष्टधंशं लोहेन । एवं षष्ट्यां प्राप्तमावी दत्वा नौकायस्त्रे पिष्टि कारयेत् । मूलरसस्य पष्टधंशं लोहेन । एवं षष्ट्यां प्राप्तमावी दत्वा नौका नुषगो-मूण्यये ततो रसोपिर नेत्रकर्पटं दत्वा उपिर पूर्वोक्तं सत्याय काङ्गिकं दत्ता नौका नुषगो-कर्पच्यां लाहेकं त्या पासं जरित । ततो जोणं सत्यपरं हिगुणं तेनेव क्रमेण देयम्, पुनर्जीणं हाभ्यां वा प्राप्तं जरित । ततो जोणं सत्यपरं हिगुणं तेनेव क्रमेण देयम्, पुनर्जीणं

20

25

10

15

20 T 466

ज्ञात्वा कर्षटे गालितस्य यदि पिष्टिर्न कर्षटे दृश्यते तदा जारित उच्यते । एवं ग्रासं वर्षयेद् यावत् पादांशं प्रासं भक्षयति, तदुपरि न वर्षयेदिधकं न प्रदेयमिति प्रतिषेधः । तदुष्यं पूर्वोक्तं बीजमनेन विधिना ॥ २१७ ॥

पक्षेकेन द्विगुष्यं जरति पुनरसौ बीजमेवं विशुद्ध-मेवं द्वित्र्यष्टगुष्यं जरति पुनरसौ जारितः सद्विडैश्च । चक्रस्वेदोऽप्यजीर्णे प्रभवति हि रसस्याष्टरात्रं हि यावत् स्पर्शीर्देव्यौषवीभिजरति शिखिगतो निर्मुखं ह्यत्र लोहम् ॥२१८॥

पक्षेकेन हिगुणं जरित पु[2174]नरसी रसी बीजमेव विशुद्धम्, एवं बीजं हिम्बष्टगुण्यं जरित पुनरसी जारितः सिंहिडेश्च पूर्वोक्तीरिति । अथाजीणं भवित तदाऽ- जीणं चकस्वेदः कर्तव्य:, गोस्ताकारमूषायां रसं कृत्वा भूम्यां निधापयेत्, अञ्चलत्रयं यावन्न दृश्यते । ततो बाह्यं चक्राकारं खानि कृत्वा 'तद् गोकर्षचूर्णः पूरियत्वाऽनिर्वेदः । तेन चकस्वेदेनाष्टविनैः सिवडी रसी मूषायामजीणंदीषं त्यजति, ततः पुनर्नीकायन्त्रे क्षेत्रणीयः । एवं वर्षमेकमादि कृत्वा द्वादशवर्षपर्यन्तं वेधानुवेधीकरणाय जारयेत् सर्वन्त्रे क्षेत्रणीयः । व्यव्यवसात् स्पर्धीमलन्ति, दिन्यीषध्यश्च द्वावका जारकाश्च, तदा स्पर्धाद्यकचूर्णविडीदव्योषधिभः पूर्वोक्ताभिरिनस्थोऽप्यश्चकलोहं निर्मुखं जरित, तेनातिवलो रसो भवति ॥ २१८ ॥

अभ्राल्लोहेऽष्टगुण्यं बलमिष च भवेत् तद् द्वृतौ चाष्टगुण्यं तस्माद् बीजेऽष्टगुण्यं पुनरिष च ततो वज्रपरनेऽष्टगुण्यम् । एवं लोहानि रत्नान्युगरसकरसाञ् जारयेद् विल्लमध्ये आवर्तं यावदेति प्रभवति स ततोऽनेकलक्षप्रवेघी ॥२१९॥

अभ्रकादभ्रकलोहे जोर्णेऽष्टगुण्यं बलं भवति । तस्य हुतौ ग्रस्ते सित तस्याप्यष्टगुण्यं बलम्, तस्माद् द्वृतरष्टगुण्यं बोजे जीर्णे भवति । तस्याष्टगुण्यं पुनरिष बलं बज्जरस्ने ज जीर्णे इन्द्रनीलादिके, इति बलनियमः । एवं लोहाबीन्यिमनमध्ये जारयेद् यावदावतंमिति प्रभवति स ततोऽनेकलक्षप्रवेघी । तस्य "मारणाद्यं न कर्तव्यम् ॥ २१९ ॥

स्पर्शोषघ्योरभावे जरित वरिवर्डमंदंनैः स्वेदनैश्च निष्कम्पो यावदेव प्रभवित हि ततः सारणा हेमतुल्या । भूयोऽन्या द्वित्रगुण्या द्रुतकनकरसैः क्षेपितैस्तैलसूते द्रव्यार्थेऽष्टाङ्गनागं द्रुतकनकरसे क्षेपणीयं प्रयत्नात् ॥२२०॥

१. मो. 'तद्' नास्ति । २. भो. sGyur Bar Byed (परिवर्तनं) ।

स्पर्शीयध्योरभावे जरित वरिवर्डैः पूर्वोबतेः, मर्वेनैः स्वेदनैःच निष्कस्यो यावदेव प्रभवित हि ततः सारणा हेमतुल्येति । इह जारितो रसो ज्वलदङ्गारे दत्तो यदि न कस्पं कुत्वा गच्छति, तदा निष्कस्यो यः स गोस्तनाकारमूषायां प्रक्षित्य एरण्डतेलमुपरि दाणयेद् यावद्रसो निमज्जति । ततो हेमरसतुल्यं द्रावियता द्रव्यापॅडप्टांचं नागं दत्ता रसोपरि क्षिपेत्, तेन सारितो भवित । पुनरप्यनेनैव कमेण द्विगुणस्वर्णेन प्रतिसारितो भवित , त्रिगुणेनानुसारितो भवित । एवं त्रिया सारितो वेधीभवित लोहबलानुरूपेण सहस्रपर्यन्तमिति । ततस्ताम् द्रावियत्वा रसं चूर्णयत्वा सिक्यकेन संबद्ध मृतनाग-वङ्गाभ्यां सह तत्र विषेत्, तेन कामित वेधी च भवित, तारे वा हेम्नि वेति जारणानिवमः ॥ २२०॥

इदानीं संन्यासबन्ध उच्यते-

हेमं तीक्ष्णाहि ताम्रं फणिदरदिशलागन्यकैमीरियत्वा रङ्गोन्दुं तालताप्यैधंनजमि तथा हेमतारस्य कार्ये। तुल्यं क्षारा विषं(डं) वै लवणमुपरसा लोहतुल्यक्व सूतः पित्ताम्लैमंदंयित्वा दशदिनमपि तत् क्षेप्य पाषाणमध्ये॥२२१॥

षण्मासं भूमिगर्भे ह्युपरि सिशिखिना स्वेदितः सर्वेकालं घोषाक्रुष्टस्य वेबी प्रभवित स रसः षोडशांशेन भूयः। ताम्रोन्दुं हेमतुल्यं शुभकनकमिदं वादिनां दुःखनाशं शुद्धं ताम्रं हि विद्धं रजतमिष भवेद् दत्ततारेऽष्टमांशैः॥२२२॥

हेमिन्द्यादि । इह हेमं नागेन मारयेत् प्रतिवापेन तीक्ष्णं दरदेन पुट्योगेन, ब्रहिन्नां मनःशिलायां मारयेत् । ताम्रं गन्धकेन मारयेत् हेमकार्यं । तारकार्यं क्षेत्रनाक्षिकेन तारं मारयेत्, तालकेन व ह्रं मारयेत्, घनजमिष क्ष्तताश्रकलोहं माक्षिकेन मारयेत् । तताश्रम् त्राव्यं ह्रेष्ठ माक्षिकेन मारयेत् । तताश्रम् त्राव्यं ह्रेष्ठ व विक्रं च तुल्यम्, लवणानि तुल्यानि, उपरसान् शत्र्यामिणः, ल्रोहतुल्यः सूनकः, सर्वमेकीकृत्य पिन्तमेत्त्यादीनामस्वर्वेशिपूरकादीनां बर्बादिनं मर्विपत्या तस्वर्वपाषाण्यस्थान् सुप्रेट् प्रक्षिप्य ततो भूम्यां निघाप्य उपरि लिग्नाना स्वेदितः सर्वकालं पणासं याविदिति । ततो विद्यो मर्वति । ततः वणासात् [2176] तस्य ताश्रस्य वेषो भवित । षोष्ठशोशेन पुनन्ततेवेव विद्यं तान्नं रोप्यं हेमतुल्यभागं कृत्या पुरेनोद्घाटयेत् । ग्रुभकनकित्वं भवित वाचिनां दुःखनाशिमित । अय तारादिसंन्यासेन वन्धः, तदा गुढं ताम्नं विद्यं तारं भवितं , अप्टांशेन तारे दत्ते सतीति संन्यासवन्धित्यमः।

अथादिबुद्धोक्तो गोलकवन्ध उच्यते—इह हेमकार्ये पीताभ्रकादिकमभ्रकं किश्चि-ज्जारसेत्, 'सकलं वा अर्थं वा । तारकार्ये स्वेताभ्रकम् । ततो हेमकार्ये नागेन पिष्टं

१. भो. mNam Pa (समं)।

T 467

20

कारयेत्, तारे बङ्केन । ततो हेमपत्रेण तं वेष्टयेत् । तारपत्रेण तारकार्ये । तथा हेमपत्रो-पिर मनःशिकां पिष्ट्या गोमूत्रेण तथा प्रलेषो देयः । ततो बाह्ये दरदेन । ततः कुम्भकार-मृत्तिकया वेष्टयेत्, ततः शुष्के पुनर्गोमयेन वेष्टयेत्, पुनस्तीव्रातपेन शुष्कं कृत्या गोकपांग्निना मृदुपुटं देयम् । ततो भस्मनोऽपकृत्य मृद्गोलकं कोष्ठिकायां तीव्राङ्कारधमेत्, यावन्महारसोपरसहमनागिष्टीः समरसीभवन्ति । ततः शीतीभृतं गोलकं भेदियत्वा मध्ये यत्सुवर्णेन सह पिष्टिकया यद्योगेन गोलकवन्धः, तदेव ताम्ये चतुष्पष्टयंशोन क्षिसं पूर्वबद् हेम तारं वा भवतोति गोलकवन्धो मूलतन्त्रे ॥ २२१-२२२ ॥

इदानीं क्षेत्रलोहैर्बन्ध उच्यते-

180

पाषाणा ये धरण्यां फलतनुसदृशाः शङ्खपुण्डादिरूपा-स्तद्योनि तेषु दत्त्वा घृतमधुसहिता धामयेत् तीववातैः । शुद्धि कृत्वा निषेकैः पुनरिष च पुनष्टङ्गणक्षारवर्गे-र्ज्ञात्वा तल्लोहयोनि द्विगुणमिष रसे वादिना जारणीयम् ॥२२३॥

पाषाणेत्यादि । इह पृथिथ्यां ये पाषाणा नानाजीवाकारा नानाजलायाकाराः, तदेव योनिन्तेषां दस्या जीवानां जीवमांसं फलानां फलचूणं शङ्काकारादीनां शङ्कादिचूणं दस्या तेषां चूणं तेन चूणेंन सार्वं घृतमधुदङ्गणसहितवदकान् कृत्वा लोहपातनवस्त्रण तोवं धामयेत्, यावल्लोहं पति । पुननिषेकोद्धते पुनष्टङ्गणं दस्या शोधयेद्
यावद्विशुद्धं भवति । एवं शुद्धि कृत्वा तथोनि ज्ञात्वा तीव्रणं ताम्रं वा होमेन सह द्वन्द्वं
कृत्वा तदेव वादिना द्विगुणं जारणीयम ।

पूर्वमध्रकं जारियत्वा संमुखं वा निर्मुखं वा, ततोऽत्यानि लोहादीनि जारणी-यानि । एवं माक्षिकं ताम्रं स्वर्णं जारयेत्, तृत्थकं ताम्रं स्वर्णं वा, राजावर्तकताम्रं स्वर्णं वा, शशकताम्रं स्वर्णं वा । इह यथा क्षेत्रपाषाणानां लोहं पातयेत्, तथा माक्षिका-दोनां विमलादोनां शोषयेत् । ततः पूर्वकर्मकराणि भवन्ति, अन्यथा द्रव्यं विनाशयन्ति ।

अयादौ वादिनां जीवनोपायः कथ्यते, येन भुक्तमात्रमक्छेतेन [जीर्ण] भवित । इह जारितरसेन पत्रलेपन हेर्माद्धका भवित, असारितेन कुमारेण वालेन वा । अत्र पुन-रित्रभागिकादलेकं हेमद्वयेनोच्यते । अत्र प्रथमं ताम्रं लवणकाञ्चिक्नकेन पत्रं कृत्वा निषेक्रयेद् यावच्चूर्णं भवित । ततस्तोयं दस्वा लवणदोपमपहृत्य ततः शोषयेत् । ततः सैन्धवं षोडशांशेन दस्वा बोजपूरकाद्यम्लेन मर्दियत्वा पुटे पाचयेत् । एवं पुनः पुनः सैन्धवं दस्वा पुटे पाचयेत् सप्ताष्टवारम्; [218a] यावद् इष्टकाधूलिसद्वं किञ्चित् स्यामं भवित । ततो मध्युतटङ्गणेन विद्वां कृत्वा पूर्ववल्लोहं पातयेत् । ततो मलरिहतमर्धमात्रं लेना पुनस्तदेव पत्रं कृत्वा गन्धकेन पादाणं दरदं दस्वा पुटेर्मारयेत् । तच्चूर्णं पुना स्वेनाष्टांशेन सह रसिद्वगुणं गन्धकं रसार्थेन दरदं दस्वा पुटेर्मारयेत् । तच्चूर्णं पुना स्वेनाष्टांशेन सह रसिद्वगुणं गन्धकं रसार्थेन दरदं दस्वा मद्रयेदम्लेन, पुनः स्वेदयेत् । खरिर पुनमंदयेत् सप्ताहम् । तदेव संकीर्णमुखवृत्तमाण्डे कृम्भकारचिटते प्रक्षिपेत् । ततो भाण्डमुखं कुम्भकारमृत्तिकया मृत्येत्। भाण्डस्यापि बाह्यळेपो देयोऽङ्गुलैकोच्छितो नालिकरप्रमाणः, विस्तारेऽधिको न देयः। तत आतंषे शोषयेत्। पुनर्क्षिरं गोमयेन लेप-येत्, पुनः शोषयेत् यावद् गोमयं शुष्कं भवति। ततः पुटेन पाचयेत्। एवं ताम्रजूर्णमालिङ्क्षय रसो भियते, ताम्रं च निर्दोषं भवति, परस्परयोगादिति। ततस्तरस्य पादांशं स्वर्णं दत्या स्वर्णंद्विगुणं ताम्रं दत्वाऽभ्रमुषायां घमेद्यावत् सर्वं समरसं भवति। ततः शोतीभृते कपालिकामपहृत्य पुनः पादांशं स्वर्णं दत्या स्वर्णंद्विगुणं ताम्रं पुर्वे-बद्धामयेत्, ततः शोतीभृते कपालिकामपहृत्य हुमाथंन हुमं भवति पुट्वयेन विश्वद्वामित्।

अथापरः प्रयोग उच्यते—एतच्चूणं हेम्नि द्विगुणं वा त्रिगुणं वा तिर्वाहयेत्। तेन पादांशेन रसे पिष्टिकां क्रत्वा इष्टरकगर्भायां प्रक्षित्य उपिर गन्थकच्चूणं दत्वा, तदुपरि पियानं दत्वा, तदुपरि प्रविद्यानं प्रसिद्य उपिर गन्थकच्यूणं दत्वा, तदुपरि पियानं दत्वा, तदुपरि प्रक्षित्रं दत्वा निर्देहेद्द्यदारान्। ततः शोतीभूते पुनः पुनः पिष्टम् सु(?) तुल्यं गन्थकं दत्वा निर्देहेद्द्यदारान्। तो रसो हेमािष्ट्रङ्गाति, न मुश्चित् । ततः सत्यस्य प्रदाशं वीजं दत्वा तदेव ताम्र तासमं दत्याऽभ्रम्पायां घमेत्र । ततः शीतीभूते कपािलकामपह्य तद्वं पत्रं कां कार्रयेत्। तया पिष्ट्या पत्रलेषं कार्रयेत्। तम् विष्ट्या पत्रलेषं कार्रयेत्। त्वाम् वृत्यत्वार्यस्य पत्रलेषं कार्रयेत्। त्वाम् वृत्यत्वार्यस्य त्वार्यस्य विष्टा पत्रलेषं कार्यस्य प्रमुक्तिकां दत्वा, उपिर बिह्नात गृहपाकादिकं कर्तव्यं दितत्रयं यावत्। तत उद्धृत्य पुतः पादांशं बीजं दत्वा उद्धरेत्। तत्यत्रं तद्वा दलं भवति, सार्थकेन विशिष्टं स्वणं भवतीत्यादिबुद्धमगवतोक्तम्, अपरं विस्तरं न लिखितम्॥ २२३॥

इदानीं शरीराधिनां रसायनमुच्यते-

सप्ताहं कोष्ठशुद्धिस्त्रिफलसमरसं ववाधितेनोदकेन भौषध्या मारितैर्वे घृतमघुसिहतैर्लोहचूर्णेः ससूतैः। गोदुर्ग्यः शालिभवतैर्भवति नविष्रैः पक्षमध्ये नराणां भवतैः शाकाम्लहीनैर्लवणविरहितैर्मतस्यतैलाग्निमुक्तैः॥२२४॥

सप्ताहिमित्यादि । इह यः कित्वद् बढरसं भव्यति, तदा तेन प्रथमं कोष्ठशुढिः कर्तव्या । सा च त्रिफलासमभागवविषतेनोदकेन विरेचनं कर्तव्यम् । लवणाम्लरिहतं शालिभक्तं दुग्धेन पथ्यं कर्तव्यम् । तत औषध्या मारितेलीहचूणीरिति निर्मृण्ड्या मारितेलीहचूणीरिति निर्मृण्ड्या मारितेलीहचूणीरिति निर्मृण्ड्या मारितेलतीहणचूणीः, धृतमधूसहितैः ससुतैः सुमृतसूतकतुल्येः, तदेवाधामात्रं प्रतिदिनं भक्षणीयं पथ्यं गोदुाधैनेविचरिरिति प्रथमगोप्रसूतैः, भुक्तः पुरातनेविचरिरिति । एवं पक्ष-मध्ये कोष्ठशुद्धिभवति, धाल्यादिभिभक्तैः शाकाम्लहीनेलवणविरहितैमस्यतेलामिनमुक्तः। ततो रसं भक्षयेत् ॥ २२४॥

ज्ञात्वा साहस्रवेधी शतगुणितशतं कोटिवेघी च यावद् भोक्तव्यः सर्वपांथात् प्रतिदितसमये वान्तिमो राजिकांशः।

10

15

प्रासादं भूमिवेश्म प्रभवति रहितं शीतवातातपैश्च पण्मासैर्दिव्यदेहं वलिपलितगतं मध्यमोऽयं करोति ॥२२५॥

*[218b]न्नात्वा साहस्रवेधी शतगुणितशतिमिति लक्षवेधी, कोटिवेधी च यावद् भोनतव्य इति । सहस्रवेधी प्रतिदिनं यवमात्रं भोनतव्य: । लक्षवेधी सर्धपमात्रम्, कोटिवेधी राजिकामात्रम् । एवं चान्तिमो राजिकांशः । इह रसभक्षणाय प्रासादं घरण्यन्तःप्रासादं वा श्रोतवातातपैश्च रहितं ज्ञेथम् । एवं मध्यमो रसः सहस्रवेधी पण्मासैविध्यदेहं बलिपलितरिहतं करोति । अन्यत् प्रतिदिनमेकेन गृह्यमाणेन सिद्धरसः करोति ॥ २२५ ॥

इदानीं रसाजीणंभैपज्यमुच्यते—
कर्कोटी देवदाली त्रिकटुकबृहती निम्बिकराततिक्तं
कवार्य पानं ह्यजीणें त्रिदिनमिष पुनर्लं ङ्वानं च प्रकुर्यात् ।
एवं चन्द्रोदकाद्ये शिखिनि विषजले घौलभल्लाततीये
हुगैन्याभूमिशैलेऽपि च विषपललेऽवन्यकल्पेषु मनत्री ।।२२६॥

कर्कोटीत्यादि । इह यदा रसाजीण भवति, तदा बन्धकर्कोटी देवदाली त्रिकटुक-बृह्ती निम्बपन्न किरातिक्तम्, एभिरष्टावशेषं तोयं क्वाधं वनधनमित्युच्यते । तदेव पानं ह्यजीणं । दिनन्नयं लङ्क्षनं याबदत्यन्तक्षुधा भवति । ततः पथ्यं कर्तव्यम् । एवं चन्द्रोदके पोते त्रिदिनलङ्क्षनम्, ततः पथ्यम् । अम्म्युदके तेनेव प्रतिदिनं स्नानम्, तेनेव भक्तं गदितम् । तदेव पानं धण्मासं वर्षमेकं याबद् दुग्धभक्तं भोक्तव्यम् । विष्वजलेऽप्येवं पथ्यम्, शैलोदकेऽपि, भल्लाततोषेऽपि । एषामक्षमान्नं पानं कर्तव्यम् । अधिकं मृत्युकारीति । एवं दुर्गच्याभवणं, भूमिश्रोलभक्षणं विष्पललेषु मांसे, अपरच्छल्लपल्लवादिककल्पेष्टवं विधः पथ्यादिकः ॥ २२६ ॥

इदानीं रसायनौषधीनां लक्षणमुच्यते-

या भुक्ता तीव्रमूच्छा ददित विषसमामौषधीं तां समस्तां कृत्वा चूर्णं तदल्पं घृतमधुसिहतं भक्षयेत् तद्वदेव । सत्त्वा यां भक्षयन्ति स्फुटनरपशवः सौषधी सिद्धिदा न तेषां या मृत्युदात्री परमभयकरा योगिनां साऽमृतं स्यात् ॥२२७॥ या भुक्तेत्यादि । इह छल्लपल्लवादीनां लतादीनां या भुक्ता सा तीवमुच्छी दवाति विषतुल्यम्, तस्या औषध्याः पञ्चाङ्गं गृहोला सुक्तमूच्चं कारयेत् । तदेव बुर्ण-सल्पमात्रं प्रत्यहं घृतमधुना सहितं भक्षयेत्, तद्वदेवित शेषः पूर्वविधः । इह सस्या यां भक्षयन्ति मूच्छां न दवाति, सा औषधी सिद्धिदा न, तेषां सस्वानाम् । या मृत्युदात्रो परमभयकरा योगिनां सिद्धिदा सा, मन्त्रध्यानवलेनेति ॥ २२७॥

इदानीमपररसायनमुच्यते -

तुल्यं दण्डोत्पलस्य स्वतनुदलरसैः शालिपण्यंब्जसार्योः कान्ते पात्रेऽयसा च त्रिदिनपपि रसं गन्वकं मर्दयित्वा । पण्मासं भक्षयेद् यः प्रतिदिनसमये टङ्कपादप्रमाणं मुक्तः कुष्टादिरोगैर्वेलिपलितगतो द्वघष्टवर्षाकृतिः सः॥२२८॥

तुल्यमित्यादि । इह तुत्यं गन्यकं वण्डोत्पलस्य रसं च शालिवर्णीरसेन, उत्यल-सारीरसेन वा, अयस्कान्तवात्रे अयोगुङ्किया मदंयेत् त्रिविनम् । एवं मदंयित्वा प्रतिदिनं भक्षयेत् । टङ्क्यावप्रमाणमिति मापमेकं भक्षयेत् । स मुक्तः कृष्ठाविरोगैर्वलि-पिलतरहितः, योडशः योडशवार्षिकोऽत्र भवतीति ॥ २२८ ॥

इदानीं रसमारणे सिद्धौषध्युच्यते—
वोनकाणाकाशवनुः प्रचलमि रसं मारयेत् कीरचञ्चु
अन्यौषध्या मृतस्यारुणमि फलजं हेम कान्तं च तुल्यम् ।
एकीकृत्वा सजीवे मलविगतरसे गोलकः षट्पलैरच
पूर्वोकात् कान्तपात्राद् वलिपलितहरः क्वाथितो मस्तकेन ॥२२९॥

वोक्काणेत्यादि । इह यः संकोचं मारणं च इच्छित रसस्य, तेनेमा औषघ्यो गवेपणीयाः—वोक्काण इति । हिङ्गु, येन नीलसूत्रे लिल्ते देवेतं भवित । तेन मूपायां छिसे रसो भ्रियते । आकाश इत्यस्वरः, भैरण्डविष्ठा, स च द्विधा—छत्रास्वरः शिखा-स्वरस्व । अगिनमध्ये शिक्षस्य मूर्षिन प्रसारितवस्त्रं यदि शिखाकारेण वस्त्रं भेदिमिला धूमो निश्चरित, स उत्तमः । न(यः) छत्राकारेण धूमस्यो वसित स मध्यमः, तेनापि संकोचवन्यः । एवं शाक्तुकविषस् । एवं कोरचञ्चु इति शुकृतुण्डकं रक्तसावो, छोके रक्तनिक्कर्षकत्वेन प्रसिद्धम् ।

^{*} मातृकाया 218b पत्रस्यात्यन्तमस्पष्टत्यात् यत्र तत्र भोटपाठसाहाय्येन पुनस्द्वियते।

१. हिङ्गुलस्यैकं भेदान्तरम् ।

20

188

20

T 468

*[219a] एवं कंपद्मवान्(?)यस्योपरि पादं स्थापयेत्, दिवाऽऽकाशे नक्षत्राणि पस्येत्। एतानि न चेत्, अन्योषघ्या व्याजेन मारितरसस्य, अरुणं ताम्रम्, फलजम् इत्यभ्रकलोहम्, हेम अयस्कान्तलोहं च तुत्यं कृत्वा जारयेत्। चतुष्पले रसे तवयेत द्विपलेन युक्तः षट्पलः कार्यः । शेषोऽध्यात्मपटलोक्तविधिः ॥ २२९ ॥

इदानीं सहस्रवेध्यादिरसानां स्वभाव उच्यते-सन्पदशदिनैः सप्तरात्रतिरात्रै षण्मासेद्वर्चेकमासे: रात्रेणैकक्षणेन प्रभवति च तनौ सिद्धिरस्य प्रभावात्। सामान्या मध्यमा च प्रलयविरहिता चोत्तमा ज्ञानसिद्धिः पंसां हीनोत्तमानां स्वकृतशुभवशान्नैकजन्मानुवेधात् ॥२३०॥

पण्मासैरित्यादि । इह पूर्वोक्तविधिना भक्षितश्चेत् सहस्रवेधी पण्मासै: कायं परमं करोति । ततः पण्मासेरस्य प्रभावात् तनौ सिद्धिभवति । मासद्वयेन दशसहस्रवेधि-प्रभावात्, एकमासेन लक्षवेधिप्रभावात्, [सन्पदशदिनैः] षोडशदिनैश्चतुर्स्त्रिशल्लक्ष-वेधिप्रभावात्, सप्तदिनैः षष्टिलक्षवेधिप्रभावात्, त्रिदिनैरशीतिलक्षवेधिप्रभावात्, एक-दिनेन कोटिवेषित्रभावात्, एकक्षणेनेति झटिति सिद्धिः। इयं रसादिसिद्धिः सामान्या खङ्गादिसिद्धिविद्याधरसिद्धिश्च । कर्ममुद्रासिद्धिज्ञीनमुद्रासिद्धिश्च मध्यमा । एतयो-हत्तमा स्वपरहिता परमज्ञानिसिद्धः प्रज्ञाविम्बभावनया । साऽपि येन या सिद्धिभविति पंसां स्वकृतश्भवशात् तत्र वासना भवति नैकजन्मानुवेधात ॥ २३० ॥

इदानीं द्रव्यार्थिनां निधिपरीक्षोच्यते -खङ्गान्नुस्नेहदीपः प्रकटयति निधि पद्मसूत्रस्य वर्त्या बल्लीवृक्षान्यभावः प्रतिदिनसमये यत्र तिर्यग्विरोधः। तस्मिन भृताधिपस्य प्रतिदिनसमये मन्त्रजापं प्रकुर्याद् यावत् खन्ये निमित्तं प्रभवति हि ततो मन्त्रिणां द्रव्यसिद्धिः ॥२३१॥

खङ्गादित्यादिना । इह भूम्यां या वल्लयो वृक्षाश्च अन्यभावा आभासन्ते, तत्र द्रव्यं भवति । अपरं च पत्र सदा तियंग्विरोध आभासते स्वस्थानार्थं कलहः, तत्र द्रव्यं विद्यते, तत्र मुलोहखङ्गस्योध्वं छ्रिकोध्वं वा रक्तपद्ममूत्रस्य वित कृत्वा नृस्नेहेन दोपियत्वा भूताधिपतिमन्त्रसाधनपटलोक्तेनाभिमन्त्रय भूमि पश्येत् । यद्यग्निजिह्वा अधः पतेत् तदा द्रव्यमस्ति, यदि न पतित तदा नास्ति । एवं यदि पतेत् तदा तस्मिन् स्थाने त्रिसन्ध्यं भूताधिपतिमन्त्रजापं कुर्यादाभासं यावत्। ततो मन्त्रिणां खन्यसिद्धिः। अन्यथा क्लेशो भवति । असुरै रक्षितं द्रव्यं केनाऽप्युद्धतु[°] न शक्यते ॥ २३१ ॥

आदौ षड्योनिमन्त्रा जिनपतिकुलिशाधिष्ठिताः साधनीया यक्षिण्यः साधयित्वा पुनरवनितले क्षेत्रवादाश्च साध्याः। नागिन्यः साधयित्वा त्वमृतफलरसा ओषधोः साधनीया डािकन्यः साधियत्वा परमभयकराइचासुराः साधनीयाः ॥२३२॥

नागाद्यान् साधियत्वा प्रवरस्रतरा योगिना साधनीया धमाद्यान साधियत्वा मरणभयकरा मध्यमा साधनीयाः। प्राणाद्यान् साधयित्वा द्रवितश्चश्चराद्विन्दवः साधनीयाः सत्सौरूयं साधियत्वा सहजजिनतन्ः सर्वगा साधनीया ॥२३३॥

सत्त्वानां मृत्युदं यत् तदमृतमखिलाधिष्ठतं सिद्धमन्त्रै-र्या गम्या सिद्धिरिष्टा त्रिभुवननिलये ध्यानगम्या च सा तु । यज्ज्ञानं दूर्लभं वे सूलभमपि सुखाधिष्ठितं वज्जपद्मे एवं ह्येवं स वजी ददत् समसूखं प्राणिनां सर्वेकालम् ॥२३४॥

अतो वृत्ताद् वृत्तत्रयं सुबोधम् ॥ २३२-२३४ ॥

इदानीं कुलागमोक्तः कुलभेद उच्यते-राह्वानी चन्द्रमूर्यौ क्षितिजलहतभुग् वायुश्न्यं चतुष्कं भुक्तं यत् पञ्चकं वे ग्रहगण इतरः षट्कमस्माच्चतुष्कम् । मेरोर्द्वीपानि दिक्षु प्रभवति विषयाः पञ्चकं बाह्य उक्तं सत्त्वादीनां गुणानां त्रिकमपरिमदं देहमध्ये तथैव ॥२३५॥

राह्वित्यादिना । इह कुलागमः - पश्चिमगृहात् चतुष्कं पद्वकं चतुष्कं पश्चकं त्रिकमिति बाह्ये देहे च विशोध्य ततो देवानां पूजा इति। अय बाह्ये राहुः कालाग्निरचन्द्रः सूर्यस्य । एषां योगश्चतुष्कम्, चतुष्पीठमित्यर्थः । ततो लोकघातु-पूरणार्थं पञ्चकं क्षित्यादि रसपर्यन्तम् । ततो ग्रहगण इतर इति चतुष्कं वर्जयित्वा भोमः, बुधः, बृहस्पतिः, शुक्रः, शनैश्चरः, केतुश्चेति । एषा गणः षट्कम् । ततो मेरो-श्चतसृषु विक्षु चत्वारि **द्वोपानि** चतुष्कम् । गन्यादिपञ्चविषयाः पञ्चकम् । सत्त्वादयः त्रयो गुणास्त्रिकम्। एवं यथा बाह्ये सत्त्वादयो गुणास्त्रिक पीठादि, तथा देहमध्येऽपि वेदितव्यम् ॥ २३५ ॥

विज्ञानानन्दरक्तामृतमिति कमलादौ चतुष्कं च पञ्च तस्मादस्थ्यादिकं यत् सकलमपि ततश्चक्षुराद्यं हि षट्कम् ।

[🍍] इतः परं मातृकायाः २१९ पत्रस्यामावात् २३७ दलोकटीकायां 'शक्तित्रयं वा कुल तद' इति यावत् पाठो भोटपाठादुद्धत्य संस्कृते उट्टब्हुचते ।

हस्तौ पादौ चतुष्कं करचरणगतं पञ्चकं चाङ्गुलीनां तासां सर्वेत्रिकं यत् कम इह सकलो वेदितव्यः कुलेऽस्मिन् ॥२३६॥

इह कायोत्परयर्थं मातृषद्ये आलयविज्ञानमिति राहुः, आनन्दः कालागिः, रक्तिमत्यिन्तरजः सूर्यः, अमृतमिति शृकं चन्द्रः, एते आदौ कायकुलोत्पत्तिहेतुचनुष्कम् । चतुष्कात्तस्माद् अस्थ्यादि पञ्चकम् । अस्थि पृथिवो, पित्तं जलम्, रक्तं तेजः, मांसचमं वायुः, मज्जाऽऽकाशम्, सकलमपि पञ्चकम् । ततद्वसुराष्टं हि षट्कमिति । [चतुः] भौमः, ओत्रं वुषः, लिह्ना वृहस्पतिः, नासा शुकः, कमेन्द्रियं शतेद्वस्यः, मनइन्द्रियं केतु-रितं पट्कम् । तथेव हस्तो पादौ चतुष्कमिति वामहस्तः पूर्वद्वीपम्, दक्षिणहस्तो दक्षिण्द्वीपम्, दक्षिणपादः पश्चिमद्वीपम्, वामपाद उत्तरद्वीपमिति चतुष्कम् । करचरणगत्वीपम्, दक्षिणपादः पश्चिमद्वीपम्, वामपाद उत्तरद्वीपमिति चतुष्कम् । करचरणगत्वापक्षम् । करचरणगत्वापक्षम् । करचरणगत्वापक्षम् । करचरणगत्वापक्षम् । करचरणगत्वापक्षम् । करचरचरणगत्वापक्षम् । करामिका चत्राप्ति प्रवासिक्यादिगुण्डारेण । तस्तां पञ्चाङ्गलीनां पर्वान्नकम् प्रवासिकम् चर्वते प्रधानम्, कम् इह सकलो वेदितस्यः कुलेऽस्मिन् इति युज्यते ॥ २३६॥

इदानीं पीठादीनां भेद उच्यते-

भूभृत् तत्त्वप्रभेदा रसगुणितरसा भानवो विंशतोति भेदाः पष्टिनैराणां सकलतनुगता रन्ध्रषट्चन्द्रसंख्याः। सर्वे ते पिण्डिताः स्युस्त्रिगुणनवचतुःपञ्चशः प्राणचाराः सञ्चारो यो ग्रहाणां स च पुनरितरैयोगिनीचार उक्तः॥२३७॥

भूभृदित्यादि । इह चतुष्पादवशाच्चत्वारो भेदाः । एवं पीटभेदाः । भूभृद् इति पीड्या । तस्वप्रभेदाः पद्मविद्यातः समुदयतः, यत्र एकोऽस्ति तत्र पञ्च । रसगुणितरसा इति पड् गुणिताः पट् पट्विंशादः भवन्ति, पट्चरणवशाद् भौमादीनां भेदाः, चतुर्ये भानवो द्वादशभेदाः, हस्तपादसन्धिभेदा द्वादश, वाह्ये चन्द्रो द्वादशराशिभेदात् । पद्मे विवातिरत्यङ्गुळीसंख्याः । तथैवाङ्गुळिपवंणां षष्टिः भेदाः । एते भेदा नराणां देवानां च सकळतनुगता न विमळतनुगता इत्यर्थः । सर्वे ते पिण्डिता रन्ध्रयद्वन्द्रसंख्या इत्येकोन्ससत्युत्तरशतं भवन्ति । सर्वे ते पिण्डिता इति, तैः पिण्डितः स्मुह्त्रगुणनव इति सर्मविद्यातः । पुगरिप शिवशक्त्योभेदा आधाराधेयधर्मेण चतुःपञ्चाशदिति विद्यात्यम् । अस्मिन् कुळे यो प्राणनाङ्यां सञ्चारो प्रहाणां नक्षत्रसञ्चारः, पूणां यः सञ्चारः स च इतर्रविद्यवनगरतेः, योगिनीसंचार उक्तः । तथीक्तं मुळसुत्रे । तथीक्तं

ेया शक्तिः सा भगेति त्रिविधगतियुता त्र्यक्षरा त्रिस्वभावा तत्र श्रीओइडियानो वरकलसहितो मध्यसंस्थोऽतिद्यीतः। तत्सव्ये कोण एव प्रकटितनिलग्ने पीठजालन्यरश्नी-विमे श्रीपूर्णपीठं पशुजनभवदं कामस्यं तदये॥ वेष्वं संव्यापि पीठं भयकरजननी व्यापिनी स्वद्यक्ति-स्तन्मध्ये लिङ्गमेवं परमसुखकरं विन्दुरन्तःस्वनादम्। नित्यानन्दातिशान्तं भवति [च] विचितं मन्यनैः पड्विधैस्तां धत्ते यैतान् त्रिकामान् वरतनुचपलां कृव्जिकास्यां नमामि॥

इति युज्यते सर्वसत्त्वानां सहजवाहिनी [वाक्तिः] मग इति । इति [भग]स्वरूपम् । अय कुळसूत्रवेहिनिष्पत्तिकारणम्, तद्यथा—

³क्कारः कामरूपे पुष्ठिगतपुष्ठिका जालपीठेऽनिजिह्ना ओडुः श्रीमध्यपीठे त्रिविषपथगता देवग्रःङ्गाष्टकाराः। पञ्च स्युः सिद्धयोऽपि डरलक्सिहिता पञ्च देव्यश्चतस्र-स्तस्मात् शक्तित्रयं वा कुलतरु[2202]जननीं कुव्जिकास्यां नमामि॥

1. Gan Sig Nus Ma Bhaga Ses Bya De Ni rNam gSum bGrod iDan

Yi Ge gSum Dan Ran bSin gSum. De La dPal 1Dan Odiyana mChog Gi Cha Dan bCas Pa dBus Su gNas Sin Sin Tu hBar. De yi gYas Zur Nid Du Rab Tu gSal Byas gNas La dPal lDan Jalidhara Ses Bya sTe. gYon Du dPal IDan Gan Bahi gNas Te Phyugs Kyi sKye Bo hJigs Byed Kāmarūpa De YirTser. 2 De lTar Kun Nas Khyab Byed gNas Dan hJigs Dan sKyed Ma Khyab Byed Ma Ni Drag Pohi Nus Ma sTe. De Yi dBus Na rTags Ni mChog Gi bDe Byed Thig Le Nāda Khon Na gNas Sin rTag Tu dGah. Sin Tu Si Ba Yod De De Yi sTen Na Srub Ma rNam Pa Drug Gis rNam Par Phye Baho. hDod Pa gSum Po hDi rNams Byed Cin mChog Gi Lus bsKyod Kubjikā Šes Pa La Phyag hTshal. 3, Kamarupar Ku Yig Pu Li La gNas Pu Li Ka rNams Jalahi gNas Su Me ICe Nid. dPal lDan dBus Kyi gNas Su Odda rNam Pa gSum Gyi Lam bGrod Lha Yi Rwa Co Ta Yig rNams. De Yi Grub Pa rNam Kyan lÑa sTe Da Ra La Ka Dan bCas De rNams Lha Mo bSi Dan INa. De Phyir Nus Ma gSum Mam Rigs Kyi IJon Śiń sKyed Ma sGur hKhyog Ma Ses Bya Ba La Phyag hTshal,

pride not the lectural tentral econy - bala inter? िज्ञान-

- ALBERT

10

30

इति परमरहस्यं न ज्ञातं भक्ष्या(क्ष्य)दैत्यैर्मारकायिकैः कौलैरिति कुलसूत्र नियमः॥ २३७॥

इदानीं बुद्धानां धर्मसंग्रह उच्यते-

186

T 469

ज्ञानाकाशद्वयं वै पुनरपरिमदं यानरत्तत्रत्रयं च क्लेशा मारा विहाराः पुनरिप नियताश्चिद्धिपादास्त्रवाश्च । वैशारद्यानि सत्यानि पुनरिप ततः स्मृत्युपस्थानसम्यक् चत्वारः संग्रहान्ता जिनपतिकुलिशैर्योगिभिभीवनीयाः ॥२३८॥

ज्ञानेत्यादि। इह कालचक्रे योगिना धर्मसंग्रहं ज्ञात्वा ततस्तन्त्रदेशना कर्तव्या। अन्यया धर्मसंग्रहं विना कुमागंदेशना भवति, तेन धर्मसंग्रहो लिख्यते—इह ज्ञानाकाश्चद्यमिति ज्ञानं ग्राहकं चित्तम्, ग्राह्यं शून्यविम्बमिति द्वयं प्रज्ञोपायो न भगलिङ्गसंयोगः। अनेन सत्त्वार्थकृतेन यानत्रयदेशको भवति, धर्मसंग्रहवेत्ता भवति। अत्र यानत्रयं श्रावकयानम्, प्रत्येक वद्धयानम्, सम्यक्सम्बद्धयानम् । गम्यतेऽनेनेति यानम् । रत्नत्रयं वे बृद्धरत्नम्, धर्मरत्नम्, संघरत्नम् । देशको देशनाऽध्येषक इति त्रीण मुलानि, तद्यथा - बोधिचित्तोत्पादः, आशयविशुद्धिः, अहङ्कारममकार³त्यागः। तथा बृद्धशर[णं धर्म]शरणं संघशरणंमेवं त्रिशरणगमनिमति । क्लेशाः सत्त्वानां चत्वारो रागद्वेषमोहमानाश्चेति । माराश्चत्वारः स्कन्धक्लेशमृत्युदेवपुत्रा इति । एषां विनाशका बुद्धानां चतुर्ब्रह्मविहारा मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षा इति । एवं चतुर्विमोक्षाः शुन्यताऽ-निमित्ताऽप्रणिहिताऽनिभसंस्कारा इति । चत्वार ऋद्विपादाः — छन्दो वीर्यं चित्तं मीमांसेति । सत्त्वानां चत्वार आस्रवाः, तद्यथा-कामास्रवो भवास्रवोऽविद्यास्रवो ³दृष्ट्यास्रव इति । बुद्धानां वैशारद्याश्चत्वारः, तद्यथा—सर्वधमिरोहणवैशारद्यम्, सर्वधर्मदेशनावैशारद्यम्, निरावरण(नैर्वाणिक)मार्गावतारणवैशारद्यम्, आस्रवक्षयज्ञान-^{*}प्रहाणवैशारद्यम् । चत्वारि **सत्यानि,** तद्यथा — दु:खसत्यं समुदयसत्यं मार्गसत्यं निरोधसत्यं चेति । चत्वारि प्रतिशरणानि, तद्यथा — अर्थप्रतिशरणता न व्यञ्जनप्रति-शरणता, ज्ञानप्रतिशरणता न विज्ञानप्रतिशरणता, नीतार्थप्रतिशरणता न नेयार्थप्रति-शरणता, धर्मकायप्रतिशरणता न पुद्गलप्रतिशरणता इति । चत्वारि स्मृत्युपस्थानानि कायानुस्मृतिः, वेदनानुस्मृतिः, चित्तानुस्मृतिः, धर्मानुस्मृतिःचेति । चत्वारि सप्रह-वस्तूनि—दानम्, प्रियवाक्यम्, अर्थचर्या, समानार्थतेति । अत्रार्थशब्देन महार्थः परमाक्षरस्तस्य "चर्या समानार्थता चेति । धर्मदानतो दानम्, चत्वारि धर्मदानानि-अनित्याः सर्वसंस्काराः, दुःखाः सर्वसंस्काराः, निरात्मानः सर्वधर्माः, शान्तं निर्वाणमिति । चत्वारि सम्यक्षप्रहाणानि — अनुत्पन्नदोषानामनुत्पादाय प्रहाणं छन्दोत्पादः, उत्पन्न- पापानां कुशलम्लं प्रतिपक्षः [उत्पादः], अनुत्यन्तकुशलानां समुत्पादनम्, उत्पन्तकुशल-मूलानां बुद्धत्वे परिणामना चेति चत्वारि । एतानि चतुर्विद्यानि जिनवरकुलिशीरिति कायवाक् चित्तज्ञानविशुद्धया निर्माणधर्मसम्भोगस्वाभाविककायविशुद्धया भावनीयानि जीकिकसिद्धये देवताकाराणीति ॥२३८॥

पञ्चाभिज्ञाबलानि प्रवरिजनपतेर्दृष्ट्यः पञ्चचक्षु-रेवं स्कन्धेन्द्रियाणि स्मृतय इति च षट् सप्त बोध्यङ्गपूजा । सप्ताप्यष्टाङ्गमार्गाः (र्गान्) प्रति सुकारणता रूपिणोऽप्टो विमोक्षा रन्ध्याख्यं वै नवाङ्गं प्रवचनमपरं भूमयो दिक्ष्रमाणाः ॥२३९॥

एवं पञ्चाभिज्ञा बोधिसत्त्वानां दिव्यं चक्षु:, दिव्यं [220b]श्रोत्रम्, परिचत्त-ज्ञानम्, पूर्वनिवासानुस्मृतिः, आकाशऋद्विश्चेति । पञ्च बलानि - श्रद्धावलं वीर्यवलं स्मतिवलं समाधिवलं प्रज्ञावलं चेति । एवं पञ्चेन्द्रियाणि । सत्त्वानां पञ्चदृष्टयः-सत्काय-द्रिटः, अन्तर्ग्राहद्विटः, मिथ्याद्विटः, दृष्टिपरामर्षद्विटः, शोलव्रतपरामर्पद्विटश्चेति । बद्धानां पञ्चचक्षंषि - मांसचक्ष्रादिव्यचक्षुर्बृद्धचक्षः प्रज्ञाचक्षुज्ञीनचक्षुरुचेति। पञ्चस्कन्धा लोकोत्तराणां बुद्धानाम्—शीलस्कन्धः, समाधिस्कन्धः, प्रज्ञास्कन्धः, विमृक्ति-स्कन्धः, विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध इति । लौकिका रूपादयो धातवः पृथिव्यादयः, इन्द्रियाणि चक्षुरादोनि, विषया गन्धादयः, पाय्वादीनि कर्मेन्द्रियाणि, आलापादयः कर्मेन्द्रियकिया इति पञ्चकं धर्मधात्ना सार्धं सर्वं पट्किमिति । षडनुस्मृतयः-बद्धानुस्मृतिः, धर्मानुस्मृतिः, संघानुस्मृतिः, त्यागानुस्मृतिः, शीलानुस्मृतिः, देवतानुः स्मतिश्चेति । सप्त बोध्यङ्गानि-स्मृतिसम्बोध्यङ्गम्, धर्मप्रविचयसम्बोध्यङ्गम्, वीर्यसम्बोध्यञ्जम्, प्रोतिसम्बोध्यञ्जम्, प्रस्नव्यसम्बोध्यञ्जम्, समाधिसम्बोध्यञ्जम्, . उपेक्षासम्बोध्यञ्जम् । सप्तविधा पूजा-वन्दना, पूजना, देशना, अनुमोदना, अध्येषणा, याचना, परिणामना चेति । अध्याङ्गिको भागः-सम्यक्दृष्टिः, सम्यक्-संकल्पः, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्तः, समयगाजीवः, सम्यग्व्यायामः, सम्यक्-समाधिरचेति । अष्टौ ध्यानविमोक्षाः — रूपं पश्यति शून्यम्, अध्यात्मरूपं बहिर्घारूपं पश्यति शून्यम्, शून्यमिति विम्बं सर्वाकारम्, शुभाशुभदृष्टिकृतं पश्यति शून्यम्, आकाशानन्त्यायतनं पश्यति शून्यम्, विज्ञानानन्त्यायतनं पश्यति शून्यं, विम्बे सर्वोकारे, आकिञ्चित्यायतनं पश्यति शून्यम्, नैव संज्ञा नासंज्ञायतनं पश्यति शून्यम्, संज्ञावेदितनिरोधं पश्यति शून्यम्, शून्यताभावनायाम् । अध्यो रूपिणश्चतुर्महाभृतानि रूपगन्धरसस्पर्शाश्चीत । नवाङ्गप्रवचनं संगीतिकाराणाम्—सूत्रं गेयं व्याकरणं गाथोदानं निदानं वृत्तं जातकं वेपुल्याद्भृतं धर्मसंग्रहाय ॥२३९॥

बुद्धानां दिग्बलानि स्फुटदशविशता द्वादशाङ्गप्रतीते रूपादौ वै निरोघो द्विगुणनव तथाऽऽवेणिका बुद्धधर्माः।

१. च. 'बुढ' नास्ति । २. मो. Yons SusPans Paho (परित्यागः) । ३. च. तृष्णा। ४. मो. gNas (स्यान)। ५. मो. Don (वर्ष) इत्यविकम्।

-11

10

15

T 470 25

द्वात्रिशल्लक्षणानि प्रवरजिनपतेर्व्यञ्जनानि त्वशीति-रेतद् देहे समस्तं विभुपरमपदं मन्त्रिणा भावनीयम् ॥२४०॥

दशपारमितादिदशकानि परमाक्षरज्ञानसिद्धावुक्तानि, अष्टादशाऽऽवेणिका बुद्धधर्मा उक्ताः। अत्र भिक्ष्णां द्वादशधृतगुणाः—पैण्डपातिक-त्रैचीवरिक-पश्चारखलू-भक्तिक-नैषधिक - यथासंस्तरिक - एकासनिक-अभ्यवकाशिक-वृक्षमूलिक-आरण्यवासिक-श्मक्षानिक - पांशुकुलिक - नामन्तिकाश्चेति । एवमादौ सर्वधर्मसंग्रहं ज्ञात्वा ततो निजवेहे विभोः परमपदं नपुंसकं मन्त्रिणा भावनीयं साचार्येणत्यथः ॥२४०॥

एकश्चन्द्रस्वरूपं यमकरनयनं युग्मपक्षायने हे लोकाः काला गुणागिनस्त्रिकमुद्दिययुगं वेद उक्तश्चनुष्कम् । बाणा भूतेन्द्रियाणि प्रभवति नियतं पञ्चकं षड्रसर्तृ-र्वाराद्री सप्तसंख्या मुनय इति तथा चाष्टनागा वसुश्च ॥२४१॥

नाडीरन्ध्रा ग्रहा वै निधिरिप नवकं दिग्दशैकादशेशाः सूर्योऽनङ्गो मनुर्यो भुवनतिथिनृपा द्वादशा ह्येकवृद्धचा । दोषाश्चाष्टादशैते सकलजिनवरास्ते चतुर्विशतिश्च तत्त्वाङ्गं पञ्चविशद् द्विजक इति भवेद् द्वचुत्तरं त्रिशदेव ॥२४२॥

अत उपरि गणितसंख्या एकादिचन्द्रादिकासंज्ञाप्रकाशकं वृत्तद्वयं सुवोधम् ॥२४१-२४२॥

इदानीं तन्त्रगुण उच्यते-

सर्वित्मिस्तन्त्रराजे खलु कुलिशपदं गोपितं विज्ञिणा वै प्रत्यक्षं चादिबुद्धे निगदितमिखलं प्राणिनां मोक्षहेतोः। तस्मात् तन्त्रोत्तरं वै सकलमिवकलं लोकलोकोत्तराभ्यां श्रीमत्तन्त्रादिबुद्धं परमजिनपतेश्चाभिधानं सुचन्द्र॥२४३॥

सर्वेहिमन्तित्यादि । इह सर्वेहिमन् योगिनीयोगतन्त्रराजे खलु कुलिझपर्व परमाक्षरमुख गोपितं बिज्जणा वे शावयमुनिना । वज्जमित्यभेद्यज्ञानमचिन्त्यं चित्तवज्ञम्, [2214] तद् यह्मिन्नस्तोति स वज्ञी, तेन विज्ञणा । तत्कत्य हेतोः ? आर्यविषये बौद्धानां पिण्डतामिमानाद् ये गुरुशुभूषया विना पुस्तकं दृष्ट्वा अस्माभिर्वज्ञपदं ज्ञातमिति विद्यान्ति बौद्धाः पिण्डताः, तेनाहङ्कारेण नरकगमनम्, सेकसंप्रदायाभावात् । तेन [इदे] गोपितम् । तदेव प्रस्यकं चाविबुद्धे निगदितमित्त्वलं प्राणिनां संभलविषये जन्मिनी निरहङ्कारचित्तानां **मोक्षहेतोः। तन्त्रोत्तरं वे सकलमविकलं** तन्त्रराजं लोकतन्त्रात् कियातन्त्रात्, **लोकोत्तरा**द् योगतन्त्रात्, ताभ्यामुत्तरं लोकोत्तरम्। **श्रोमत्तन्त्रादिबुद्धं परमजिनपत्रे**ज्ञानिकायस्य सहजस्याभिषानं वाचकम् ॥२४३॥

इदानीं गुणवतः पञ्चाकारस्तव उच्यते-

यस्यान्तं नादिमध्यं स्थितिमरणभवं शब्दगन्धौ रसश्च स्पर्शो रूपं न चित्तं प्रकृति न पुरुषो बन्धमोक्षौ न कर्ता । बीजं न व्यक्तकालं न सकलभुवने दुःखसौस्यस्वभावं निर्वाणं निर्मिमत्तं व्यपगतकरणं निर्मुणं तं नमस्ये ॥२४४॥

कालं विश्वादिवज्ञं पुरुषमनुषमं सर्वेगं निष्प्रपञ्चं कूटस्यं कर्णनासामुखनयनशिरः सर्वेतः पाणिपादम् । भूतान्तं भूतनायं त्रिभुवनवरधृक् कारणं कारणानां विद्याद्यं योगगम्यं परमसुखपदं कालचकं नमस्ये ॥२४५॥

यस्येत्यादि । इह पश्चाकारो महाशूत्यो वज्यम्, तस्य विज्ञानितरोषः प्रथमशृत्यम्, यस्पाक्तं नादिमध्यं इत्यादिना निर्मृणं तं नमस्ये इति पर्यन्तं "विज्ञानधर्मतातीतो ज्ञान-मद्वयस्पषृग्" (ना० सं० ८.२३) इति विज्ञानधर्मतातोतत्वात्, तत्कुळे जातानामप्यतीता आकाशादिधात्विन्द्रियादीनाम् । ततः संस्कारानरोधे द्वितीयं शूत्यम् । कालं विश्ववादिवज्ञमित्यादि कालचकं नमस्य इति पर्यन्तं सुवोधम् ॥ २४४-२४९ ॥

स्नष्टारं शक्तिरूपं तडिदनलिनिमं द्वादशादित्यतेजं ज्ञानं वज्जावभासं परपदगमनं तं विसर्गं नमामि । शुक्लं त्रेलोक्यनाथं स्रवति शशघरात् संस्थितं लोकमूष्टिन पीयूषं मृत्युनाशं भवभयमथनं बिन्दुरूपं नमामि ॥२४६॥

चिन्मात्रं मन्त्ररूपं त्रिदशपरिवृतं दुःखसीस्यस्वभावं साधूनां शान्तरूपं सुकृतमनुभवं दारुणं दारुणानाम् । यो यत्कर्मावकुर्यात् स्वमनसि विधिवत् तत्फलं तस्य जातं लोकेशं विश्वरूपं त्रिभुवनजननं वज्यसत्त्वं नमामि ॥२४७॥

एको नैकोऽपि चैकः समविषमसमः सव्यवामाप्रपृष्ठ
ऊर्ध्विषो वे समन्तात् सित-हरित-महाविश्ववर्णेकरूपः।

20

25

हस्बो दीर्घः प्लुतश्चागुण इति सगुणः स्त्री नरश्चानरस्त्री यः सर्वाधार एकः सुभगवरभगस्ते नमस्ते नमस्ते ॥२४८॥

एवम् "अन्ये ते संस्कारा" इतिवचनाद् वाय्वादीनां घात्विन्द्रियाणां निरा-वरणता वेदितव्या द्वितीयश्न्येन । ततस्तृतीयं शून्यं वेदनानिरोधः स्रष्टारम् इत्यादिना तं विसर्गं नमामि इति पर्यन्तम्, "अन्या सा वेदना" इतिवचनात्तेजो घात्विन्द्रियादीनां निरावरणतेति तृतीयं शन्यम्, ततश्चतुर्थं शून्यं संज्ञानिरोधः शुक्लम् इत्यादिना बिन्द-रूपं नमामि इति पर्यन्तम्, "अन्या सा संज्ञा" इतिवचनात् तोयादिधात्विन्द्रियादीनां निरावरणतेति चतुर्थं शून्यम् । ततः पञ्चमं शून्यं रूपिनरोधः चिनमात्रम् इत्यादिना वज्रसत्वं नमामि इति पर्यन्तम्, "अन्यत्तद्रपम्" इतिवचनात् पृथिव्यादिधात्विन्द्रियाणां तत्कुलीनानां निरावरणतेति । अस्य विस्तरः प्रथमलोकधातुपटले उक्तः, तेनात्र न वितन्यत इति । "पञ्चाक्षरो महाशून्यः" (ना॰ सं॰ १०.२) ततो "विन्दुशन्यः पडक्षरः' (ता॰ सं॰ १० २) इति धर्मस्यास्याधारभृतो बुद्धविम्बलक्षणः सर्वत्रैधातक-त्र्यध्ववर्तीति । अस्य निरोधः पट्स्कन्धादयः पट्त्रिशद्धातवः क्षरज्ञानं सप्तित्रिशदिति । एषां निरावरणता घर्मकायो घर्मोदय उच्यते । चतुर्यो वज्रः पञ्चाक्षरः । अनयोर्निर्माणं निर्माणकायः। नाना ऋद्विदर्शको धर्मदेशको ध्वनिः सम्भोग इति । अत्र एको नैकोऽपि चैकः समविषम इत्यादिना मध्यमकसिद्धान्तः । यः सर्वाधार एक इति सर्वो महाक्षर-स्बः, तस्याघार एक आकाशलक्षणः। सुभग इत्यैश्वयीदिगुणात्मकः। वरभग इति त्रैवातकोत्तम:। तेन कारणेन नमस्ते शिरसा नम इति नमस्कारो भवत्, ते इति तव मञ्जिश्रयः ॥ २४६-२४८ ॥

सोऽहं यो मत्यंलोके व्यपगतकलुषः श्रीगुरुवं ज्यधारी
नूनं तस्यापराधाद् भवति हि नरकं प्राणिनां नात्र चित्रम् ।
नुष्टोऽहं तस्य नुष्ट्या कुपित इति महांस्तस्य कोपानलेन
सत्त्वानां सैव मोक्षः समसुखफलदो वन्द्यपूज्यः सुतानाम् ॥२४९॥
कः पाषी श्रीगुरोयंः सुचरणकमलं वन्दते न त्रिकालं
कोऽज्ञानी यस्त्रिकालं बहुविधकुसुमैमंण्डलं नो करोति ।
कोऽबीचि याति शोद्रं समसुखदगुरोः खेदमुत्पादको यः
कः प्रजाज्ञानलाभी वरगुरुचरणं यो न मुञ्चत्यनष्टः॥२५०॥
को नधो यस्त्रिनाड्यामिष गतमकता मार्यतेऽनन्तकालं
कः शूरो मारयेद् यः समविषमपिष प्राणमापानवायुम् ।
को दाता श्रीगुरोयों ददित निजतनुं पुत्रदारादि सर्वं
को नीचो वञ्चको यः स्वहृदयकलुषाकृष्टिचतः शाठश्च॥२५१॥

श्रीमान् श्रीधमंचके सुरवरनिमते विष्टरे विश्ववर्णे तस्मिन् बुद्धोपविष्टो गदति नरपते तन्त्रराजादिबुद्धम् । चन्द्रप्रश्नाववोधे त्रिदशनरगुरुयंच्च सत्त्वायंहेतो-स्तच्चेदानीं मया ते गदितमपि कलापेऽल्पतन्त्रं हि सूर्यं ॥२५२॥

बुद्धोक्तात् कालचकं गदितमपि मया स्नग्धरावृत्तवन्धै-रस्य त्वं देशनां वै कुरु कुलिशघरीं मन्त्रिणां पुण्डरीक । प्रज्ञाज्ञानस्य लाभी सरविमुनिकुलं वै यथास्मद्धभूव एवं सत्त्वा भवन्तु त्रिविधभवगताः कालचकप्रसादात् ॥२५३॥

सूर्यं त्वं वा नरेन्द्र त्वपरगतभवे कालचक्रैकयोगा-ज्जातोऽस्मिन् ब्रह्मवंशे यशनृपतिरहं मञ्जुघोषः प्रिया मे । श्रीतारा पौण्डरीकः सकलगुणनिधिर्लोकनाथोऽञ्जचिह्नो नालेनेन्दीवरस्य स्वपरगतभवं पश्य सर्वं यथार्थम् ॥२५४॥

नालेनेन्दीवरस्य स्वपरगतभवं बीक्ष्य सर्वं ययायं सूर्यः सार्वं मुनीन्द्रेः समुकुटशिरसा कल्किनः पादपद्मम् । हस्ताभ्यां वन्दयित्वा वदति मुनिकुलं रोद्रसंसारदुःखा-दृद्धृत्य ज्ञानमार्गे परमकरुणया स्थापयेत् त्वेकशास्ता ॥२५५॥

वृद्धोऽपि त्वं कुमारः सकलजिनसुतोऽप्यादिबृद्धस्त्वमादौ स्त्रीसङ्गी ब्रह्मचारी परमकरुणया लोकबन्धुयंमारिः। सौम्योऽपि त्वं सुवच्ची मरणभयहरस्त्वं सदा मारमारो मुक्तोऽपि त्वं मवेऽस्मिन् प्रविशसि जगतः पाचनार्थं यशस्त्वम्॥२५६॥

सूर्योऽहं ब्रह्मवंशे मृतिकुलनिमतः पातितः पादम्ले सत्त्वानां मोक्षहेतोः प्रकटितमवनौ कालचकं समस्तम् । कल्कीगोत्रे त्वमकः क्षितिपतिनिमतः श्रीयशः श्रीकलापे युष्मत्यादारिवन्दं शरणमिष्मतो रौद्रसंसारभीतः ॥२५७॥ वैशाख्यां पौर्णिमायां निशिसमयगते वासरे चाप्रविष्टे मुद्रासिद्धं गतोऽकों मृतिजनसहितोऽिष्ठितो विश्वभन्नां।

- all

848

10

15

सत्त्वानां मोक्षहेतोः सकलभुविगतं चित्तवर्ज्ञं यथा मे सत्त्वानामेव यातु त्रिविधभवगतं कालचकप्रभावात् ॥२५८॥ तन्त्रार्थं देशयित्वा परमकरुणया सर्वसत्त्वार्थकर्ता पुत्रस्याज्ञां ददाति प्रवरगुणनिधिः पुण्डरीकस्य नृनम्। कर्तव्यं पुस्तकस्यं सकलमविकलं तन्त्रराजं त्वयादी टीकां कृत्वा ततो वे परपदगमनं स्वेच्छ्या लोकबन्धोः ॥२५९॥ ऊर्घ्यं ये बोधिसत्त्वाः परमभयकरा मारपक्षे स्थितानां दैत्यानां मर्त्यंलोके दिशिविदिशिगताः कोधराजाः सभार्याः । पाताले ये फणीन्द्रा ग्रहपदमशुभं सर्वदा बन्धयन्ति ते सर्वे पालयन्त् प्रतिदिनसमयेऽज्ञानलोकं समन्तात् ।।२६०॥ सत्त्वानां मोक्षहेतोजिनपतिगदितं देशितं यन्मया च तन्त्रं श्रोकालचकं लघुतरमिखलं वज्रसत्त्वाधिदैवम्। जिनपतिक्लिशैः षोडशाकारतत्त्वं प्रज्ञोपायैकयोगं सत्त्वाः पुण्येन तेनाक्षरपरमसूखं यान्त् तस्मै नमोऽस्तु ॥२६१॥

> [221b] [इति] मूलतत्त्रानुसारिष्यां लघुकालचक्रतत्त्रराजटीकायां द्वादशसाहिलकायां विमलप्रभायां नातोपायविनेयमहोर्देण-भ्रातुर्यः समाप्तः।

संबुद्धव्याकृतेन प्रवरमुनिगणं स्थापितं बुद्धमार्गे दत्त्वा प्रज्ञाऽभिषेकं परमकरणया देशितं कालचक्रम् । येनोद्धत्यादिबुद्धादिदमिषुपटलं मञ्जुबच्चेण तन्त्रं राज्ञा श्रीकल्किनाऽहं सुत इह यशसः श्रीकलापे नृपोऽस्य ॥

इदानीं कालचक्रदेशकगणादिकं सोऽहमित्यादि सर्वं सुबोधम् ॥२४९-२६१॥

संबुद्धव्याक्रतेन प्रमुदितमनसा श्रीयद्यस्त्रोदितेन टीकां श्रीमूळतन्त्ररफुटकुलिशपदान्त्रेषिकां तन्त्रराजे। कृत्वा पुण्यं यदाप्तं विपुकमितिसितं पुण्डरीकेण दानात् सम्बुद्धस्तेन लोकः प्रभवतु संकठो बिच्चणो छठ्यमार्गः॥*

> । समाप्तेयं टीका ज्ञानपटलस्य । ।। समाप्ता विमलप्रभा टीका ।।

* च.

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुस्तेयां तथायतो ह्यव्यत् ।
तेयां च यो निरोध एवंवादी महाध्रमणः ॥

देयधर्मोऽयं प्रवरमहाधानयाधिनः स्यिवरमः "" स्य यदत् पृष्णं तद्भवलाचार्योषाध्यायमाताधित्पूर्वंगमं कृत्वा सक्तन्नस्याधेरनृतरज्ञानकलासय इति ।

महाराजाधिराजशोमद्रिवर्गदेवधादीयसंवत् ३९ सूर्यंगस्या जायावदिने २९

एकोर्नात्रवितिनिते वत्सरे हिर्पयमेणः ।

माधस्य कृष्णससस्यामेशव्यदिने गते ॥

मृतपातुच्य "" देशवर्षा ।

कृतिश्रह्मुलिमादाय पृष्टवेदमुदीरितम् ॥

पूर्वोत्तरे दिशो भागे बेमनवास्तु धारिणि ।

पुर्वात्तरे वार्षा भवतः ससवेदस्यरीरिति ॥

कालचक्रतन्त्रश्लोकार्धानुक्रमणी

अक्षोम्यं किञ्चिदुष्णं	2.828	and when many	
		अर्केद्वारेषु राजन्	Y.5
अक्षोभ्यो दैत्यशत्रु	8.97	अचिः स्वर्गे सुराणां	7.202
अक्षोभ्योऽमोषसिद <u>ि</u>	₹.१४८	अर्घप्रासोऽर्घशुद्धे	1.69
अक्षोर्घ्यं मूलपीठं	£x9.5	अव्युच्छिन्नैकमासं	7.52
अक्णा तिष्या हतं यद्	2.35	अस्वत्यामा महा	1.25\$
अङ्गन्यासं स्ववजैः	8.738	अश्वत्यामा त्वविद्या	7.89
अङ्गात् क्षयोऽक्षिशूलं	7.847	अध्वन्याद्यै स्त्रिनाड्या	1.222
अङ्गुस्यग्रे गुणेन	2.280	बस्वो वै कामलोलो	£88.5
अङ्गुल्यन्छिद्रपाणिः	₹.१८०	अप्रतिशत्वशीति	37.8
अञ्जल्यादछोटिकायाः	३.१८६	ष्ठष्टद्वाराणि कुर्याद्	4.75
अङ्गुष्ठस्तजंनी या	₹.१७०	अष्टाङ्घि खिङ्गिसिहे	8.846
अङ्गब्देन प्रकुर्यात्	३.७६	अष्टाम्भोष्यक्षच क्रै	1.884
अङ्गुष्ठे मुध्टिबन्धाद्	3.866	अष्टारे द्वादशारे	335.8
अङ्गुष्ठो डाकिनीनां	₹.१८₹	अष्टांशादी कषायो	7.280
अञ्चल बानानाना	3.863	अष्टी छन्दोहभेदाः	¥.8£X
अङ्गुष्ठी मध्यमे दे	2.886	अष्टी देव्योऽष्टपत्रे	8.84
अत्राविद्यांशं विषम	V.9	अष्टी धुमादिदेवी	¥.74
अन्तर्घानं हि वायु	4.222	अष्टी शृङ्गानुरुढाः	4.868
अन्यद् यत् किञ्चिदस्ति	4.706	अस्तीद्यः सर्वकर्ता	7.846
अन्याभियोऽस्य बन्धः	₹.85₹	अंकारो विश्वभद्रो	₹.05
अन्या मुद्रास्त्वनन्ताः	3.30	आकाशं कुम्भमध्ये	\$2.F
अन्ये नक्तं प्रतिष्ठा	8.04		4.885
अन्योऽन्यं कायभावी	4.48	बाकाशं स्तब्धदृष्ट्या बाकाशासक्तवित्तैः	4.884
अन्योन्यं स्कन्धभूता			333.5
अन्योन्यं हस्तबन्धे	₹.१९०	आकुञ्च्यापानवायुं	4.888
धप्रत्यक्षेऽनुमानं	¥.२३२	आकृष्टी पञ्चमे स्याद्	7.840
अब्जे वज्रप्रवेशः	₹.१२६	आग्नेय्यां कर्तिका वै	8.48
अदिघप्राणाग्निलिप्ताः	1.36	आग्नेय्यां वायुरूपे	7.03
अव्यः सम्यक् प्रहाणा	3.240	आचार्यस्यासनं वै	8.785
अव्ध्याकाशेन्दुसंख्या	2.90	वाचार्यं निन्दयन्ति	3.06
अञ्चालाहेष्टगुण्यं	4.788	वाचार्यः पूर्ववक्त्रः	3.00
अम्मोभेदोऽप्युकारः	4.5	आचार्यः श्रीगणेशो	
	4.88%	आचार्येबों घिहेतोः	₹.१₹८
अ कंक्षीरप्रलेप			

निष्पन्दानन्दशुक्छः कुल्लिशमिष च तद्धारणाद् व च्यापुक् च बोजं वा यस्य शुक्तं जिनजिगिति पिता नाभिचक्रे स शक्वत् । तल्लक्षं लक्षमाणो हृदि परमसुखं नाथ आरोलिगेव तद्वेद्यं येन कण्ठे धृगमचलसुखं वेदको रत्नधुक् सः ॥

प्रज्ञापून् येन तेन ज्ञिरसि घृतमिर्व शुक्लवैसत्यसौख्यम् उष्णीये ब्रह्मरन्ध्रेऽक्षरपरममुखं योडशानन्वपूर्णम् । या प्रज्ञा निःस्वभावा परमशशिकला योडशो पूर्णिमान्ते सानन्ता यस्य विद्या श्चिरसि स कुलिशे यष्टमो यच्चसत्त्वः ।।

उपाध्यायजगन्नाथस्थापिता या च योजना। ततः प्रकाशिता पूर्णा टीकेयं विमलप्रमा।। या चात्र गुणवत्ता स्यात् सा तस्यैव महात्मनः। या चात्रागुणवत्ता स्यात् सा त्वस्माकं हि मन्यताम्।।

१५८	विमला	प्रभायां !			कालचक्रतन्त्रदलोकार्षानुक्रमणी	249
30-2	9.99	आनीतं श्रीश्मशाने	8.899	उच्णीवं पञ्चशून्यं	५.७ ऋखेदं पश्चिमास्यात्	4.49
आज्ञासम्बोधिलक्ष्मी : २————————————————————————————————————	7.170	आपानं तत्र काले	7.878	जल्लीयं भेदियत्वा	र.१२२ ऋत्वर्धं शोध्यमकें	3.86
आज्यं क्षीराहिरक्तैः	7.98	आपानं तत्र काले	8.296	उच्मीषं भेदियत्वा	४.१२१ ऋदि सर्वज्ञभूमि	4.05
भात्मा कर्ता न तत्र आदर्शे स्नानमत्र	3.884	आपानाकुञ्चनेष्टं	7.220	उच्जीवं मस्तकाघो	५.१७२ एकत्रिशद्भवैश्च	2.24
आदश स्तानमन आदित्य: कृष्णवर्णः	7.60	आपानो ज्ञानघाती	7.78	उष्णीयं वक्त्रकण्ठं	३.५३ एकत्वं सादिकाद्योः	4.870
आदित्येऽनन्तभोगो	8.260	आराश्चन्द्राकंचाराः	4.88	डब्लीयः शून्यघातौ	२.२५ एकद्वित्र्यविधमेदैः	1.247
आदिश्वासोऽगुणात्मा	4.883	आरूढां श्वेतनागं	8.888	उच्नीपादङ्गलीपु	४.१२५ एकद्रथर्षेकहस्तं	3.11
आदिश्वासोऽप्टभेदो	4.886	ब्राद्वींऽनोघो वराही	2.248	उ ष्णीबादुणंमध्यं	५.१७१ एकदचन्द्रस्यरूपं	4.788
आदेरुव्यीपचक्रे	9.9	बालीढं वामयोगाद्	8.50	उष्णीये पञ्चश्वकं	४.१२३ एकस्मिन् वह्निपक्वं	2.244
बादी घोपासको वै	3.804	आविष्टः क्रोधराजः	33.5	उच्जीपेऽव्यिलंगरे	२.५९ एकं पश्यन्त्यनेकं	9.98
आदी जैनेन्द्रसंख्या	1.46	आवेशो मन्त्रिणां वै	3.58	उ.हणीबेव्यिहंदोऽष्टी	२.५७ एकं मिश्रं चतुष्के	4.83
भादी बाला: स्वराश्च	2.99	ष्ट्रापाढे श्रावणे	2.224	उष्णीचे शुद्धशून्याद	५.१७ एकाङ्गश्चीकया वै	4.6
आदी या शून्यरूपा	५.१५६	इच्छाशक्तिः क्रिया या	7.90	उष्णीपे हृत्प्रदेशे	५.३६ एकाङ्गे शक्तियुक्ते	8.858
बादी रक्षाविधानं	8.803	इत्यादिज्ञानहेतोः	7.800	उष्णीपे हत्प्रदेशे	५.१५४ एकात्मानं समन्ताद्	4.58
आदी वै शून्यता	8.558	इत्यादी पट्प्रकारं	4.77	उष्णीषे हृत्प्रदेशे	५.१५५ एकाद्यानन्तवक्त्रो	₹,१३३
आदौ शून्यप्रभेदाः	4.8	इत्याद्यं देवतानां	४.१३७	ऊनः खाध्यष्टवेदैः	१.४८ एकार्यानन्तभाषा	4.95
आदौ श्रीकालचक	8.880	इत्याशालुब्धचित्तः	4.66	कर्णा गृह्याव्जमध्ये	५.१७३ एकाशीतिसहस्रं	8.92 4.778
आदौ पड्योनिमन्त्रा	५.२३२	इत्येवं नाडिचक्रे	7.87	कर्णा पुलान्यमन्य कर्णादष्ट्योत्तमाहं	३.१९५ एकीकृत्वा सजीवे	2.04
आदी संरक्षणीया	2.200	इत्येवं मातृकाया	7.59	ऊर्णासुट्यारामार्	५.१८४ एकीभूता दिनास्या	2.234
आदी संसेवनीयो	1,7	इत्येवं विज्ञणश्च	8.80	कर्वं ये बोधिसत्ताः	५.२६० एके पीठेऽब्घिकोणे	2.39
बादी सीधमंकल्पं	89.5	इन्दोः पक्षत्रयोऽह	2.93	कर्व्य वर्णागसंख्या	एकेके परापत्र	288.4
बादौ स्त्री गुह्ममुद्रा	7.83.5	इन्द्रेडनी याम्यदैत्ये	7.88	कर्ष्य प्रणानस्याः कर्ष्याः	५ २० एको नैकोऽपि चेकः	3.886
बादौ हुच्चन्द्रमध्ये	8.8	इन्द्रोऽहं स्वर्गछोके	7.898	कर्ष्वाचारपु हरना	२.११० एको राजन् शशाङ्को	4.98
षाद्याब्दात् पट्शताब्दैः	17.38	इष्टा क्षाराम्लवर्गेः	4.784	ऊर्ध्वाघो बुद्धकायो	५.१७७ एको बच्ची त्रिभेदो	9.90
बाद्यास्त्रिश त् स्वरा ये	3.6	ई ऋ ऊ ल् तथैव	8.883		प्कोऽसौ बज्जसत्त्वः ५.१७८ एतत् त्रैलोक्यकृत्सनं	5.68
बाद्यास्त्रिशत् स्वरा ये	7.64	ईशे नैऋंत्यकोणे	₹.40	ऊर्घ्वाघो वक्त्रगुह्याद् ऊर्घ्वाघो वक्रमानं	१.१४८ एतत् श्रीकालचक्रं	6.68
आद्याः काद्येन्दुसूर्ये	8.20	ईशे नैऋंत्यकोणे	8.25	ऊच्चाघा वक्रमान ऊच्चे दत्त्वा वितानं	३.१०६ एतत् श्रीकालचक्रं	5.48
आद्याः पञ्चस्वरा ये	2.94	उच्छिन्ने म्लेच्छवृन्दे	2.254	ऊच्च दत्त्वा वितान ऊच्चेंडघो भ्राम्यमाणे	१.१४७ एतत् सर्वं यथायं	1.200
आद्याः पञ्चस्वरा ये	1.200	उत्पत्तिर्लोकधातो	2.200		३.१७९ एतन्मुदादिभेदै	8.880
आद्याः शून्यानि पञ्च	2.20	उत्पत्ति यः करोति	7.27	कध्वें मुष्टिद्वयं स्यात् ऊध्वें मृष्टिद्वयं स्यात्	१.१८ एतानि हमादियोनी	4.707
आ द्यैकैकस्वराम्यां	4.964	उत्पन्नस्याक्षरेण	५.१२७	कब्ब स्टूज़ाण पर्य कब्बींडघो नेत्रत्रिशत्	१.२८ एतान्येवं व्रजन्ति	2.74
बाद्यैः काद्यैः सवज्रैः	3,34	च द्र्याशुदखण्डा	7.838	कब्बाऽधा नत्रात्रसत् कब्बी पादौ शिरोऽघो	२.११३ एता मुद्राश्चतस्रो	80.X
बानन्दाद्यस्तु वच्चा	8.888	उद्याने पर्वते वा	¥.₹		१.५३ एता वै मृत्युनाड्यो	3.828
आ नन्दार्चं स्त्रिवच्या	8.883	उद्याने पर्वते वा	4,774	ऋक्षं सन्याव(प)सन्यं	२.३७ एताः प्रज्ञाभिषेके	4.803
वानन्दो भोगकायः	4.873	उष्ट्रास्वी गारच हत्वा	2.844	ऋक्षाणां नाभिपयां	१.४१ एते वैरोचनाद्याः	Place
भानीतं मण्डले वै	8.843	उष्ट्रे यःकारजाते	8,848	ऋक्षे षष्ट्या हते युक्		

	विमछ	प्रभागां			कालचक्रतन्त्रस्लोक	ार्थानकम णी	
160						(- (Januari	\$45
एते वहभेदभिन्ना	4.200	एवं लोकेश्वरोऽहं	4.888	कक्षात् सव्यावसव्यात्	7.889	कामानन्दं करोति	3.823
एतेषां मुक्तिहेतोः	4.883	एवं लोहानि रत्ना	4.788	कङ्काली कालरात्री	8.30	कामा निर्माणकायः	4.173
एते सञ्चाररूपै	१.१५६	एवं वज्जप्रबोधात्	7.878	कण्ठे द्वात्रिशदारं		कामा रूपास्त्वरूपा	4.46
एतैर्वर्षेर्युगान्ते	1.68	एवं वज्जप्रभेदान्	8.890	कण्ठे नक्षत्रनाडी	7.40	कामी वै मन्दगामी	3.883
एतैबंडो हि जीवो	7.99	एवं वर्गान् समात्रान्	2,204	कण्ठे पाशेन बद्घ्या	7.186	कायं पञ्चत्वगं तु	33.5
एतैर्वेर्षेश्च बाह्ये	4.840	एवं वीरक्रमाद्यं	4.48	कण्ठे संभोगचक्रं	8.202	कायावेशेन योगी	3.69
एभिबुंद्धत्विमष्टं	४.२०८	एवं वै कायवच्यं	4.8	कन्दं नालं त्वकारो	8.89	काये कण्डूयनेच्छा	X.Y.Y
एयाद्याः पोडशेषु	8.864	एवं वै भावनीयाः	₹.११०	कन्यायां सार्घषट्कं	१.६३	काये ज्ञानेऽम्बरे वै	2.4
एला कर्परमाला	7.834	एवं सन्ध्याचतुष्के	4.888	कम्पा वै घर्मकाय	4.858	काये भावप्रवेशः	2.79
एलाद्या भागसंस्या:	२.१३६	एवं सर्वप्रहाणां	8.88	कर्कोटी देवदाली	५.२२६	काये स्पन्दत्युदानो	7.83
एवं कक्षान्तराले	8.969	एवं सर्वं भवाद्यं	1.915	कर्णाद्यष्टाङ्गकाये	₹.१६३	कालं विश्वादिवच्यं	4.784
एवं कर्मास्तिवादी	7.97	एवं सर्वेषु खण्डे	1.259	कर्णे नेत्रे प्रविष्टं	7.178	कालः सञ्येऽव(प)सत्र्ये	1.178
एवं कृत्वा तु वश्यं	8.888	एवं सूर्यस्य भर्ता	4.884	कर्णोध्व मुष्टिवन्धो	3.80€	कालाच्छ्रन्येषु वायु	8.8
एवं चन्द्रोदकाद्ये	५.२२६	एवं स्त्रीसङ्गहीनो	¥.77¥	कर्तव्यं पुस्तकस्यं	4.748	कालाब्दं यावदेका	२.६५
एवं चाकारयुग्मं	3.223	एवं स्फाटिक्यकुम्भा	7,82	कर्ता चाहं विकर्म	33.5	कालाब्दे वह्निसंस्ये	5.48
एवम्च्चाटनं वै	8.848	एवा सामान्यसेवा	¥. ₹ ₹ ¥	कर्ताऽत्मा कर्मकालः	7.147	कालाः सन्ध्याश्चतस्रः	1.52
एवं चान्ये स्वभावाः	₹.१४६	एषा सिद्धियंदि स्यात्	4.64	कर्ताऽन्यः प्रेरितः सन्	7.156	कालेनाम्यासयोगात्	8.868
एवं चित्तं चतुर्घा	4.875	एवां को वर्णज्येष्ठः	4.700	कर्तारो ये स्मृतीनां	4.68	काले नाभ्यां स योगाद्	2.886
एवं शात्वा समस्तं	¥.€	एषां संहारकर्ता	\$2.5	कर्ती चक्राब्जरत्नै	4.74		7.57
एवं तन्त्राणि मन्त्रा	4.222	एषु स्थानेषु जन्तु	7.98	कर्तुश्चात्मग्रहेण	8.289		\$5.5
एवं तत्रादिवृद्धे	7.45	ऐकारः स्पर्शवच्या	8.00	कर्त्रा सुष्टं समस्तं	7.848		8.833 8.48
एवं त्रिशत्त्रभेदैः	7.19	ऐभं यस्य प्रहारैः	2.23	कल्कीगोत्रस्य मध्ये	1.150	किञ्चिज्जान्वर्धवक्त्रे	4.8
एवं देशे नगर्या		10 11		कल्कीगोत्रे त्वमर्कः	4.740	किञ्चिज्ज्ञातं हि भर्तुः	4.60
एवं नक्षत्रवाराः	4.70	ऐशान्यां चोत्तरे वै	7.9	कब्टं कुवंन्ति सर्वे	8.780	किञ्चित् सत्त्वांशहीनः	3.20
एवं पक्षप्रभेदैः	29.8	ओ औ यक्षेच रुद्रे	₹.49	कंडो विष्णुश्च कालो	83.8		3.5
एवं पञ्चप्रकारैः	299-9	ओकारो लोकनायो	8.00	कः पापी श्रीगुरोर्यः	4.240	कुण्डानां लक्षणं वै	8.79
एवं पूर्वोक्तचक्रे	५.१३८	ओट्टाकृष्टि प्रकृत्या	३.१२२	काकास्या गुघ्रवक्त्रा	8,39	कुण्डीपात्रञ्च सट्वा	₹.१७
एवं प्रत्येकवर्णो	8.868	ओड्रा ज्वालान्तराले	4.886	काकास्या ववंरी च	3.838		7.59
एवं भूमी नपाणां	4.20	ओषघ्यः षट्प्रकारा	4.864	काक्षीकासीसगन्धं	4.708		3.846
एवं भूम्यादिघातो	१.१४६	ओएभूनेत्रवक्रे	339.₹	काद्यान् वर्गान् समात्रा	₹.१०३	/ \- A CONTEST'	2.848
एवं भूयो द्विभेदो	4.888	ओष्ठादिचह्नावली स्यात्	३.११ ३.५६	काद्या वर्गाः समात्रा	₹₹₹₹	C	7.848
एवं म्लेच्छेन्द्रयुद्धं	8.95	ओंकारज्ञानजात <u>े</u>		कान्ताच्चायःशलाका	7.800		¥.62
एवं याम्ये च राद्या	7.40	ॐ आः हूँच त्रिमुद्राः	₹.८ २	कामं रूपं ह्यारूपं	8,888	AC C.C	A. 50.5
एवं याम्ये टवर्गः	43.58	ॐ आः हूँ होः क्रमस्थैः	8.779	कामा क्षीमं करोति	₹.१२२	a Chara	7.850
एवं राहुविदिक्ष	₹.६५	ॐ हीं फें हूँ फडन्तं	१.१६२	का माता कः पिता ते	4.888		7.830
एवं छेखादिकानां	8.42	कक्षाद्यष्टाङ्गकाये	3.848	कामानन्दस्तु कम्पा	₹.१२४	Bard All	
	3.78	कक्षाविष्टं स्तनोष्वं	7.68	28			

148				कालनकृतन्त्रत्लोकार्पानुक्रमणी				
कुर्यात् प्राणातिपातं	3.90	केशच्छेदे स्वदन्तैः	₹.१९१	गण्डो व्याध्यस्य ऋक्षः	3.900	गौरी गङ्गा च नित्या	843	
कुर्याद्वस्तौ प्रसम्बौ	2.196	केशैः सिद्धाः समस्ताः	8.80€	गन्धा माला च पूर्वे	8.83	गरा गङ्गा च नित्या प्रस्ते चन्द्राकंविम्बे	8.32	
कृष्ठौशीरं कसेरं	7.889	कैलाशे(से)धर्मदानं	7.89	गन्धेर्षुपैः प्रदीपै	7.848	प्रस्तौ येनेन्द्रसूर्यी	4.858	
क्टस्याः सप्तवर्गाः	8.64	कोदण्डश्चोत्पलं वै	8,03	ग्नधेर्षीः प्रदीपै	8.250	प्रस्ता यनन्द्रसूया ग्रामारण्यश्मशाने	2.830	
कूपस्तम्भैनिवद्धैः	2.234	को दाता श्रीगुरोयों	4.748	गन्धैः पुष्पैस्त्रसन्ध्यं		ग्रीवा पञ्चाशवास्यं	4.08	
कूपे बाप्यां तडागे	7.884	को नष्टो यस्त्रिनाड्याः	4.748	गन्धोत्पत्तिर्धरण्यां	7.70		2.20	
कूमें दैत्यासनस्था	8.848	कोऽवीचि याति शोघं	4.240	गन्धो वर्णी रसः	2.68	घण्टाकाये स्वराश्च	3.882	
कृत्वा ऋक्षाणि भूमौ	2.224	कीमारे यौवनेऽन्या		गम्भीरोदारचित्तो	₹.۶	घण्टा खेटञ्ज खट्वा	8.18	
कृत्वा कुण्डस्य रक्षां	₹.७४		7.0	गभंद्वारं द्विगुण्यं	3,70	घण्टादर्शाः पताकाः	3.46	
कृत्वा कुण्डे त्रिकोणे	8.858	कौलः काये कुलान्यो	8.202	गर्भस्तम्भेऽष्टलोमानि	7.889	झाणे रन्झद्वयेन	2.886	
कृत्वा त्वृक्षं त्रिभागं	2.222	क्रूराणां पूजनार्थं	7.844	गर्भाद द्वारादिसीम्नो	3.42	घाणे रन्ध्रद्वयेन	8,898	
कृत्वा त्वृत ।त्रमाग कृत्वा पर्यस्कूबन्धं	7.886	क्रोधा निर्माणकायो	8.90	गर्भाद् बाह्ये द्विगुण्या	3.48	चक्रस्या योगिनीभिः	3.896	
The last terms of the last ter	¥ 8 6 4	क्रोधा बुद्धाः सदेव्यः	५.१६३	गर्भाद बाह्ये समस्तैः	3,35	चक्रस्याः सर्वकालं	3.870	
कृत्वा पर्यंङ्कवन्धं	3.68	क्रोधेन्द्रश्चक्रमध्ये	₹.₹₹	गर्भाद् वा कणिका	3.48	चक्रस्य ज्ञानचक्रे	4.206	
कृत्वा पूजां विचित्रां	8.8	क्रोघेन्द्रं वज्जवेगं	8.838	गर्भे गर्भस्यदःखं	7.87	चक्रस्वेदोऽप्यजीर्णे	4.786	
कृत्वा पूजां विचित्रां		क्रोधेन्द्रो वज्रवेगो	8.20	गर्भे चक्रं नवांशं	4.28	चक्रंगर्भे त्रिकोणे	4.23	
कृत्वा विस्तीर्णभाण्डे	5.888	क्रोधैर्मेत्र्यादिनाम	3.90	गर्भे श्रीकायवज्यं	7.80	चक्रं चाष्टारचक्रे चक्रं नीलावलीं च	4.800	
कृत्वा शिष्यस्य रक्षां	3.38	क्वाथात् तीव्रो मलश्च	4.788	गर्भेऽष्टौ वेदिकायां	8.83		4.70	
कृत्वा शुद्धि तिलानां	7.884	क्षाराव्यि मुत्रमेषां	7,34	गर्भे संशुद्धकायः	7.88	चक्रं मूलेरघट्टं चक्रं रत्नं खपद्यं	१.१३७ २.२८	
कृत्वा शून्यस्वभावं	₹.१०९	क्षाराब्धि लङ्कियत्वा	2.49	गीतं कुर्वन्ति देव्यः	8.40	चक्र रत्न खपद्म चक्रं वाब्जं हि भर्तः	57.7 0F.F	
कृत्वा श्रीमण्डलान्ते	3.806	क्षारी मद्याम्बद्ग्धा	2.25	गीतं श्रुवास वजी	8.48	चक्र वाब्जाह मतु- चक्रं दवेतं चरक्तं	28.5	
कृत्वा संपूजियत्वा	8.809	क्षारा मधाम्बुदुःषा क्षेत्रे तीर्थेऽन्यदेशे	8.782	गात श्रुत्वा स वजा गीतायोगेन गीता	3.883	चक्र श्वत च रक्त चक्रं सार्घद्विहस्तं	0,830	
कृत्वाहः पिण्डमूनं	1.85			गीतवांद्यरच नृत्यै	3.224	चक्र साथाइहस्त चक्रं स्वच्छं समन्तात्	4.808	
कृत्सब्यान् (न्थ्यां) म्लेच्छधर्म	2.255	क्षेमस्तेऽप्यूर्वदृष्ट्या	3.868	गातवाधश्य मृत्य गुह्यं गन्धेषु पूर्ति	7.883	चक्र स्वच्छ सम्त्यात् चक्राच्चक्रान्तरं वै	7.870	
कृष्णादेः पादवद्वधा	3.48	क्षेंकारं पक्षिनाथं	४.१८३	गृह्य गत्थवु पूर्व गृह्याब्जे रक्तमध्ये	7.5	चक्राञ्चक्रान्तरं वै	8.895	
कृष्णानां खड्नकत्यौ	8.77	खड्गः कर्ती द्रुमेन्द्रः	8.38		4.868	चक्राणां मूर्जि भागे	2.239	
कृष्णाया धूपपात्रं	8.20	खड्गाद्युच्छेदयन्त्रैः	2,926	गुह्याब्जोर्णान्तभागैः	4.20	चक्राणां वक्त्रमध्यात्	4.43	
कृष्णा रक्ता च पीता	8.88	खड्गान्नृस्नेहदीपः	५,२३१	गुह्ये शुद्धात् समस्ताः	7.70	चक्राणी ववनमञ्चात् चक्राणीष्वविधसंस्या	4.284	
कृष्णा स्वेताऽनुरक्ता	4.00	खण्डैकं योजनानां	१.१५०	गुह्योष्णीये च नाभौ	8.208	चक्राण्यष्टी इमशाने	4.3	
कृष्णा स्वेताकंपूर्णा	4.80	खद्योतोलूकवक्त्रा	¥.9¥	गोखड्गाक्वेभनाथान्	7.838	चक्रादीनां समस्ताः	४.७३	
कृष्णाष्टम्यां निशाया		बर्तुः खच्छिद्रखेषुः	8.860	गोतक्रं दारियत्वा	7.840	चक्री चार्थी च लण्डी	१.१५२	
कृष्णे रक्ते च शुक्ले	8.800	खंखंखंखाव्धिनागैः	५.१५२	गोदन्तं मेषश्रुङ्गं	8.70 €	चक्री बच्चे स्वदेहे	2.86	
	8.13	खं खं खं खाव्धिनेत्रैः	4.848	गोदानं भूमिदानं	¥.77¥	चक्रोध्वें स्तम्भमूष्टिन	6.880	
कृष्णो बुढो नरेन्द्रो	7.5	सं सं शून्याम्बराष्टा	4.848	गोदुग्धैः शालिभक्तै	3.840	चक्षस्तोयस्वभावं	7.77	
केतुर्मन्दश्च स्नादि	7.80	खानिः पद्मप्रमाणा	३.७१	गोधाखुः बालिजातः	8.788	चण्डाची नामिचक्रे	X. \$ 2 0	
केतुमंन्दश्च वृष्टिः	2.5	खेटं कृत्तं च वाणं	8.08	गोभानोर्मोचनार्थे	57.8	चण्डाल्यालोकनं यद्	X. 2 50	
केतोर्भूयोऽधिकं यत्	1.63		4.50	गोलाघें खाग्निनाडी	42 43 43 1111			

\$ E X	विमल	प्रभायां		कालचक्रतत्त्र्यस्थोकार्षानुक्रमणी			154	
चण्डाः कूर्वन्ति रक्षां	8.884	छिन्ना यद्येकनाडी	7.09	जात्वा शिष्यस्य शुद्धि	3 220 =	तन्त्रं योगानुविद्धं		
	8.88	छिन्नेऽब्दे पक्षमध्ये	2,5,5	ज्ञात्वा साहस्रवेधी		त्त्र यागानु।वद्ध तत्त्रार्थं देशियत्वा	4.58	
चत्वारश्चाद्यरूपा	2.279	छिन्ने सूत्रे गुरोश्च	3,33	ज्ञातस्यं स्त्रीप्रसङ्गात्		तन्त्रेष्वेवं मया यत	4.748	
चत्वारो द्वघष्टहस्ताः	₹.१३६	छेदोऽज्ञानस्य कर्त्री	4.808	ज्ञानं बुढो मुनीन्द्रो		तन्मध्ये कालचकः	4.94	
चत्वारो बुद्धभेदाः	4.747	जग्री(यकृत) प्लीहार्शरोगा	7.888	ज्ञानं विज्ञानिमश्रं		तन्मव्ये किञ्चिदत्र	388.8	
चन्द्रप्रश्नावबोधे	8.3	जन्तुः पूर्वाणि कर्मा	7.111	ज्ञानं सर्वापहारी		तन्मध्ये खड्गमृष्टिः	\$. \$% \$	
चन्द्राङ्गं युग्मपादं	8.888	जन्मस्थानं स्वराणां	1.508	ज्ञानाकारात् स्वदेहात्		तन्मध्ये जोऽङ्कशस्य		
चन्द्रादित्यादिकार्ये	7.47	जम्बद्वीपं विशालं	8.89	ज्ञानाकाराय् र उपर्वेष		तत्मच्ये जाउङ्कुशस्य तत्मच्ये ज्ञानचक्रं	8.888 8.830	
चन्द्रादित्यादिदेवान्	₹.४६	जम्भी मानी क्रमेण	8,69	ज्ञानाकृष्टि करोति		तत्मव्ये ज्ञानवीजं	8.430	
चन्द्रादित्यैविहीनं	7.43	जम्भो वै रत्नपाणि		ज्ञानोत्पत्तिर्जिनानां		तन्मध्ये पञ्चविद्यत	2.243	
चन्द्रांशे षड्दिना ये		जम्मा व रत्नपाण जम्म्यादेऽलक्तपात्रं	33.8	ज्योतिः सूर्याऽचिरवधौ		तन्मध्ये लोकघातः	4.846	
चन्द्रे पक्षे रवौ च	2.54		३.१५७	ज्याति. सूपाजपरण		तन्मध्ये वज्रममौ	3.8	
चन्द्रे वह्नी शरेऽद्री	2.200	जः हूँ वें होऽङ्कुशाद्याः	₹.७९	ज्वालाचन्द्राक्वणा		तन्मध्ये स्यापनीया	₹.१०८	
चन्द्रोना याधिकार्के	4.837	ज: हूँ वँ होः क्रमेणा	8.883	ज्वाला विन्दुश्य पूरा	₹.१२३	तन्मध्ये हानिवृद्धी	2.64	
चापस्ये द्वादशे स्यात्	2.40	जाग्रत्स्वप्न स् वरूपं	4.884		85.8	तन्बङ्गी सुक्ष्मकेशा	3.888	
चामुण्डा खट्टिकी स्यात्	3.838	जाग्रत्स्वप्नादिविष्टा	५.१५६	टिक्कश्चुन्दा च युग्मं	4.808	तर्जन्य ङ्गष्टयोगो	3.161	
चामुण्डाद्यष्टकृत्या	8.84	जाता तस्मिन् प्रवृत्तिः	8.703	टिक्कस्तद् वीर्यनाशं	4.834	तर्जन्यन्ताः प्रसाराः	3.864	
चामुण्डाद्यष्टयामैः	8.804	जातानां वालतन्त्रं	2.886	डाकिन्यः कालरूपाः	4.60	तर्जन्या दशंनं वै	3.864	
चामुण्डा वै हकारो	8.69	जाता भूताव्धिसंख्या	4.883	डािकन्यो वच्चपूर्वाः	4,30	तुजंन्याद्यास्त्रिश्लाः	3.200	
चामुण्डा शूकरीशा	8.98	जातिक्वाथाम्बु चोष्णं	2.820	डाकिन्यो हस्वभावाः	8.884	तर्जन्याद्य व्यवका	1.161	
चारान् पञ्चग्रहाणां	₹.१०३	जातिश्चापस्थसूर्ये	2.224	डोम्ब्यां चानुस्मृतिः स्यात्	7.89	तजन्याच्रुज्यसमा तजन्यास्टवका	₹.१८०	
चारे साघी द्विलिसां	30.5	जाते श्वासोद्भवो यः	7.15	तिच्चित्तं द्विस्वभावं	7.63	तस्माज्जातो न नष्टः	4.298	
चित्तस्याभासमात्रा	4.883	जातो येनाङ्करोऽसौ	4.44	तत् क्वायं खण्डिमश्रं	7.49	तस्मार्जनेन्द्रकोष्टैः	3.47	
चित्तं निष्पत्तियोगे	8.48	जात्यश्वे नान्यपुंसो	8.704	तत्त्वाख्यं षड्भिर्हीनं		तस्मात् कर्ता न कश्चिद्	7.69	
चित्तं वै धर्मधातुः	8.40	जात्यश्वो गर्दभेन	8.209	तत्त्वाख्यं सप्तरात्रात्	FU.5	तस्मात् कायप्रभेदैः	8.833	
चित्तं वै भावरागैः	2.866	जात्याद्येलालतानां	7. १३७	तत्त्वान्यष्टादशाद्रिः	1.83	तस्मात् कायार्यहेतोः	2.200	
चित्तं संभोगकायो	8.99	जिह्नाक्षिश्रोत्रनासा	3.848	तत्त्वान्यष्टादशाद्रिः	१.७३ २.३२	तस्मात् तन्त्रोक्तचिह्नं	₹.५0	
चित्तावेधेन सर्वं	7.69	जिह्नाघः कालस्त्रं	7.68	तत्त्वान्येतानि देहे	2.206	तस्मात् तन्त्रोत्तरं वै	4.283	
चिन्ताकाङ्क्षा ज्वरोऽङ्गे	8.175	जिह्नायां चामतं वै	9.29	तस्वैकं श्वासपष्ट्य	8.779	तस्मात्तं भक्षयन्ति	4.63	
चिन्ता सर्वार्थकर्त	4.44	जिह्नाया चानृत व जिह्नीष्ठे लालिते वै	3,888	तत्पात्राद् बिन्दुना वै	8,177 8,855	तस्मातं भेदयित्वा	A. 53.R	
चिन्मात्रं मन्त्रह्पं	4.280		7.844	तत्रारूढोऽसिहस्तः	4.888	तस्मात् ता रक्षयन्ति	4.60	
चिह्नाकारास्त्र शेषाः	3.804	जीवः कायप्रमाणो		तत् सर्वं छीकिकं वै	35.5	तस्मात् पातो द्विजानां	7.85	
चिल्ले छिल्लेऽर्कचन्द्रे	3.88	जीवः कायप्रमाणो	₹.१७६	तत्स्यानाद्रङ्गभूमिः	3.33	तस्मात् प्रशाधिमुक्तं	3.880	
चूणें प्रन्यि च तद्वद्	7.139	जीवे दूते सजीवे	४.१७१ ३.३०	तद् दृष्ट्वा दुनिमित्तं	8.33	तस्मात् प्रत्यङ्गमन्त्रो	¥.250	
चैत्रादीनां तिथीनां	8.64	ज्ञात्वाऽऽचार्यः समस्तं		तद् बाह्ये सूर्यंपद्मे	4.33	तस्मात् श्रीमूलराहु	5.838	
चैत्रादी द्वादशाङ्गी		ज्ञात्वा चित्तानुसारं	7.846	तद्वच्चाष्टी च देव्यो	¥.13	तस्मात् श्रीरङ्गभूमी	₹.४०	
चैत्रान्ते स्वेतपर्वे	39.9	ज्ञात्वा चिह्नानि तेवां	7.847	तद्वद्वै श्यष्टकेन	-			
	3.4	शात्वा शक्ति स्वचित्ते	8.74	THE RESERVE OF THE PARTY OF THE				

	विमल	प्रभागां			B. W. T. T. T. T.		
166					कालचक्रतन्त्रदलो	नाधानुक्रमणा	१६७
तस्मात् श्रीव जयाने	2.83	तस्योध्वं कण्ठचक्रे	5.86	नोयं रूपं क्षितिश्च	4.890	दानाभावे विहारः	
वस्मात् संभोगकायो	7.84	तस्योर्घ्वं हुत्प्रदेशे	5.85	तोयाक्रप्टि करोति	2.886	दारिद्रशं स्त्रीवियोगः	¥.२१२ ३,२०३
तस्मात् साम्यं गृहीत्वा	8.884	तस्योध्वे छिद्ररेखा	5.585	तोयार्षं गन्धपूर्प	3.844	दिक्पत्रे डाकिनीनां	4,403
तस्मादन्यद् द्विगुण्यं	4.800	तस्योर्घ्वे तस्य चार्घं	4.804	तोयेनाग्नेविनाशं	8.0	दिक्पत्रे लोचनाद्या	4.26
तस्मादन्यैस्त्रिपुष्पैः	4.08	तं नः शक्रोऽव्धिवनत्रः	82.8	तीय भ्रमध्यपद्यं	2.24	दिक्पद्मेष्विष्यद्धाः	8.88
तस्मादन्वेषणीया	4.54	तं साध्यं स्नापयन्ति	४.१४५	ताय भूमभ्यपभ तोये श्रीमानवर्ज्ञ (चित्तं)	7.77	दिक्संस्या शिक्वनी या	7.84
तस्मादर्शिदिनैकं	1.90	तानेवाष्येष्य सर्वान्	₹.२७	त्यक्तावेशस्य पश्चात	3.92	दिग्भागे रज्जभमी	3,89
तस्माद् गर्भारमध्याद्	8.866	ताप्यं भूमिश्च तोयं	4.208	त्यक्तावरास्य वस्यात्	7.808	दिगुवर्षं यावदेका	3,88€
तस्माद् दानानुरागः	4.886	ताम्रेन्दुं हेमतुल्यं	4.222	त्यक्ता तद बुद्धकृत्यं	4.00	दिव्यश्रोत्रप्रभावात्	4846
तस्माद हुन्नाभिगुह्यं	५.१७३	तारा शूद्री चतुर्घा	3.230	त्यक्तवा श्रीमलराहं	8.877	दिव्या देवी पिशाची	3.888
तस्माद योनी रजो न	4.68	ताक्यें सिद्धे फणीन्द्राः	8.868	त्यक्ता संसारसौस्यं	4.888	दिव्या बुद्धाश्च विद्याः	¥.99
तस्माद राजन् स्वकर्म	2.29	तासां भूतोयतेजो	4.68	त्यक्त्वेमां कर्मेमुद्रां	8.888	दिव्या सत्त्वोपकारी	3.884
तस्माद् वज्राङ्क्षो वै	8.83	तिथ्याख्याब्दानि शौ(सौ)रो	2.44	त्रस्ता विभान्तिता	3.888	हिन्यीयच्या बलेन	4.70\$
तस्माद्विशत्सहस्रं	2.258	तियंक्प्रेतासुराणा	4.90	त्रस्ता विश्वास्तायस्ता त्रिप्राकारांस्त्रिवर्ज्यः	3.28	दीपाकारेण दीपा	₹,१९३
तस्माई विश्ववर्णः	8.868	तियंग् दृष्ट्या च दूती	3.888	त्रिप्रयो द्वाराणि कुर्यात	4.208	दीर्घा लग्ने दितीये	4.276
तस्मान्निर्माणकायः	7.88	तियंग्योनिश्चतुर्घा	2.8	त्रिस्यामध्ये हतेशाः व्रिस्यामध्ये हतेशाः	1.79	दीर्घेह्रंस्वै: स्वरैश्चा	4.79
तस्मान्निर्वाणसीस्या	4.888	तिर्यगमानस्य वत्तं	1.83		7.40	दग्धं धान्यं तिलाद्यं (ज्यं)	7.150
तस्मान्निःस्पन्दसौख्य	4.05	तीक्ष्णं चाकाशजातं	7.838	त्रिशद्भागेन तस्मात् त्रिशदवर्गाक्षराणां	2.207	द्रष्टानां सङ्गनष्टः	3.8
तस्मिन काले घरण्यां	1.75	त्यविस्या सुपुप्ता	8.200		7.44		2.288
तिस्मन काले घरण्यां	1.158	तुल्यं क्षारा विषं(डं)वै	4.778	त्रिशद्वर्षे स्त्रिमासान्	4.6		4.890
तस्मिन् चन्द्रद्रवे यो	4.30	तुल्यं दण्डोत्पलस्य	4.776	त्रिश्चद् वै कादिवर्णा	7.254	-	8.898
तस्मिन् त्रिशन्मृहर्ता	1.107	तुल्यं घात्री च घान्यं	7.230	त्रैकाल्यं द्रव्यपट्कं	4.888		8.738
तिस्मन्नन्तर्दंशायां	8.883	तुष्टोऽहं तस्य तुष्ट्या	4.788	त्रैलोक्यं पूरयन्ती	7.00		7.83.5
वस्मित्रित्यः खबच्चः	8.80	तृष्टोऽहं ते सूचन्द्र	7.703	त्रैलोक्ये नास्ति योगी	7.860	0	५.१३६
तस्मिन् पुत्रो भवेद यो	4.09	तेजों और हिन्दू स्त	4.48	स्वं कैवल्यं पदं स्वं	7.860	0	१.१२३
तस्मिन् पूजां न कुर्याद्	7.843	तेनाकृष्टं स्वदेहे	3.64	त्वं माता त्वं पिता त्वं	3.97		2.200
तिस्मन् भृताधिपस्य	4.738	तेनाकं त्वं मुनीनां		दत्ताङ्गे पीतवस्त्र	3.707	0	8.865
वस्मिन् मासे रजो यत	4.60	तेषामाद्यन्तभागं	4.898	दत्त्वाऽऽचार्यः सिंशष्यः	2.34	0	₹.१५
तस्मिन् स्पर्शाङ्गमध्ये	4.838	तेपामाद्यन्तभागे	4.844	दत्त्वा सूर्ये तिथींश्चा	3.843		4.904
तस्या एकक्षणा स्यात्	4.52	तेषामुध्वे परोऽग्निः	₹.४१	दन्तैः केशैस्त्वगार्दैः	7.07		4.220
तस्याङ्गल्यचंचन्द्रा	1.137	The state of the s	7.35	दष्टं व्याधिप्रहारो	¥.784		१.१२६
तस्याप्यन्यद् द्विगुण्यं	8.873	तेषां प्रज्ञाः प्रचण्डाः	X. E. X	दातारो ये ददन्ति	3.880		4.888
तस्या मूर्जिन द्विहस्तं		तेषां याः पद्मपत्रे	₹2.%	दात्रा वै पुष्यहेतोः	8.174	The state of the s	8.777
तस्यार्थे नष्टकालैः	4.788	तेयां पण्मन्दचारात्	4.880	दानं त्यागो धनस्य	8.770		₹.७४
तस्यार्धेनापि चीष्ठं	7.45	तैश्चिध कालचक्रः	4.40	दानं पुत्रेण दत्तं	8.778		¥\$.\$
तस्यां सर्वज्ञविम्बं	₹.७२	तैः सार्वं वज्रसत्त्वो	4.840	दानं शीलं प्रपूर्णं	4.800	·	15.5
	4.88€	तोयं तारादिदेव्यो	₹2.5	दानाद्याः षट् चतस्रः	7.10		

	विमलप्रभायां			कालचक्रतन्त्रक्लो	कार्थानक्रमणी	
145		4.89				१६९
देयाः सत्वार्यहेतोः	३.९८ द्वारे चण्डाः शवस्या	7.65	न ध्यानं मन्त्रजापः		नाम्यव्जे सूर्यंपत्रे	38.9
देवत्वं चाष्टभेदैः	२.९४ द्वाविशत्(ति)पञ्चरस्धे	4.888	न प्रज्ञा नाप्युपायः		नाम्यादी सिंहमूत्रे	3.83.6
देवाद्या धर्मकायः	४.९८ द्वित्र्यब्बीब्वृत्वगाष्ट ४.६७ द्विद्वयङ्गेब्बाद्यविद्या	4.232	न प्रत्यक्षं परोक्षं	7.848	नामाद्यं चित्तवच्यं	٧.१६७
देवा वज्रासनस्याः	४,६७ द्विह्यर्गव्याचापचा	2.79	नष्टे चन्द्रार्कविम्बे	4.888	नायं चित्तेन चित्तं	4.230
देवि त्वं साक्षिभूता	३.२६ दिस्यानेऽकेंन्द्रिमधं	1.77	नाकट्यं षच्चमञ्जात्	4.68	नारी कामानुरक्ता	₹.१४६
देवीपृष्ठेऽघिकारो	५.३६ द्वीपं चन्द्रं सिताभं	7.74	नागक्रीडां न कुर्यात्	8.806	नालेनेन्दीवरस्य	4.744
देवी बुद्धान्तराले	४.५६ हे चर्ले रुद्रनाड्यः	4.98	नागं तीक्ष्णारताम्रं	4.280	नाशार्यं विद्वकृत्सनं	8.840
देवीभिभंत्स्यमानं	४.१४८ हेपाद्या विश्वमाता	4.883	नागं शीतं रणं	7. 234	नासाग्रं लम्बमानं	2.60
देवीभि: कृष्णरक्ता	५,१९ हो ग्रासो खण्डमिश्री		नागाद्यान् साघयित्वा	4.733	नास्तीदाः कर्मपाको	7.25%
देव्योऽचिस्मृत्युपस्यानं	३.१६७ हो हो गर्भान्तराले	8.834	नागानब्जाष्ट्रपत्रे	8.834	नास्त्यात्मा संभवो	२.१७२
देशग्रामाविपानां	४.२३० ही स्तम्भी भूमिगर्भे	8.888	नागानां पाचनार्यं	4.220	नास्त्येयां जन्तुशक्ति	7.864
देहे विश्वस्य मानं	१.२ ही हस्ती वज्रबन्धी	₹.१७७	नागा यक्षा ग्रहा ये	7.848	नित्यानित्यं च दृष्ट्वा	28.8
देहे विश्वस्य मानं	३.१ द्वचन्ध्येकाव्य्यैकसूर्येः	3.48	नागाश्चण्डाश्च गृह्ये	8.204	निद्रां पादप्रसारात्	₹.१८९
देहेऽस्मिन् घातुवृन्दं	२,३ द्वचास्या डाकाः करेषु	4.38	नागिन्यः साषयित्वा	4.737	नियोंगैवेंदवावयैः	8.508
देहरादीनां च तद्वद	४.४० धर्मस्तोयं यथैव	4.48	नागै राजश्चतुर्मि	₹.९६	निर्माणे भोगकत्	8.306
दैत्यादीनां स्वबीजं	३.६६ धर्मः सत्त्वोपकारो	2.806	नागै राजंश्चतुर्मि	₹.₹०४	निर्यूहां(हं) श्रीकपोलं	५.१७६
दैत्यानां चाष्टभेदाः	३.१३६ धर्मे संशुद्धवायोः	4.88	नागैः श्रीमौलिबद्धे	₹.१०४	निलंज्जा तीव्रकामा	₹₹₹
दैत्येन्द्रासुक्कपाल	४.१३१ घात्वंशं घातुमध्ये	3.896	नागोऽप्यदुगारमेव	7.88	निर्लेपां निर्विकारां	8.888
दोपश्चिन्तामणे	५.५५ घान्यं मुर्वी घताह्वं	7.836	नाडी चर्माण वुक्कं	3.252	निर्वाणं यान्ति यस्मात्	4.97 8.3
दोषाश्चामादशैते	५,२४२ धूमाद्या बिज्ञणस्ताः	8.875		7.31	निर्वाणाद्यं घरान्तं	2.209
		8.803	नाडीनां षट्सहस्रं	4.787	निःस्वासोच्छ्वासमध्ये	3.848
दोषास्तिथ्यष्टमूलात्		8.830	नाडी रन्ध्रा ग्रहा वै	4.843	नीराविष्टो बलाका	4.80
यूतं सावसभोज्यं		₹.१७३	नाडीसञ्चार एष		नीलानां विश्ववणीः	8.58
द्रव्यं तेषामनेकं	५.२०७ ध्यात्वाङ्गं स्पर्शेनीयं	8.888	नाड्यब्दे षट्सपादं	१.६२	नीलानां वेदितव्यं	8.42
द्रव्यात्मानं त्रिशुद्धचा	३.८५ घ्यात्वा चन्द्रार्कमध्ये	8.848	नाड्यो हाद्याः समात्रा	19.5	नीलामं भीमकायं	8.840
द्रव्याभावेऽभिषेको	३,२०० ध्यात्वा सूर्येन्दुगर्भे		नादः श्रीवज्रसत्त्वो	8.98	नीलाभं शूरयबीजाद्	7,58
द्रोहं कुवंन् हि योगी	५.६६ घ्यात्वा सूर्येन्दुगर्भे	8.848	नादो बिन्दुः कला	4.870	नेत्राहिशैलवाणं	2.835
द्रोहं मित्रप्रभूणां	३.९४ व्यात्वा सूर्येन्दुमध्ये	8.240	नानाद्यैः स्कन्धभूतैः	4.38	नेत्रेन्द्रग्न्यविधवाणा	¥.258
द्वात्रिशच्चैकरक्तं	२.१०६ ध्यानं पञ्चाननं वै	8.846	नानाभावैविभिन्ना	4.96	नेत्रैः पित्तैश्च तेषां	2.848
द्वात्रिशत्तद् द्विगुण्याः	५.१५४ ध्यानं प्रज्ञा च चित्तं	४.१२८	नाभौ कण्ठेच गृह्ये	7.76	नैरात्म्यं कर्मपाकः	4.88
द्वार्तिशद्भिस्य नाड्यो	१.९३ नक्षत्रं दन्तपङ्क्तिः	5.38	नाभी कण्ठे ललाटे	7.59	नैऋत्यः शूद्रनागाः	2.5
द्वात्रिशल्यक्षणार्यः	३.१११ नक्षत्रं शोध्यमकं	8.80	नाभौ गुह्येऽव्घिषष्टि	7.48	नैऋर्त्यां दक्षिणे च	2,50
द्वात्रिशल्छक्षणानि द्वारस्येम्यः प्रदेयं	५.२४० नक्षत्रे यत्र कालः	2.274	नाभी चाष्टाष्टकान्याः	7.9	नोच्छिन्ने कालचक्रे	2.00
	३.२०१ न ज्ञातं विश्वमानं	7.8	नाभी वैरोचनादीन्	8.290	नो भुक्ता यार्घनाडी	188.5
द्वारं चक्राष्ट्रभागं	२.१५६ न ज्ञाते वर्तमाने	2.208	नाभौ संश्वभूमे	4.85	पक्वं गन्धं सुपुष्पैः	7.840
द्वारायं सर्वचकात्	५.१७८ न ज्ञाते सूक्ष्मयोगे	2.220	नाभौ हत्वाङ्करोन	8.43	पनवान्नं पञ्चिमिन्नं	
द्वाराणां रक्षणार्थं	३.७० न टाला विद्यवस्य	4 19 8	2			

विमलप्रभायां				कालचक्रतन्त्रदलोकार्यानुक्रमणी			
\$400					नगरु प्रभवन्त्र २७१३	नवानुक्रमणी	१७१
पक्षक्षीणो यथेन्द्	4.848	पाणी पृष्ठे च गच्छ	7.869	पुंसां चित्तं समन्ता	4.66	पूर्वे श्रीकृष्णभूमि	
पक्ष स्तिध्यास्यवारे	2,990	पाताले ये फणीन्द्रा	4.750	पूजाकाले समस्ताः	3.842	पूर्वे श्रीचित्तवर्ञ	1.71
पक्षाधिक्यो द्भवाभ्यां	9,818	पातालेष्वष्टचण्डा	₹,१३७	पूजार्यं कामशास्त्रं	₹.१४४	पूर्वे सब्येऽवसब्ये	₹.८१
पक्षा वर्षत्रयाणां	7.808	पादात् कट्यन्तपीतो	8.868	पूजा वै योगिनीनां	2.4	पूर्वे संस्कारपृथ्वी	8.63
वक्षा मासाः समस्ता	1.74	पादाभ्यां मारहद्रं	¥.?	पूजां खड्गे करोमि		पूर्वोक्तं बीजराजं	7.44
पक्षिस्वाहान्तमादि	8.863	पादांशं शह्वधूपं	7.8%0	पूर्तिक्षाराब्जगन्धा		पूर्वीकान् मातृदोषाज्	7.133
पक्षे चन्द्रः स्वचारै	7.09	पादे कट्यां ललाटे	4.30	पूय: इलेप्साच यूका		पूर्वोक्तैकैकलग्ने	x.145
पक्षे पक्षे च नाडी	7.40	पादे कण्डूयमाने	₹.१९०	पूयाद्याः केशसीम्नः		पृच्छेद्राजा सुचन्द्रः	₹09.9
पक्षकेन द्विगुण्यं	4.286	पादेनैकेन जाता	4.39	पूर्णीयां भूमिशुद्धिः		पृथ्वी काठिन्यमम्ब	3.5
पक्षी वेदाश्च भूता	8.62	पादोऽधो जानूरूक	4.808	पूर्णा वाराकंचाराः		पृथ्वीगर्भो हुताशो	₹.₹₹ ₹.₹८
पञ्चन्यचीन्द्रसूर्या	4.80	पादो यस्येन्दुमूष्टिन	1.888	पूर्णेऽब्दे पहृदिनं	7.05	पृथ्वी तोयं प्रयाति	4.822
पञ्चत्वं यान्ति तस्मात्	1.55	पाय्वाद्यैश्चक्षुराद्यैः	4.27	पूर्णे मासे ध्रवं	2.90	पृथ्वीतोयाग्निवाता	7.25
पञ्चप्राकाररेखां	4.75	पाशो रत्नं च पद्मं	7.35	पूर्णे होमे ज्वलन् वै	8.253	पृथ्वीतोयाग्निवाता	7.849
पञ्चम्यः पञ्चविशद्	7.57	पाषाणा जीवरूपा	4.703	पुबंद्वारस्य सब्ये	3.49	पृथ्वीतोयाग्निवाता	4.888
पञ्चस्कन्धस्वभावै	4.97	पावाणा ये घरण्यां	4.223	पूर्वंद्वारस्य सब्ये	3.58	पृथ्वीतोयाग्निवाता	4.700
पञ्चस्कन्धास्त्रिकायाः	2.252	पिङ्गाः सूक्ष्मास्त्विडाद्या	2.84	पूर्वहारे च खर्झ	9.846	पृथ्वीतोयाग्निवाताः	7.7
पञ्चाकारात्तदेकात	4.49	पिण्डोभुताः समस्ता	2.44	पूर्वद्वारेऽत्रसब्ये	3.50	पृथ्वीतोयाग्निवायुः	₹.₹₹
पञ्चाकारो जिनेन्द्र	3.86	पित्ताम्लैगंन्घकाद्यैः	२.१३३	पूर्वं घूमस्वभावे	4.204	पथ्वी बीजे ललाटे	8.864
पञ्चाङ्गल्यघंवका	3.868	पित्तेन इलेष्मणाक	4.2	पूर्व बुद्धैधंरित्री	8.206	पथ्बीलक्ष्मी निमित्तं	8.223
पञ्चान्नं पञ्चबाद्यं	7.848	पिष्टवा शीताम्बुसूर्यो	7.179	पूर्वं वास्वर्धवृत्तं	2.20	पथ्वी शुलापहारी	4.860
पञ्जाभिज्ञा बलानि	4.739	पीठं तारादिवेश्म	₹.१६५	पूर्वात सर्वास्तिवादं	4.42	पृथ्वी शैलोदकं स्यात्	4.707
पश्चाचद् रज्जुबद्धे	0,53.9	पीठं वामाञ्जपूर्वं	7.144	पूर्वादधंप्रहरात्	2.222	पथ्वी स्यात् पीतरलं	4.864
पद्मानङ्गा कुमारी	8.38	पीठं स्त्रीगृह्मपद्मं	₹.१६६	पूर्वादी कर्तिका च	8.70	पृथ्वी स्याद्धेमघातु	4.864
पद्मे वज्रव्यनिर्वा		पीठादब्जादिसीम्नो	4.863	पूर्वीर्घा सान्धकारं	4.838	पुष्ठात् सद्यो निवृत्तिः	4.40
पर्यं हुस्यः प्रशान्त	4.888			पूर्वार्घे ग्राह्य इष्टो	8.88	पृष्ठालोके भुजङ्गी	7.854
	₹.७६	पीठाद् वेदैश्च पद्मं	4.868	पूर्वाघे चापरार्धे	2.89	पष्टे कर्केतरत्नं	4.713
पर्येक्ट्रः शान्तिकादी पर्वेच्छेदे च राहो	₹.१९	पीठे कीलद्वये वै	8.8%0	पूर्वाञ्जे चर्चिकाग्नी	8.75	पछे पीता च तारा	0.5
पर्वच्छेदे च राहो:	१.५२	पीतः कृष्णश्च वर्णः	7.79	पूर्वाब्जोध्वें त्विकारः	3.46	पैशाची गन्धवज्ञा	7.884
	1.64	पीतानां चक्रदण्डं	₹.₹₹	पूर्वाम्यासेन तेना	7.90	पौष्णाद्य <u>ौ</u> र्हा नितुल्यै	7. 53
पश्चाच्छान्त्यादिकेषु पश्चाच्छिष्यस्य सेकं	४.१६८	पीता नीला च भूमि	4.70	पूर्वास्यात् कौलतन्त्रं	4.89	प्रज्ञाकायप्रभावात्	4.840
पश्चाच्छुद्धिश्च तेषां	00.5	पुण्यज्ञानार्थहेतो	8.714	पूर्वास्यानमैथुनं वै	4.48	प्रज्ञाकाये त्रिलग्ना	7.43
पश्चात् प्रज्ञादिषट्कं	2.62	पुत्री ब्रह्मा सुरेशः	2.244	पूर्वाह्मादष्टयामाः	\$9.5	प्रज्ञाङ्गे रक्तपीते	4.84
पश्चादिन्दो(न्द्रो)निरोधं	8.46	पुत्री ब्रह्मा सुरेशः	१.१६७	पूर्वे बाणाग्निलोकं	7.58	प्रज्ञाज्ञानस्य छाभी	4.243
पश्यन्ति प्राकृतं यत्	7.806	पृष्टी स्वाहान्तमन्त्रो	3.60	पूर्वे याम्येऽवसव्ये	3.9.6	प्रज्ञाज्ञानस्वभावाद्	4.846
पाणेः पादस्य सन्धी	4.883	पुष्पाद्यैगंन्धतैलै	₹.₹०७	पूर्व याम्यज्ञसञ्च	1.71	प्रज्ञा ज्ञानं च चित्तं	4.88%
वाणी वृष्टेऽज्ञुलीनां	7.59	पुष्ये माघेऽभिसन्धी	2.224	पूर्वे शुद्धेन्द्रनीसः	4.255	प्रशाशानाभिषिको	\$.200
कता रिक्सीलामा	7.969	पुष्ये मासे त्वविद्या	8.888	भूय शुद्धन्द्रनालः			

	विमला	प्रभायां			कालचक्रतन्त्रदलो	ETOT TOTAL	
१७२						व्यवानुक्रमण।	१७३
प्रज्ञाज्ञानाभिषेके	3.888	प्रत्येकं मन्त्रजातेः	235.8	बाह्ये देहेष्वभिन्ना		बुदं घमें च सङ्घं	8.4
प्रज्ञातन्त्रं हि पूर्वात्	4,86	प्रत्येकं रुद्रसंज्ञा	7.76	बाह्ये द्वारादि सर्व		बुद्धं घमं च सङ्घं	¥.213
प्रजाधर्मोदयस्यं	8.222	प्रत्येकैकं रसाणा	4.844	बाह्ये द्वारोर्ध्वभागे	₹.४७	बुढाद्यकां चतुर्भिः	3,30
प्रजाधर्मोदये यत्	4.63	प्रश्ने संग्रामकाले	2.204	बाह्ये द्वचष्टरमशाना		बुद्धािषष्ठानमन्त्रैः	30.9
प्रज्ञाबिन्दृद्वयेन	8.890	प्राणः प्राणं करोत्य	7.83	बाह्येऽघः पद्मपत्रा	₹.७२	बुढानामप्यगम्या	4.96
प्रज्ञाभत्रों हुँ दब्जे	₹.₹५	प्राणा देहेऽधिका ये	7.68	बाह्ये नागाः समस्ताः	8.53	बुद्धानां दिग्बलानि	4.780
प्रज्ञाभावेन भिन्नं	4.84	प्राणाद्यान् साधयित्वा	4.733	बाह्ये नानाप्रदेशे	4.93	बुद्धानां षट्कुलानि	4.8
प्रजाभिन्नं जिनस्य	4.88	प्राणापाने निरुद्धे	4.840	बाह्ये प्राकारभित्तौ	4.78	बुद्धाः क्रोघाः सुराद्याः	4.53
	3.870	प्राणायामं प्रकुर्याद्	7.877	बाह्ये बिन्द्वादिभिन्ना	3.47	बुद्धैरास्वाद्यमानैः	₹.\$₹
प्रज्ञामाता सुमाता	4.888	प्राणायामः समन्तात्	8.878	बाह्ये मेरोरघो वै	4.808	बुद्धैर्व चामृतेना	3.888
प्रज्ञाया या स्तन	4.64	प्राणायामानलेन	8.884	बाह्ये या चाष्टमार्घा	4.838	वुद्धोक्तात् कालचक्रं	4.243
प्रज्ञायुक्ते त्वयैके प्रज्ञारकाः सितानां	4.80	प्राणायामेन शुद्धः	8.886	बाह्ये रेखात्रये वै	8.848	वौद्धः शैवोऽय नग्नो	3.859
	8.870	प्राणायामो द्विमार्गः	8.888	बाह्ये लास्यादिदेव्यो	4.72	बौद्धे शान्ति करोति	3.5
प्रज्ञासृष्टेन्दुबिन्दो	¥.71			बाह्ये वच्चावली स्याद्	3.84	ब्रह्मा कायो हरो वाग्	8.202
प्रज्ञोत्सङ्गे ह्युपायः	₹.₹0	प्राणेनाधिष्ठितं यद्	4.₹८	बाह्ये वाङ्मण्डले वै	8.8	ब्रह्माणी घीवरी स्यात्	३,१३२
प्रज्ञोपायप्रभेदै		प्राणेनापूरियत्वा	2.809	बाह्ये शान्त्यादिकर्म	४.१८६	ब्रह्माण्डं स्वगंलोको	7.34
प्रज्ञोपायप्रभेदैः	8.98	प्राणोऽपानः समानः	7.87	बाह्ये जूकं त्रिभागो	4.868	ब्रह्माण्डे कालचक्रं	2.20
प्रज्ञोपायाक्ष राम्यां	4.₹८	प्राणी यद्येकनाड्यां	7.4?	बाह्ये श्रीवच्चघोषः	8.868	ब्रह्माण्डे श्रीचतस्रः	€\$9.5
प्रज्ञोपायाङ्गभावैः	8,99	प्रासादं भूमिवेश्म	५.२२५	बिन्दुः शक्त्याञ्जनेयो	१.१५६	ब्रह्मादी मानवान्दा	\$. १ \$.8
प्रज्ञोपायाङ्गमध्ये	₹.₹४	प्रेतानां पाचनार्थं	4.880	बिन्दोभेंदः(दं) शिवत्वं	7.863	ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रः	8.78
प्रज्ञोपार्यंकयोगं	4.758	प्रोक्तैर्भागेन चक्षं	8.84	विन्दोर्मोक्षे नव मोक्षो	५.१२६	ब्रह्मा विष्णुः समस्ताः	8.45 (-41
प्रज्ञोपायोद्भवं तं	8.47	प्रोत्फुल्लं नेत्रवक्त्रं	४.१७२	विन्दोः स्पन्दद्रवं यत्	4.64	ब्रह्मा वैरोचनो वै	1.870
प्रज्ञोपायोऽस्थिमांसं	7.30	बद्धेऽन्योन्यं कनिष्ठे	₹.१८५	बिन्दी निर्माणकायो	7.79	ब्राह्मी रौद्री कुमारी	3.75
प्रत्यक्षं चानुमानं	8.939	बद्धे स्यात् खेचरत्वं	4.70\$	विन्द्वाकारीँवभिन्नं	₹.६१	भग्नं मारस्य सैन्यं भद्रा सौम्ये द्वितीयो	2.95
प्रत्यालीढं च रूढा	8.280	बम्नात्यात्मा विकल्पैः	7.24	बिन्द्वाकारैविसर्गे	7.04		4.37
प्रत्यालीढं हि मातु	8,88	बन्धं कालान्तरेण	4.727	बीजस्य क्ष्मा करोति	7.4	भर्तुमीलाकपालै भर्तुयीनीन्द्रियाणि	4.884
प्रत्यालीढा विवस्त्रा	8.848	बाणा भृतेन्द्रियाणि	4.788	बीजं घत्ते घरित्री	4.8	C.t.march	¥.1¥1
प्रत्याछीढे स्थितानां	8,55	बाणास्तिध्याहताश्च	2,49	बीजं न व्यक्तकालं	4.588	C	4.840
प्रत्यालीढोष्ट्रमूडिन	8.840	बाणो वच्चाङ्कशो वै	8.22	बोजे न्यस्ते प्रतिष्ठा	₹.११४	· marri	4.840
प्रत्याहारादिभिवे	8.888	बालं गृह्णन्ति ते वै	2.886	बीजैकं चैकवीरो	4.83	* 1	4.3
प्रत्याहारेण योगी	¥.11.4	बालानां वर्षजानां	7.848	बुद्धक्षेत्रं समन्तात्	4.866		4.30
प्रत्याहारो जिनेन्द्रो	8.884		2,57.5	बुद्धक्षेत्रं समस्तं	8.286	* · · ·	£x8.8
प्रत्याहारो दशानां	8.888	बाला वृद्धास्तरुण्यः	₹.१२८ ४.१०२	बुबक्षेत्रं समस्तं	५.१६६		855.X
प्रत्यूषे चार्घरात्रे	4.863	बाहोः पादस्य सन्धी	4.23	बुद्धक्षेत्रं समस्तं	4.886		3.884
प्रत्यूषेऽनामिकाम्यां		बाह्यस्थे मण्डले वै		बुद्धक्षेत्राण्यनन्ता	4.53	• ->	4.857
प्रत्यूपेऽस्तं कृतेऽकें	7. ११३	बाह्ये चाष्टाष्टकेना	¥.74	बुद्धस्यैतार्कं भूम्या	4.34	मावामावक गूप	
	8.808	बाह्ये ज्योतिष्कचका	4.268				

ter	विमला	प्रभायो	*		104	
*C.C	8.226	भूम्यावेशेन योगी	₹.९•	मद्यं प्रज्ञास्वभावं	रे.१४७ मारक्लेशक्षया वै	
भावाभावैविभिन्नं भावोऽभावोऽपि चास्ति	7.807	भूम्यां नागोऽच कूर्मो	2.28	मध्यालं चार्घरात्रं	३.१४ मारकलेशान् निपात्य	4.200
भावाऽभावाऽ।प पारच भावाऽच्छिन्ना समन्तात्	4.858	भूयद्वैकैकवर्गः	4.4	मध्याह्नादर्घरात्रं	२.९९ माराणां ताडनं वै	4.883
भाषाऽभ्छित्व। सम्पाप् भिक्षण्यो भिक्षवश्चापि	8.788	भूयस्तत्पातकल्के	4.724	मध्याह्ने चार्घरात्रे	४.१७९ माराणां मारबृद्धिः	7.505
भिन्दन्त्येतानि शक्ति	2.80	भूयस्तस्यैव मध्ये	2.244	मध्ये चक्राधंरेखा	१.५४ माराः कूर्वन्त्यशान्ति	4.96
भीमोग्रा कालदंष्ट्रा	8.79	भूयस्त्यागं चतुर्थी	7.90	मध्ये तत्त्वं घराद्यं	१.१०४ मारीची गन्धवच्चा	8.90
भुक्तं कृत्वैकपिण्डं	1.88	भूयः कृष्णे च तद्वद्	8.68	मध्ये पद्माष्ट्रपत्रं	३.४४ मारीची चर्मकारी	3.233
भुक्तं पञ्चप्रदीपं	2.824	भूयः क्षारेण शुद्धं	7. १३४	मध्ये प्राणप्रवेषः	५.१२१ मारीची नीछदण्डो	8.98
भूगर्भः वण्मुखः स्याद्	¥.97	भूयः पुच्छामि सम्यक्	Y. ?	मध्ये प्राणप्रवेशो	४.१२२ मारीच्याः शूकराः स्युः	8.83
भूगर्भो रूपवच्चा	8.06	भूयः शूद्रादिचि ह्रं	₹.१५९	मध्येऽब्जं सूर्यहस्तं	३.२४ मारीच्यैन्द्री च शक्रो	4.25
भृतत्त्वं त्रिप्रकारं	₹2.5	भृयः श्रीकालचक्रे	2.68	मध्ये मेरोर्यदूष्वं	१.११ मारेशो पादमूले	4.37
भुतास्याश्चाभयन्ते	8.884	भूयः वण्मात्रभिन्ना	4.230	मध्ये बच्चोर्ध्वबीजं	१.७ मारीरेतत्समस्तं	8,789
भतानां मिधकर्म	7.900	भूयः संक्रान्तिभेदो	7.44	मध्ये श्यामस्तदन्तः	५.१६९ मारो रक्ते च सब्ये	8.88
भतानां श्रीकनिष्ठा	3.168	भूयोऽन्या द्वित्रगुण्या	4.770	मध्योध्वीषस्त्रिभागं	५.१८० मार्गाणां खाहिचन्द्रं	5.48
भृतादीं स्त्रासयन्तं	8.934	भूयो भूयः समाधौ	7.172	मन्त्रश्चोङ्कारपूर्वो	२.१२९ मार्गे संस्थापयन्ती	4.90
भूतान्तं भूतनायं	4.284	भूयो भूयोऽग्नितापैः	4.780	मन्त्राकृष्टि प्रयान्ति	४.१८४ मार्तण्डेन्द्रोः पदान्य	4.830
भूताभूतेषु वेदाः	₹.३२	भूयो भूयोऽब्दमध्ये	7.68	मन्त्रेणानेन राजन्	५.२१५ मातंग्डे कर्कंटस्ये	2,40
भृताः सूर्येन्द्रसंख्याः	8.82	भूवायंग्निश्च वायू	4.46	मन्त्रे विम्बे त्वसिद्धे	४१५९ मार्तण्डेन्द्रोनिरोघः	7.809
भतेन्द्रं साधियत्वा	8.844	भुस्पर्शोऽक्षोम्यमुद्र <u>ा</u>	₹.१७१	मन्त्रैवीरक्रमेणा	४-२२३ मालाकारी प्रसिद्धा	3,838
भृतैयंद्येकभृतै:	7.864	भेतव्यं नास्ररेन्द्रा	8.868	मन्यानो मन्ययन् हि	५.१६७ मालावद्धः कपालै	4.86
भूषातुः पीतमुस्तं	4.703	भेरुण्डश्चाम्बरीको	3.842	मन्दे रन्ध्रा दिनास्या	५.१३४ मालामन्त्रस्तवात्यो	7.54
भूभृत् तत्त्वप्रभेदा	4.730	भेरण्डः क्रञ्चनीले	¥,¥१	मर्माण्यस्थीनि मज्जा	२.११ मासक्षेपकवारो	5.58.0
भूभृत्सूर्येन्द्रमन्व	7.184	भोगासक्तः प्रमत्तः	3.3	माता क्रोधेन्द्रमुद्रा	४.८९ मासाख्या वत्सराख्या	2,39
भूमि चावाहियत्वा	3.74	भौमः शुक्रो बुधेन्द्र	4.880	माता चित्तेन चिन्त्या	३.१२५ मासा नेत्राकंमिश्रा	2.222
भूमिः क्षाराम्बुमिष्टं	4.825	भीमः सौम्यश्च मन्त्री	₹.१६३	मातुस्तत्रीकवक्त्रं	४.१३२ मासार्धेनाप्यरिष्टं	4.866
भूमेराकृष्य चाणुं	4.854	भौमेऽनिष्टोदये व	8.84	मात्रा पित्रा विहीनो	४.१४० मासास्तेद्वीदशाङ्गीः	2.76
भूमेराघार अम्ब	25.5	भौमे वेदर्त्वह्निः	१.६७	मात्रासंख्यात्मको वै	५.९ मासास्त्रिस्थानभूताः	2,40
भूमेर्जातिश्चतुर्घा	₹.७	भौमे शून्याहिचन्द्रा	4.838	मात्राहीनस्तु योघ:	१.१२३ मासास्त्रिशद्वताश्च	9.09
भूमी कैछ।सखण्डं	8.848	भौमे शैलाहिषट्कं	8.60	मात्सर्यं ज्ञानधाती	२.२३ मासे भुक्तिर्गुरोः स्यात्	9.09
भूमो चक्रप्रसृतिः	¥.00	भौमे सार्घा नवार्घा	8.68	मानं सत्त्वानुरूपं	५,६९ मासैकं मन्दकमं	1.64
भूमौ दिक्षु त्रिवर्जः	3.74	भूकेशा रन्ध्ररोमा	7.88	मानी क्रोघाभिभूतः	३.३ मासैस्त्रिशद्दिना ये	7.90
भूमी मानं तया वै	5,83.8	मञ्जूश्रीलोंकनाथः	7.40	मानध्यं पूर्ववक्त्रात्	५.५२ मांसान्याश्रित्य चास्यी	3.894
भूम्याकारो दृढो न	4.888			मानुष्याणां शताब्दं	१.८७ मित्रं मे सीम्यदृष्ट्या	2.70
भूम्यादीनां समन्ताद्	8.833	Tarrante	4.860	मानुष्यैश्चाल्यमानं	१.१३९ मिश्रं चैत्रादिमासै	1.98
मृम्यादी पद्मधाती	2.75	मत्स्याकारस्तु मात्स्ये मद्यक्षीराव्धिमध्ये	7.0	। मायाजालं त्रिभेदं	५.२४ मीने खण्डे तृतीये	1,191
भूम्यादां चास्वरान्तं	7.52	मद्यं दीपाश्च वृद्धाः	8.840	मायाजालं दिनाङ्गात्	२.५२ मुक्तं खे याति धीन्नं	
	2.47	भव दापाश्च वद्धाः	3.36	" "		

	विमल	प्रभागां			-		
101		म्लेच्छा श्रीदवानवस्त्रा	2		कालचक्रतन्त्रदले	किषिनुक्रमणी	\$100
मुद्रा मायानुरूपा	288.8	यक्षे रौद्रो यमः स्याद्	3.838	यस्यान्तं नादिमध्यं	4.288	युष्मत्पादाञ्जयोर्वे	
मुद्रायं नामभेदो	3.800		8.65	यस्यां द्वेषः समस्तो	4.204	येन ज्ञातं स्वदेहे	1.64
मुद्रा वैरोचनस्य	₹.१७२	यच्चिल्लं यस्य सब्ये	8.78	यस्यां मोहः समस्तो	4.208	ये नागाष्टी घटास्ते	2.45
मुद्रासिद्धि ददाति	8.770	यच्छव्दं जीवलोके	7.888	यस्यां रागः समस्तो	4.228	येनोत्पन्ना जितेन्द्राः	¥.9¥
मुद्रां पट्टं च मौलि	₹.१०५	यच्छन्दो ह्रत्प्रदेशे	7.884	यस्यां संसारसंज्ञा	4.202	ये प्रोक्ताऽनेकमन्त्रा	4.00 4.65
मुद्रेयं पञ्चश्का	3.805	यज्ज्ञानं दुर्लभं वै	4.738	यं छाः युग्मक्रमेण	8.09	ये बुद्धाः सर्वदिक्ष	7.29
मद्रोक्ता भावनायं	२.१२३	यज्ञात् स्वर्गः पशूनां	4.68	यं झब्दं जीवलोके	8.889	ये भूम्यां कल्पवृक्षा	4.882
मुष्टी बज्जासनस्ये	3.868	यज्ञे हिंसा पशूनां	4.284	यः कदिचत् सूर्यभोगं	8.40	ये स्वासा मध्यमायां	4.39
मुढानां बृद्धिरेषा	2.69	यज्ञो यस्य प्रमाणं	8.788	यः पूर्वः सोऽन्यभावान्	4.45	येषां घर्मेऽभिचातं	4.884
मुर्खाणां बन्धनानि	3.834	यत्किञ्चिद् ग्राह्मवस्तु	₹.१७४	यः शब्दो हत्प्रदेशे	8,897	ये सत्त्वा लोकघाती	₹.१९९
मुच्छौ निद्रां प्रविष्टं	8.226	यत्पानं दीक्षितानां	8.208	या काचिद वज्जपूजां	3,879	योगाचारं हि पूर्वति	4.86
मुलाद वेदाद्धरहच	1.59	यत्पुण्यं भूमिदाने	₹.१२९	यागाद्यर्थं प्रवृत्ति	7.200	योगिन्यस्ताः समस्ता	7,44
मुळाप्ति गतो यो	3.101	यत्साध्यं साधकः स	28.8	या चन्द्रस्यर्तभक्तिः	4, 234	योगिन्यस्ताः समस्ताः	3,852
मुळापत्तिः सुतानां	3.207	यद् बाह्ये लक्षमेकं	1.17	याजी वृक्षारिरन्याः	3.848	योगिन्यो भोगकायः	8.98
मुलापत्तेर्विशृद्धि	3.808	यद् बीजं ह्यादिकाद्योः	3.888	या नाड्योऽपानमध्ये	4.848	योगिन्यो विष्टिच्द्रा	2.225
मले तर्जन्यनामा	3.866	यद्यत् कार्योपयोग्यं	₹.१७४	या नैर्गण्याल्पभावा	4.00	योगिन्यो विष्टिरुद्रा	2.170
मुले पृथ्वयम्ब वामे	7,80	यद्यात्मा सर्वगः स्याद्	2.868	या बिन्दोः श्वेतवारा	8.270	योगिन्योऽष्टाष्टका याः	2.880
मुले यन्त्रस्य मानं	2.279	यद्यासीत् सक्रियश्च	7,868	या भर्तः सुक्ष्मरूपा	4.288	योगीन्द्रोऽत्राप्तयोगः	7.90
मृत्यं व्याघि व्रणं वै	2.220	यन्त्रस्यारोपणं स्या	₹.₹२	या भुक्ता तीत्रमुच्छाँ	4.220	योगी प्राणातिपातं	X-\$48
मृत्मन्दे श्रीकपाले	3.77	यन्त्रं न्यग्रोधपत्रे	3.78	यामे रुद्रो वराही	8.40	योगी सिंहो मृगोऽस्वो	3.8%0
मेरुस्येऽन्य जुलावं	4.864	यन्त्रे तैळं गृहीत्वा	7.184	याम्ये नैऋंत्यकोणे	₹.१६	यो द्रव्यं पापहेतो	4.200
मेरोदिक्वष्टभेदै	4.34	यन्नोक्तं तन्त्रमध्ये	3,40	यारावालाश्च हंहाः	₹.६७	योनौ स्पर्शे च भर्ता	₹.₹८७
मेरोर्डीपानि दिक्ष	4.234	यन्मानं यत्र खण्डे	2.50	यार्कस्था साष्टभेदा	4.233	यो यत् कर्मावकुर्यात्	4.780
मेरोर्विस्तारमूष्ट्यं	2.36	यन्मानं लोकघातोः	4.59	या लोपात्ताम्रपत्र	4,700		३.९३ २.१०२
मेरोः पृष्ठेषु दिक्षु	1.77	यष्ट्यञ्जल्या त्रिहस्तं	159.5	याविचत्तस्य भाव	7.207	यो यन्मध्ये प्रविष्टो	4.208
मेषः कर्की तुला वै	1.202	यस्तत्त्वं पुदुगलास्यं	₹.१७३	याबद्धित्तग्रंहाणां	५१३६		X.X0
मेपादी वारनाट्यां	2,30	यस्माच्छूद्रादिजातिः	7.840	यावनम्लेच्छेन्द्रदुष्टः	१.१६०		7.9
मेषे युग्मे कुळीरे	4.888	यस्माच्छैले जनानां	2.44	यावारालास्तथा स्यु	8.60		2.99
मैत्रीत्यागाच्चतुर्यी	4.656 3.802	यस्मिन् खण्डे स चक्री	2.73	या शक्तिनीभिमध्याद	7.870	रक्तं इवेतं च वस्त्रं	3.84
मैत्रीस्थाने न दानं	¥.71°	यस्मिन् जाग्राद्यवस्था	4,803	या शक्तिनीभिमध्याद्	8.898	रक्ताबजे दैवतीनां	¥.704
मोक्षे मुस्पर्शनं वै	१.१३२	यस्मिन् लग्ने स्थितोऽकी	7.36	याऽसृक्पानं करोति	4.69	रक्षां कुर्वन्ति येन	8.808
मौनी चोत्मत्तरूपो			7.857	युक्तं चर्सं प्रभक्तो	9.30	रक्षां कृत्वा जिनास्यं	3.15
मौर्छि पट्टं च हारं	3,858	यस्मिन् वेदः स्वयम्भू	4.808	युग्मं सन्यावसन्यं	4.88	रङ्गं कमंद्रये स्या	9.197
मीछि बुद्धप्रमेदै	₹.११७	यस्मिन् वै जातिरूपं		युग्मं स्यात् कायवर्ज	8.90	रङ्गाकारी च जम्भी	2.136
मीछी रत्नेशबुद्धो	\$2,5 4 20V	यस्मिन् सूच्यप्रभूमा	٧,२२°	युद्धे म्लेच्छान् हनन् यः	2.258	रज्जुक्या वातयन्त्रं	3.7.6
म्लेच्छानां नाशहेवो	4.788 8.886	यस्मिन् स्थाने सुपुष्पं	7.54	युद्धेऽवैवित्तिकः स्याद्	5.884	रलं शङ्खश्च काचो	
	(.(40	यस्मिहिचत्तप्रतोषो	F.8	23			

305	विमा	त्रभायां			कालचक्रतन्त्रदलो	कार्घानुक्रमणी	१७९
	¥.34	लाद्यास्त्रिशत्स्वरा ये	8.03	वर्णानामुत्तमाङ्गात्	8.290	वामे नाडी शशास्त्री	
रत्नादर्शश्च तहत् रत्नामात् शर्कराम्भो	2.24	लाद्या हान्ताः क्रमेणा	¥. ₹03	वर्णाध्यहानि भर्त्	4.38	वामे प्राणप्रचारः	5.85
रलोभात् शकरान्याः रत्नेशस्याब्जधारी	8,90	लावः पारावतोऽन्यो	7.240	वर्णी यस्य प्रमाणं		वामे बाहुप्रसारो	४.१०९ ३.१७९
रत्नेशो दःखितानां	4.90	लास्यायोगेन लास्या	5.293	वर्णो वै शुद्धकायः	4.878	वामे मार्गे स्थितो यो	2.40
रत्नेशो मामको च	8.04	लिप्ता स्यान्मेषलग्ने	2.53	वर्ति प्राणप्रवाहे	8.205	वामे वीणा च ढक्का	25.8
रत्नेशो यावदस्या	30.9	लोकाक्यग्न्यक्षिसं स ्या	8.808	वर्षार्धं वर्षमेकं	8.233	वामे शुक्तिश्च खट्वा	8.76
रत्नैहॅमेन्द्पृष्पैः	₹.८४	लोकालोकं समात्रा	4.6	वर्षा मासाश्च पक्षा	2.200	वामे शुक्तिहच पाशः	8.84
रन्त्राख्या वारनाड्यो	4.843	छोमत्व ग्रक्तमांसं	4.48	वर्षार्घे स्वेतकुष्ठं	7.884	वामे श्रीश्वेतदीसा	8,98
रन्ध्रास्ये वह्निसंस्ये	8.49	लोमाद्याश्चन्द्रमोऽन्ताः	4.54	वर्षाहः पञ्चगुण्यं	8 60	वामे हस्ते सुपूर्णो	₹09.€
रम्भाचित्रादिभस्मा	4.7%	लोमा युका च शुक्रं	2.38	वर्षेषु द्वादशेषु	7.38	वामे ह्रस्वस्वराणां	8.808
रागात सा पाण्डराख्या	4.97	लोहानां द्रावणार्यं	4.788	वश्याकृष्टिश्च मन्त्री	8.229	वायव्यां श्रीप्रदीपा	8.44
रागाद् द्वेषादिदोषः	4.886	वक्त्रं पीठार्घभागैः	4.863	वश्याद्यं भूतजाभिः	8.838	वायव्ये सपंदष्टे	8.54
रागाऽरागान्तगाद्या	3.175	वज्रस्त्रीणां भगे तत्	4.84	वश्ये घ्यानं सरागं	8.836	वायोबींजे छलाटे	8.894
राजानी द्वी फणीन्द्री	4.84	वज्रस्पर्शं समन्ता	५ १०६	वस्त्रं पीयूपपात्रं	8.68	वायोः स्पर्शास्यमेकं	4.83
रामः कृष्णस्तवाष्टी	2.243	वजस्यान्योग्यवज्ञो	8.89	वस्त्रं वै मेखला च	8.86	वायौ चाकृष्य वायोः	५.१६५
राशावेके स्थितोऽर्कः	1.50	वज्रं कर्ती कुठारः	¥.7¥	विह्नस्थौ तोयमूर्षिन	४.६३	वायी ब्रह्मा च विद्युद्	8.58
राहुस्वन्द्रस्य सीम्यो	2.888	वर्ज खड्गश्च बाणः	₹.१५६	वह्निः सं चायनान्ते	१.३५	वाय्वन्ताद् वायुसीम्नः	19.5
राहोर्मासस्य भृक्तिः	₹.७६	वर्षां घण्टांच मुद्रां	3.68	वह्निः पड्रन्झरुद्रा	2.00	वाय्वन्तान्मेरुसीम्नो	2.20
राहोर्मासस्य भोगान	8.99	वर्ज बाणस्च पद्मं	8.76	वह्नी खेळघी विमिश्रं	१.२७	वाय्वोः संघट्टमच्ये	4.870
राही काले स्थितानां	1.175	बच्चं मध्येऽसि पुर्वे	7.840	वह्नी वायुः प्रचण्डा	४.६२	वारच्छेदेन लब्धा	7.48
राह्नग्नी चन्द्रसूर्यी	4.734	बज्रं वा सर्वकर्म	7.17	वाक्पादी पाणिपायू	4.77	वारा हुत्पद्मपत्रे	२.३७ ३.५८
रिकातिच्यां घनिष्ठा	1.95	वज्रं शब्दश्च वायु	2,33	वाग्जाते मण्डले वै	8.40	बारुण्ये वायुकोणे	8.68
रुद्ष्या चक्रेषु नाही	7.67	वष्त्राक्षी क्पकर्त्री	\$. १३३	वातघ्नं क्षारमम्बु	२.१२६	वारो योगस्तियर्वे	8.787
रुद्रं स्कन्दं गणेन्द्रं	2.252	बचाह्या अष्ट्रपादा	8.88	वातेनोद्ध्यमानो	7.235	वासप्रासार्यमिष्टां	- 5'888
रुद्रः कालरच विष्णु	8.58	वजाद्यैः पञ्चरत्नैः	3,89	वातै: संघट्टमानै	4.64	वासं कृत्वा सुपुष्पैः	4.58
रुद्रः पूर्वापराघं	2.878	वज्ञाञ्जाभ्यां प्रविश्य	4.68	वाद्येच्छा भूपणेच्छा	8,88	विज्ञानं चन्द्रमध्ये	7.84
रूपं वा मण्डलं वा	¥. २३३	वजाभा वजगात्रा	8.38	वामन्ये बालभावो	7.6	विज्ञानं चन्द्रसूर्या	37.78
रूपं शब्दो रसो गन्ध	4.280	वजाभिनीष्टबृद्धि	8.888	वामं पर्यंष्ट्रमूर्विन	३.१७२	विज्ञानं ज्ञानमिश्रं	4.250
रूपाद्यक्यादिपट्कं	2.48	वजालङ्कारदेहं	3.80	वामाङ्गे स्वेतदीप्ति	8.4	विज्ञानं ज्ञानमेकी	2.220
रौद्री चाब्धिगंणेन्द्रो	4.23	वज्रालङ्कारयुक्तो	8.48	वामाङ्गे हस्वबीजं	8.808	विज्ञानं तद्द्वितीये	8.700
रौद्री छक्ष्मयुत्तरेखे	8.76	वच्ची जातिः कुमारी	8.899	वामे खेटं कपालं	8.34	विज्ञानं नाणुरूपं	8.888
लब्धः सप्तामिषेको	¥.?	वर्जराजातः कुमारा	8.105	वामे खेटाहिहस्ता	8.30	विज्ञानं नामरूपं विज्ञानं मन्यमानः	₹.१७₹
लब्बा सत्त्वप्रसङ्ग	7.50	वर्ष्णरेष्यात्ममुद्राः वर्ष्णैर्वंक्त्रप्रभेदो	4.22	वामे घण्टा च पद्यं	8.80	विज्ञानं शून्यधातु	4.290
छं याः स्तम्मोऽतिवीर्या	8.60	वज्रीः स्वाहानुयुक्तैः	8.500	वामे चन्द्रप्रवेशो	19.5	विज्ञान शून्यवापु	4.735
छाङ्गूलाग्रं च सर्व	¥. १३६	वर्गाणां कादिषण्णां	4,4	वामे जिह्वारसः स्याद्	8.40	विकासं शुक्ररक	8.200
छाचा यास्त्वष्टमात्रा	358.8	वर्गेम्यः सस्वरेभ्यः	23.5	यामे तच्छीतरीलं	1.43	Idealia Ameri	
		11.4.054544.	100				

160	विमलप्रभायां			कालचक्रतन्त्रदलोकाधांनुक्रमणी	
	३.१६२ वेदाद्रन्ध्रेन्दुसंख्या	2.59			141
विण्मूत्रं रक्तमांसं	५.८२ वेदान्ते गुह्यमेतत्	8.703	शान्ती घ्यानं च शान्त	४.१३८ शून्यावेशैरदृश्यो	3.90
विष्मूत्रं रक्तमांसं	1.01	8.88	शान्तो पृष्टो च शुक्लं	४.१५६ शून्या स्यात् शून्य ईशौ	4.40
विष्मूत्रं शुक्ररक्तं	Carter Donnelle	8.864	शान्त्यादी गर्भपादाः	४.१८७ शून्येऽकारे विसर्गे	3,48
विद्यादेव्यादिवुद्धा	7. (0)	₹.३३	शास्ता दिव्यादिकुम्भाः	४.९७ शून्ये ज्ञानं विमिश्रं	7,3
विद्युदण्डानुरूपा	4.65	7.850	शिष्टं कार्यं यथारे	१.३४ शून्ये घूमादिमार्ग	3.206
विद्येत्यच्यात्मविद्या	7,79 Salant a ratio	7.844	शिष्टं कार्यं यथारे	१.४६ जून्ये मन्वप्रवेद्याः	4.242
विद्वेषः स्तोभनेच्छा	8.84	4.704	क्षिणः पच्ट्याहता ये	१.३९ शूल्ये वै घमंघातौ	¥.200
बिद्वेषोच्चाटनं वै	8.541	7.887	ज्ञिष्याणां मागंदाता	३.२ शून्ये शून्यं विश्वदं	1,31
विद्वेपोच्चाटने च	0,117	7.767	शीझे पूर्वा मुखाः स्यु-	१.८४ शून्यैश्चानाहताद्यैः	4.20
विप्रोऽनन्तो हिमाभः	४.१८१ वश बन्ध च ताप वश्म व ताप वश्म व ताप	¥. ₹₹	शुक्रस्येष्वविधचन्द्रा	१.७४ शूरः संप्रामभूमी	8.240
बिल्बोन्मत्तार्धहस्ताः	2 7 9	8.70	शुक्रस्यवं बुघस्या	१,७४ शेपाण्यत्रोपचिह्ना	8.03
विश्वाब्जे सूर्यमृष्टिन	४.१३५ वैगर्भाद्याश्च मित्ती	22.8	शुक्रस्यय युवरमा शक्रं मत्रं च मज्जा	३.१५५ शेवा वच्चासनस्याः	8,50
विष्कम्भी वज्जपाणि	४.८६ वैगर्भो नीलदण्डः		शुक्र मून य नवना शक्रे तोयेऽर्थलाभो	१ १०६ शैलत्वेंकेरच मिश्रः	1.80
विष्टीनां शुक्छपक्षे	१.१२१ वैशाखं मण्डलं वै	8.808	शुक्र तायज्यलामा हाक्लं त्रैलोक्यनायं	५.२४६ शैलास्वैवियुवेगै	१.१६२
विष्ठा मुत्रं सरक्तं	३.१६० वैशास्यां पौणिमायां	4.246	शुक्ल त्रलावयाय शुद्धाद्धर्मस्ततोऽन्यः	५.५७ शैलेन्द्विनप्रभक्ता	7.35
विस्तारस्तत्त्रिभागं	५.१८१ वैशारद्यानि सत्या	५.२३८	घुदादमस्तताज्यः शुद्धाव्यं द्रव्यहीनं	२ १४३ शोब्यः शेषोऽत्र चारो	1.83
विश्वत्येकं सहस्रं	१२३ वैश्यायास्तद्वदेव	₹.१५९	शुद्धान्त्र प्रव्यक्षान श्रद्धावासादिके यद	५.९२ शोध्याः सार्घा नवारे	1.85
विंशत्येकं हि छक्षं	वोवकाणाकाशशक्तुः	4.779	शुद्धावासायक यप् शृद्धि कृत्वा निषेकैः	५२२३ श्रीकण्ठी नूपुरोङ्घ्रौ	4.31
विंशत्येकाधिकं य	व्याघ्रास्या व्वतदोसा	8.94	शुद्धि कृत्वा नियमः शद्धे सत्त्वे प्रदोषाद्	३.१०३ थीषण्टा शुक्तिहस्ता	35,8
विद्यात्येके सहस्रे	शक्तमतुद्दिनक	1.78	शुद्ध सरव प्रयापाय शद्धे संश्रुद्धतीया	५.१३ श्रीचक्रं चैत्यगर्मे	3.883
विशहर्षोध्वंमद्रा	शक्रस्य ब्रह्मणा व	३.६५	शुद्ध संशुद्धताया शद्धे सौह्यं प्रयात्य	४.१०८ श्रीचक्रा दण्डहस्ता	٧,३७
	३.११८ शक्रे यक्षेऽन्निकोणे	2.270	शुद्ध तास्य प्रयास	३.३२ श्रीचन्द्राच्चन्द्रकान्ते	4.48
बीर्येः पित्ताम्बुपूर्य	३.१५३ शस्त्राद्ये हेमपात्रे	₹.१०६	शुद्ध स्थान सुपूर्ण शद्धः कर्कोटकोऽब्जः	४.१८१ श्रीतारा पौण्डरीकः	4.748
वीणोपाङ्गंच काण्डं	३.१५८ शास्त्री गण्डी मणिश्च	4.88	शूद्रः ककाटकाञ्चाः शुन्यं गुल्लाति शब्दं	२.२० श्रीतारा स्पर्शवचा	¥.60
वृत्तं कुण्डं त्रिभागं	२.१५६ शह्वो गण्डी मणिश्च	₹,१०३		१.२ श्रीप्रज्ञास्पर्शनीयं	7.885
वृत्तं वा वेदकोणं	३.७१ शत्रुः सिहो गजेन्द्रो	₹.२०३	शून्यं ज्ञानं च बिन्दुं	५,४३ श्रीभंद्रा पियनी वै	3.8%0
वृत्तं साधंद्विहस्तं	१.१३० शब्दस्यार्थोऽप्यभिन्न	7.844	शून्यं पञ्चप्रकार ० २-	४.६ श्रीभद्रो धर्मधातु	Se.8
वृत्ता इयष्टाङ्गुलोक्ता	^{३.१३} शब्दंकर्णेरसंच	२.७९	शून्यं मावादिहीनं	४.२०० श्रीभूतानीन्द्रियाणि	¥.41
वृद्धत्वे मृत्युदुःखं	२.१२ शब्दास्या कांस्यकारी	₹,१३०	शून्यं यास्यन्ति येना	१.१०३ श्रीमत्योङ्कारजाते	8.848
वृद्धि तस्य प्रकुर्याद्	५.११८ शब्दादी यच्च चित्तं	4.88	शून्यं वाय्वग्नितोयान् 	४.८ श्रीमन्त्रं वुद्धविम्ब	3.59
बृढेर्भूयोऽवकाशं	२.५ घव्दाद्यं कर्मपटकं	7.23	शून्यं वाय्वग्नितोयान्	१.८८ श्रीमन्त्रेणाभिमन्त्र्य	8.64
वृद्धेः सं चावकाशं	२.४ बल्यं साङ्गारशृङ्गं	3,₹	शून्यं शून्यं खवेदं	१ // श्रीमाताऽनाहतास्या	2.240.
वृद्धोऽपि त्वं कुमारः	५.२५६ शान्तः क्रूरः सरागो	3.₹	शून्यं शून्यं खनागाः	• • । श्रीमान राजन् कलाप	¥.7°
वेदर्तुंस्वासधेपा	५.१३३ शान्ताबादी सितास्यं	4.888	शून्याकारः सुमेर <u>ु</u>	, १०० श्रीमान् व वज्जपाणः	4.747
वेदः कर्ता(र्त्रा)दिमेदः	३.१ घान्ताविन्द्रकराशी	4.8%0	शून्याकारोऽपि दृश्यः	० ८५ श्रामान् अधिभवश	8.30
वेदः साङ्गो न विद्या	२.९६ शान्तिः पृष्टिश्च राजन्	8.838	भूत्याकाशेन्दुगुण्यं	२.४० श्रीमीया कीर्तिलक्ष्म्यी	and the state of t
वेदाग्नी भूतचन्द्री	१.३७ शान्ते भावेऽभरत्वं	9.93	बू न्याद्यं पञ्चतत्त्वं		

868	विमल	प्रभायां			कालचक्रतन्त्रस्लोकार्बानुक्रमणी	163
श्रीमेरोरष्टविश्	4.20	षट्त्रिंशत् कालदूत्यो	4.837	वण्मासैश्चायनं स्याद्	२.७७ सन्धिस्तीये गुरी स्यान्	
श्रीमेरोः सर्वंदिध	1.70	षट्त्रिशत्सार्धमासाः	₹ 0. 3	वण्मासैश्चायनाङ्गं	१.९९ सन्ध्याभेदाच्चतुर्घा	2.204
श्रीवच्छी कालशुद्धधा	8.203	पट्त्रिशद् घातुभेदाः	₹.१५४	वण्मासै: स्पर्शहीनं	५.११७ सन्मेत्री मूखंबावयात्	38.5
श्रीवची चित्तवचं	8.89	पर्तिषद्भिः सहस्र	87.5	यष्टघंशं ग्रासमादी	५.२१७ सप्तत्यब्दां जरां वै	203.7
श्रीवची विश्वभद्रो	8.64	पट्तिंशद्भिः सहस्र	7.60	षष्टघा हीनं तथैव	१.१६८ सप्तत्रियत् प्रतीच्छाः	K. K.É
श्रीवची श्रीजनेता	3.876	षट्त्रिशद् योगतन्त्रे	4.88	षष्ठी धर्मोदयो वै	३.१५६ सप्तविशत्तद्वां	2.202
श्रीवच्चः सर्वदिक्ष्	₹.२३	षट्त्रिश्ववर्णभेदैः	3.834	सविलन्ने पूर्तिगन्धे	४.६५ सताप्यष्टाञ्जमार्गः(गान्)	4.239
श्रीशदाद धर्मकायो	8.900	षटपञ्चाब्ध्यग्निभोगैः	2.885	सक्षीराः शान्तिपृष्टघोः	३.१४ सप्ताब्ब्यद्रिवारा	2.243
श्रीस्वेता चन्द्रलेखा	₹,₹₹	षटशुन्यै श्चित्तव ज्वं	4.8	संक्रान्तिः पद्मभेदैः	२.३९ सप्ताहं कोष्टशुद्धि	4.778
श्रस्वा यस्तन्त्रराजे	8.770	षद्श्वासैरेकलिसा	2.00	संक्रान्तिर्मासपक्षा	२.२ सम्बुदैबीं घिसत्त्वै	8.4
धत्वा सीचन्द्रवाक्यं	7.1	षट्पट्कोष्ठैः क्रमेण	7.47	संस्याकोष्ठैश्चतुर्भि	२.१४६ संभूतिमंन्त्रयोने	2.4
श्रोत्रं वजस्वभावं	7.77	षट्पट्शैलाम्बरैकं	2.68	संख्या सार्घे दिने	१-६६ संभृति: सप्तमस्य	8.848
श्रोत्राच्छब्दादयोऽन्ये	₹.₹0	पट्पट्स्तम्भैर्भुजैः	1.24×	संग्रामे भग्नशत्रः	१.१२८ सम्भोगे शुद्धवह्ने	4.84
योत्रे घाणे च नेत्रे	4.848	पटसन्धी कीलनार्थं	8.843	संप्रामे शत्रनाशः	१.१०६ संभोग रूपिणां वै	4.50
रिलप्टाङ्गुष्टौ कनिष्टे	₹.१७६	पट्सु प्राणप्रवेशो	7,50	संग्रामे सैन्यनाशो	३,३४ सम्यक् चाष्टाङ्गमार्गो	3.846
इलेष्मध्नं छागदुग्धं	2.875	पड्देब्यो घात्मिर्वे	8.908	संग्राह्मास्ता नखान्ताः	२.२६ सम्यग्यानाधिरूढो	2.846
इवानास्याद्यं इमधानं	3.844	पडद्वाविशद दिनर्तः	8.89	संघस्तिस्मिन् स्थिती यः	४.२१४ सम्यग्ज्ञाने विभङ्गे	38.5
स्वानास्या पूर्वचक्र <u>े</u>	8.58	पड्भागं देहमध्ये	228.€	संघः काषायघारी	४.२१३ सम्यग्लमीश्च सर्वे	2.220
श्वानास्या शुकरास्या	8.39	पड्मिश्चाक्षी हिणीभी	8.868	सच्चारेणावधेषं	१.३३ सर्पालं व्याघ्रचर्म	8.838
इवाऽस्वो गोहस्तिमेषा	3.888	पड्वर्गा ह्रस्वदीर्घ	₹. ₹₹	सत्त्वानां चित्स्वभावं	५.९९ सर्वज्ञज्ञानभूमे	8.838
इवासच्छेदावसाने	4.288	षड्वर्गाः कृटरूपा	₹.६७	सत्त्वानां पाकहेतो	५.९३ सर्वज्ञं ज्ञानकार्य	1.5
इवासान लिप्तांइच नाडी	7.55	षडवर्गाः सार्कमात्रा	19.5	सत्त्वानां पापचित्तं	५.७२ सर्वसमन् कर्मभागे	3.6
श्वासोच्छ्वासान वहन्ति	4.230	पड्विद्याः पट्च वच्चाः	8.9₹	सत्त्वानां मृत्युदं यत्	५.२३४ सर्वस्मिन् कामदानं	४.२०६ ४,२३४
स्वेतं रक्तं च पीतं	3.68	षड्वेदी शून्यशून्यं	3,32	सत्त्वानां मोक्षहेतो	५.२६१ सर्वस्मिन् तन्त्रराजे	4.783
स्वेतः शान्ति च पृष्टि	8.830	पण्नाड्यश्चक्ररोघा	7.46	सत्वानां मोक्षहेतोः	५,२५८ सर्वस्मिस्तन्त्रराजे	4.205
स्वेता कृष्णा च रक्ता	₹.४₹	वण्नाड्यश्चक्ररोघात	7. 40	सत्त्वानां वञ्चनेच्छा	४.४६ सर्वं गृह्मिति गन्धं	8.885
क्वेताङ्गं यस्य सर्वं	7.843	पण्मात्राभेदभिन्ना	4.888	सत्त्वा बढा न बुद	५.६६ सर्वं चन्द्रद्रवामं	4.53A
व्वेतानां तारकार्ये	4.709	पण्मार्गाः पञ्चतत्त्वं	7.853	सत्वा यन्मोचयन्ति	५.१९९ सर्वं प्रत्येककोष्ठे	4, १२२
स्वेतामा योगिनीनां	3.85	पण्मासर्त्त्रयेण	4.838	सत्त्वा यां भक्षयन्ति	५.२२७ सर्वीकारं प्रयात्य	4.99
स्वेता शान्ती च पृष्टी	3.6	पण्नासं भक्षयेद् यः	4.776	सत्त्वा रागेण येन	५.१९९ सर्वीकारं ह्यगम्यं	4.49
स्वेतो विन्दुर्ललाटे	8.808	पण्मासं भूमिगर्भे	4,777	सत्यं पञ्चोदयानां	१.९७ सर्वाकाराः समन्ता	3.250
पट्कोणं चाष्टकोणं	₹.१०	पण्मासाम्यासयोगा		सद्देश्या कर्ममुद्रा	४ २०७ सर्वाङ्गुल्यग्रदृष्टघा	3,360
पट्कोषा हादिभिः स्युः	4.9	पण्नासाम्यासयोगा	7.888	सहेश्या द्वादशाब्दा	४.२०७ सर्वाङ्गुल्यप्रसारात्	3.870
पट्चक्रीः पट्कुलैश्चा	4.800	पण्मासीदिव्यदेहो	¥?\$9.8	सन्तार्थं क्षुत्पिपासां	२.११७ सर्वालक्कारयुक्ती	4.709
पट्चन्द्राम्भोधिसंस्या	8.68	पण्मासद्वेयकमासैः	२.१३२	सन्तापं क्षत्पिपासां	४.१९३ सर्वासामीयघीनां	₹.१२३
पट्तिथ्यष्टाद्रिचन्द्रां	1.883	पण्मासिर्मासमासः पण्मासीर्मासमक्तं	4.730	सन्वयाङ्गे पूर्वपृष्ठे	५.४४ सर्वीहारः मुखाय	
	1.111	प-गावमावमुक्त	1.63	man H Yala		

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

tor	विमलप्रभायां			कालचक्रतन्त्रक्लोकार्घानुक्रमणी	164
	४,३६ सावित्री पदानेत्रा	8.42	सेकार्यं भूपरोक्षां	वे.६ स्पर्वाकृष्टी च बन्धे	
सर्वाः शून्यर्तुलोकाः	५.१३७ सिक्तः सप्ताभिषेकै	₹.१००	सेवा पञ्चामृताद्ये	४.११३ स्पर्धो रूपं रसास्यं	8.84
सर्वाः सन्ध्याष्ट्रयामाः	५,२३७ सि(शि) स्वम्बु छागमूत्रं	7.181	सेवा पञ्चामृतानां	४.१२७ स्पर्शीपञ्चीरभावे	4.89
सर्वे ते पिण्डिताः स्यु	१.६१ सितं रूपं घरण्यां	2.78	सेवायामादियोगो	४.१२० स्फाटिक्यादार्घपात्रे	4.22°
सर्वेषां चोत्तरस्यो	C	8.859	सेवार्थं हस्तमुद्रा	३.२०० स्फाटिक्यमीक्तिकेवा	₹.₹°
सर्वेषां नामपूर्वं	0 4	₹.१०७	सेव्याऽऽदौ कर्ममुद्रा	५.७३ स्रष्टारं शक्तिरूपं	4.784
सर्वेषां वज्जनिह्नं		₹.१९७	सोऽयं श्रीमञ्जुवज्रः	१.१५८ स्वक्षेत्रे संस्थितानां	2.42
सर्वेकैकं सहस्रं		30.€	सोऽयं संभोगकायः	५.८९ स्वच्छः कायोऽणुनष्टः	4.258
सब्यापी सारितश्च		4.908	सोऽहं यो मर्त्यलोके	५.२४९ स्वच्छाऽत्राता निरुद्धाः	4.200
सब्यार्घे सम्भलास्ये	१.१५१ सिद्धोऽसिद्धो रसश्च	8.848	सौह्यं बीजाप्रपाते	४.१२२ स्वच्छायामातपस्या	2.888
सब्ये जम्भदच मानी	४.५८ सिद्धोऽहं ते सुवीर	3.885	सीस्यात् सीस्यानुरक्तः	५.५७ स्वच्छायामातपस्या	¥.884
सब्ये दण्डाक्षसूत्रं	३'७५ सिंहश्चैकान्तवासी		सीगन्धैः श्वेतपुष्पैः	३.२० स्वस्यानाद् राशिचकं	7.53
सब्ये श्रीपादुका चा	५.१७९ सिंहे कुम्भे प्रविष्टे	2.44	सौम्योऽपि त्वं सुबच्ची	५.२५६ स्वस्थाने यास्यसि त्वं	2.240
सब्ये श्रीमुद्गरो वै	४,२३ सुप्तेनोत्ताननाभि	5.868	सौम्यो मन्त्री च शीघ्रे	१.८४ स्वस्थाने छीकिकान् वै	3.707
सब्यैराकुञ्चितैश्च	४.६८ सुम्भो रौद्रेक्षणाघो	8.49	सौरेः षड् भृतसंख्या	१.७२ स्वाधिष्ठानं करोति	8.784
सस्तम्भं मोहनं च	४.१८७ सूहमैरष्टाभिरेको	59.9	स्कन्धवलेशादहि: स्यात्	३.१०३ हंकारोष्णीपचक्री	8.09
संयोगादिन्द्रकान्तेः	२.१७० सूक्मोच्छवासधुनाडी	8.58	स्कन्धं नीलं च रक्तं	४.१२ हत्वा म्लेच्छांश्च युद्धे	1.77
संशुद्धोऽनुस्मृतेः स्याद्	४.११९ सूची चाप्यक्षसूत्रं	8.38	स्कन्धाधारो हि भौतो	२.१९ हस्वा म्लेच्छांश्च युद्धे	1.158
संसारात् कर्ममुक्तो	२.१७६ सूची वा मुद्गरो वा	₹.१५७	स्कन्धैर्घात्विन्द्रियश्च	२.९५ हत्वा सप्तार्घिलमा	3.96
संसाराज्ञिगमः स्या	२.१७४ सूतस्याग्ने रिपुत्वं	8.778	स्तम्भं शान्ति च वश्यं	४.१२९ इत्वाह: खेल्टनोनं	2,40
संसारे मानुषत्वं	२.१३ सूत्रंबळंरजोवै	₹.₹₹	स्तम्भः कालान्तको	४.९० इत्तव्यं म्लेच्छवन्दं	१.१६३
संसारे सीस्यदःखं	२.८८ सूत्रं वै ब्रह्मसूत्राद्	₹,₹	स्तम्भाकृष्टौ च मोहे	४.१८९ व्यनं वा वी चतव्कं	7.844
संस्कारोऽमोघसिद्धि	४.१०४ सूत्रं हस्ताष्टकं स्याद्	9.89	स्तम्भाघो द्वारसन्घौ	२.४७ व्यवस्था वज्रवस्थे	₹.१७५
सा ज्ञानाचिः प्रवृद्धा	५.११३ सूत्राघं मूच्नि वज्यं	7.39	स्तम्भाघोऽप्यष्टनागा	४.३८ वस्ताव्यां बन्दियत्वा	4.744
सार्यं हुँकारपट्कं	३.८२ सूत्रैः पड्रन्ध्रभागै	4.79	स्तम्भाघो मण्डलं च	२.४१ ज्यानामां वाकमदा	३.१८२
साधारं चक्रमानं	१.१४४ सूर्य त्वं वा नरेन्द्र	4.248	स्तम्भान् वच्चावलीं वै	4.4	4.713
साधूनां शान्तरूपः	१.१५९ सूर्यश्चर्काणि	3.9.5	स्तम्भाः प्राकारवेद्याः	- Andreastr	2.23
साध्यस्यैवं समस्तं		8.806	स्तम्भे शान्तौ च वश्ये	िएक पर दिया रेजन	7.10
साध्यं कृत्वा समस्तं	***************************************	2.223	स्यानं शून्यं च कालं	व्यक्ती वाली चतरक	4.235
सामान्या मध्यमा च	***	2,00	स्थित्वा क्रुण्डान्तराले	•.१११	2.5
	५.२३० सूर्याऽहः सूर्यचारे	2.99	स्यूला खर्वा,दृढाङ्गी	र १०१०	33.6
सार्घं मासं द्विनाडी सार्घान्तो निर्गमोब्जं	१.७९ मूर्ये नन्दोदयानां	£x.5	स्यूला वर्गाक्षराणि	२.८७ हिस्याद्यालोऽन्तसर्वा ३.४९ हिस्याद्यालोऽन्तसर्वा	¥.63
साधान्ता ानगमाञ्ज सार्घाकै पञ्चविद्यद्	५.१८२ सूर्ये भौमो विशोण्यो	4.240	स्यूला व्याघि करोति	२.८६ हिंसाऽसत्यं परस्त्री	£9.5
	५.१७४ सूर्योऽहं ब्रह्मवंशे		स्यूलास्यूलेन्द्रियेषु	३.८७ होनलादुत्तमलात्	4.7%
सार्घा वै चक्रनाडी	२.१०५ सेकं शुद्धक्रमेण	४.२२३	स्नातो गन्धानुलिप्तो	४.१६५ होनं वह्नपनंशेले	1.61
सार्थेकद्वित्रि(वि)भागा	१.१४४ सेकाद्यं पूर्णिमायां	3.79	स्पर्शं खड्गं रसेन्द्रा		
सार्धेकेन त्रिरेखं	३.३८ सेकान्ते श्रीघटानां	3.701	5X		

165	विमलप्र	मायां	
ही हु हुल च पुष्ठे	8.68	हेमाभा वेदवक्त्रा	8.84
हंकारो विश्ववर्णे	3.40	हेमेऽकं कान्तलोहं	9.838
हुंकारान्तोऽभिचा रे	3.60	होमं कृत्वा क्रमेणा	₹,७७
हंकारो ज्ञानवीजं	₹.6₹	होमान्ते वापिकादी	₹.११६
हुंकारो धर्मचक्र	3.9.5	होःकाराद्यन्तगर्भे	8.40
हुन्चक्रं सार्धसूर्ये	4.808	ह्याद्याः क्षाद्यप्टसंस्याः	₹₹₹
हुच्छकात् पूर्ववक्त्रात्	4.43	ह्रस्वानां शुक्लपक्षे	1.100
हत्कण्ठे नाभिपयो	7.38	हस्वोकारोऽमिताभो	8.08
हृत्पद्मे श्रीललाटे	7.03	ह्रस्वो दीघंश्च सब्ये	₹. ₹ €
हृद्दृष्ट्या भावितात्मा	7.896	ह्रस्त्रो दीर्घः प्लुतश्चा	4.788
हेमं ताम्रेण तुल्यं	8.709	हस्बी दीर्घी हकारी	3.53
हेमं तीक्षणाहिताम्	4.228	ह्रीं चन्द्रादित्यगर्भे	8.280

ग्रन्थ-ग्रन्थकार-मत-मतान्तरानुक्रमणी

अधर्वण (वेद)	iii. ₹४	क्षेत्रपाल	
अद्भुत	iii. १४९	गाया	ii. १३१ i. २६९; ii. ३८,१५३
अभिसमयालङ्कारकारिका	i, ¥₹	गायोदान	
अर्थवादी	iii. ८७	गारुड (तन्त्र)	iii. १४९ ii. २१७,२३९; iii. ३४
अल्पतन्त्र (राज)	i. ३,२९; iii. १५३	गीता	i. 40,747; III. 48
आगम	i. 30, 207; ii. 79	गीताधर्म	i. 740
आचार्यंपरीक्षा	ii. ४,५,६,१४६	गीतावचन	iii. 94
आदर्शज्ञानस्तव	1. 35,30	गुह्मतन्त्र	ii. 49
आदिबद्ध (तन्त्रराज)	i. 29,866,890;	गुह्यसमाज	ii. २०७,२१२
ii. 7,8,80,800,8	40,738; iii. 2,6,84,	गेय	i. २२१; iii. १४९
१३९,१५०,१५१		चक्रसंबर (प्रजातन्त्र)	111. 23,77,205,200,742
आप्तागम	i. २६४; iii. ७१	चतुष्पीठ	iii, १२४
ईश्वरमत	i. २५७,२६२	चार्वाकमत	1, 346
उत्मत्तरूप	ii. १३१	छन्द	i. २२१
	c; ii. २५१; iii. ६,७,९	जातक	iii. १४९
ऊ र्घ्यं स्रोतस्	1. १९६	ज्योतिष	i. २२१; iii. ९४
ऋग्वेद	iii av	डाकिनीजालसंवर	iii. १८,२२
एककूलतन्त्र	iii. ७	तथा (च) i. १८.	44,64; ii. १40,848,788;
कापाली	ii, १३१		iii. १३
	ii. ११८	तथागत	i. १६,४३; ii. ४
कामशास्त्र कालचक (लघुतन्त्र) i.		तथागतमत	i. २५६
कालवक (ल्युवन्त्र) ग.	, १३,३३,१४८,१५३,१५४	तथागवनव	i. ६६, २५६
कालोत्तर	1, 194	त्रथा	36,280,240,248; iii. \$8,
	iii, ११८	तत्त्रराज 1. २१,	98,94,96-68,83,64,80,86
काश्मीरमत	iii. १४७,१४८	१०३,१५०,	010 944
कुलसूत्र	iii. १४५	₹0₹,₹ 4 0,	* 34'35'28'88'88'80'40'838!
कुलागम	i. §§	तन्त्रान्तर	. 34,36,38,04,00,47,00
कोश (मत)	ii. १३०,१३१	ii. १७,९३,	१५0; iii. ३४ iii. १५०,१५१
कौल	iii, 3¥	तन्त्रोत्तर	i. 80,843
कीलतन्त्र	i. १८५; iii. १५१	तकंशास्त्र	i, 248,244
क्रियातन्त्र	ii. १३१	तायि(जि) (मत)	i. १९५,२६६२७०; iii. ११८
क्षपणक	i. २५९,२६०,२७०	तोषिक	iii. १६,१८,२२,२९,१०१
क्षपणकमत	i. 759	विचक्रसंवर	111' \$4'40'41'42'
क्षपणकसिद्धान्त			

166	विमलप्रभायां	
धर्म (धास्त्र) धर्मसंग्रह	i. २२१ ब्राह्मणवचन (याजवस्त्रय स्मृति) iii. ५५,१२७ भगवान् i. १५,१९,२४,५२,५४; ii. २,	8

11, (40	
नामसंगीति i. १२,१९,३३,३६-३९,५२,५६,५८;	भद्रचरी
ii. ९३,१००,१०१,१०५,१०८,१०९,१८०,	भस्मेश्वर
२०९,२५१; iii. ३२,४७,४८,५४,६१,६३,	भारत
६५,६८,६९,७१,७३-८०,८९,१००,१०२,१४९	भूततन्त्र
निरुक्त i. २२१	मध्यमक
	मध्यमकशास्त्र
परमादिबुद्ध (तन्त्रराज) i. १,३,१२,१९,२१,२२,	मन्त्रनय
३०,३३,३४,३७,३८,४२,४७,५१-५३,८९,	मन्त्रमहायान
१५७,१८८,२५६; ii. २१,४४,९८,१२८,	मन्त्रयान
txc,tx9; iii. t,t04	महाचक्रसंवर
परसिद्धान्त(बादी) i. ९९,१९६	महातन्त्रराज
पारमितानय i. ४१; iii. १००	महामायातन्त्र

पारमितामहायान	i. ¥t
पारमितायान	iii, 48
पिटकत्रय	i. ३१, ४१
पुण्डरीक i. ३,२४,१५	o; ii. १,१४९; iii. १,
१५३-१५५	
पुदुगलवादी	iii. ८७
पुराण i.	४०,२२१; iii. ९४,९५,९७
	i 000. iii 04

प्रज्ञातन्त्र i. १८	; ii, २५१; iii, ७,९,१३,१४,
38,88	
प्रज्ञापारमिता	i. २३; iii. ७७,११९
प्रत्येक (बृद्ध)यान	i. ४१; iii, १४८
प्रमाणशास्त्र	i. २२१,२६१,२७०
बालतन्त्र	i. 740
बोद्ध	i. १.९,११८; ii. ६,१३0,२४४
बौदकोध	i, ६६

	-, 11-
बोद्ध	i. १.9,११८; ii. ६,१३0,२४४
बौदकोध	i. 44
बौद्धदर्शन	ii, ş
बौद्धसिद्धान्त	i. २६६,२६७
ब्रह्म(सिद्धान्त)	i. 60,222
ब्रह्मसत	i. २५६,२६२
ब्रह्मींव (महाभारत	i, 70

ब्राह्मणवचन (याइ	ावल्क्य स्मृति) i. २७
भगवान् i. १५,	, १९, २४, ५२, ५४; li. २,४५,९०;
iii. २४,७१	1,64,94,94,99,900
भद्रचरी	iii. १ १ ९
भस्मेश्वर	iii. ६७
भारत	i. २२१; iii. ९४,९५
भुततन्त्र	iii. ३४
मध्यमक	i. २७०; iii. ४६
मध्यमकद्यास्त्र	ii. २१२
मन्त्रनय	i. ४१,५४; iii. ₹४,१००
मन्त्रमहायान	i. ¥ŧ
मन्त्रयान	i. ५३,५४; iii. ५४,७६
महाचक्रसंवर	iii. १६,१९
महातन्त्रराज	i. 30

मन्त्रमहायान	i. 88
मन्त्रयान	i. ५३,५४; iii. ५४,७६
महाचक्रसंवर	iii. १६,१९
महातन्त्रराज	i. ₹o
महामायातन्त्र	ii. २१४
महालक्षाभिधान (तन्त्र)	iii. १३,३२
महासांघिक	iii. ३५
माष्यमिक	i. २६७; iii. ३४,८७
मानवधर्म	iii. ९७
मायाजाल (नामसंगीति)	i. १८,३२,३३,३६,५३,
46, 47, 864-860	iii. १३,१५,२९
मार्कण्डेयकाव्य	i. २२१
मूछतन्त्र (राज) i. ३,	१२,१६,२४,२६,२९,३२,

नाकंण्डेयकाव्य ः	i. २२१
पूछतन्त्र (राज)	i. ₹,१२,१६,२४,२६,२९,₹२,
34,39,83	,40,42,66,96,266; ii. 2,
10, 27, 25	,88,84,80,86,40,00,68,
90,208,2	44,200,209,708,704,700,
२१६,२२८,	२३३-२३५,२३७,२४१,२४२;
	, २२, ६१, ६२, ८०, ९१, १००, १०२
200,280	
मूलसूत्र	iii. १४९

मूलसूत्र	iii. १४६
मैत्रेयनाथ	iii. ६७
म्लेच्छधमं	i. २८; ii. ६; iii. ९६
यजु(बेंद)	iii. ₹¥
यथा	i. ९३; ii. ४,५,६
यमनक (सिद्धान्त)	i. 226

ग्रन्य-प्रन्यकार-मत-मतान्तरानुक्रमणी	ान्तरानकमणी	ग्रन्य-ग्रन्यकार-मत-मतान
--------------------------------------	-------------	--------------------------

225 iii. 94

			101
वनक (सिद्धान्त)		वेदवचन	iii, qq
गितन्त्र i. १८,१८५,१८		वेदान्त	ii. २४५
१४,३१,३२,३४,१५०,		वेदान्त (ऋग्वेद)	
गेगाचार i. २६५,		वैपुल्य	ii. ७५
गोगानुविद्ध (तन्त्र) i.			iii. १४९
गोगिनीतन्त्र i. १८,१८५-		वैभाषिक (मत)	i. ५४,२६५,२६६;
३१,३२,४४,५१,८७,१	40	iii. ३४,८६,८७,१	16
योगिनीसंचार 	iii. १९	वैश्वानरकाव्य	i. २२१
रसशास्त्र	iii. १३४	वैष्णवमत	i. २५७,२६२
रामायण	i. २२१; iii. ९४	व्याकरण	i. १२४,२२१; iii. १४९
रोमक (सिद्धान्त)	i. ७७,११८	व्यास (महर्षि)	iii. 94,90
लक्षाभिधान	i. ३४,३५,३७	व्यासकाव्य	i. २२१
लघुतन्त्र i. ३,१२,२१,	२,२४,३०,३२,५१,८९,	शब्दवादी	i. 75¥
१40,१८८; ii. 1	(,74,47,47,	शिवमत	i. 742
iii. १३,१०१		शुक (शुक्र)	i. २६१,२६२
लप्तकेश	ii. १३१	शैव	ii. १३0
लोकसामान्यमत	i. १००	श्रावकनय	iii. १००
लोकायतमत	i. २५९,२६८		iii. ९९
लोकेश्वरस्तीत्र	i. २३	श्रावकयान	i. 48; iii. 846
छौकिकमत	i. 99	स्वेताम्बर ii. ६	
वचन i. २११,२३५,२५०	, २६५; il. ५,५९,१२६,	पद्चक्रमहासंबर iii. र	23
१६४,१८६,२३०			- 21. 21. 2 0/ 3/10: iii
वच्चपञ्जर	i. १४७		२२-३५,३७,१८४-१८७; iii.
वज्रपाणि	i. १८; iii. १३	७,१३,१४,२९,३	18,47,48,800
वज्रयान	iii. ९७	समाज (उपायतन्त्र)	ii. २५१
वाल्मीकिकाव्य	i. २२१		ायाजाल) 1. ५३
वर्गाता	iii. ९७		iii. १४८
विज्ञानवाद (वादी) i	. 89,755,750; iii. 60	सर्वज्ञघमं	iii. ९५
विमलप्रभा	1. (भर्वास्तिवाद	iii, ३५
विष्णुधर्म	iii. ३١	र्व वामवेद	iii, ३४
77	iii. १४°	माम्मितीय	iii, ३५
3.08.99-29 i 719-39 i	4,243,772,744,740	' सिदान्त	i. 40,238
२६१;ii. १,२४५,२	४६; 111. ३८,९७		ii. १३१; iii. ३४,९६
	i. ७६,१०°	र सितपट	i. २२१; iii. १४९
वेद (ऐतरेय ब्राह्मण)	iii. 88,8°		
बेदघर्म			

१९० सुत्रान्त

सूर्यं(सिद्धान्त)

सेकोहेश i. २२३,२२८

i. 66 iii. 34 i. 36, 338 i. 348,58

सौगत ii. २४६ स्याहा सौगालिक i. २६५,२६६; iii. ८६,८७ हेवज

ii. \; iii. \\$, 6, 77, 700

संकेत-सूची

अ.	अ ष्टाच्यायी	भ. गी.	भगवदगीता
झ. स.	अभिसमयालंकारकारिका	म. त.	महामायातस्य
ब्र. सा. (अष्ट.) अष्टसाहस्त्रिका	म. शा.	मञ्चमकशास्त्र
आ.	आगम	म. भा. व.	महाभारतवनपर्वं
आ. प.	आचार्यपरोक्षा	म. स्मृ.	मनुस्मृति
था. बु.	आदिवुद्धतन्त्र	मा. फा.	माध्यमिककारिका
妆.	ऋग्वेद	मा. जा.	मायाजालतन्त्र
ऐ. ब्रा	ऐतरेयब्राह्मण	मू. त.	मूलतन्त्र
	कालचक्रगर्भ	मू. सू.	मूलसूत्र
कां. ग.		या. स्मृ.	याञ्चवल्वयस्मृति
का. त.	कालचक्रतन्त्र	यो. अ.	योगानुविद्धतन्त्र
कालो.	कालोत्तर	यो. त.	योगिनीतन्त्र
कु. सू.	कुलसूत्र	यो. सं.	योगिनीसंचारतन्त्र
कु. त.	कृष्णयमारितन्त्र	ਲ. अ.	लक्षाभिधानतन्त्र
ग. सू.	गण्डन्यूहसूत्र	ਲ. ਰ.	लघुतन्त्र
गु. त.	गुह्यसमाजतन्त्र	हो. स्तो.	छोके श्वरस्तोत्र
गु. प.	गुरुपञ्चाशिका	ৰি. ম.	विमलप्रभा
च. सं.	चक्रसंवरतन्त्र	व्या. म. भा.	
चा. व्या.	चान्द्रव्याकरण	चि. सू.	शिवसूत्र
त. रा.	तन्त्रराज	सां. का.	सांस्यकारिका
त. सं.	तत्त्वसंग्रह	सि. की.	सिद्धान्तकौमुदी
नाः सं-	नामसंगीति	सु. सं	सुभाषितसंप्रह
	परमादिबुद्धतन्त्र	सेको-	सेकोहेश
प. बु.	प्रज्ञापारमिता	हे. त.	हेवजतन्त्र
प्र. पा-	Railaiciani		

विमलप्रभाधृतवचनानुक्रमणी

स आ सं सः ह हा	iii. २१, मू. त.	अद्वयोऽद्वयवादी	i. ५६, ना. सं. ६.६
अइडण्	i १२३.१२४,१३५, शि. सू.	अधरचन्द्रामृतं	i. २२३, सेको. ८६
अकमयसत् (द)	i. ३२ i. ३१	अधिष्ठानपदं	ii. १९७, १९८
अकर्ष, एक		अघो गिरिखशैला	i. ८८, मृ. त.
अकल: कलना ii.	१०९; ііі. ७९, ना. सं. १०.३	अध्यात्मपटले	i. १५७, वि. प्र.
अकलः कलना	ii. २०५, मृ. त.	अनक्षरो मन्त्र	i. ५३, ना. सं. १०.१
अकः सवर्णे दीर्घः	i. १२४, झं.६.१.१०१	अनन्तविजयः	i. २६, मृ. त.
अकारः सर्ववर्णा i	. ३७,५३; ii. २५१; iii. ६१,	अनन्तरच महीपालः	i. २५, मृ. त.
	ना. सं. ५.१	अनादिनिघनः	і. २, वि. प्र.
अकारो मुखं सर्वं	iii. ८, हे. त. १.२.१	अनादिनिघनो	і, ३२, का. ग.
अकुशलाभिगमनं	i, १६, मृ. त.	अनादिनिष्प्रपञ्चा	i. ५६, ना. सं. ६५
अकुहं ≥ कश्च ये	ii. २३३, मू. त.	अनिमित्तज्ञानसंशुद्धं	і. १, वि. प्र.
अकोऽिक इत्येव	i, १२४, सि. की. १३८ सु.	अनुत्पन्नेषु धर्मेषु	iii. १०१, मू. त.
अकोऽिक दीर्घः	i. १२४, चा. व्या. ५.१.१०६	अनुत्रादधर्मा	iii.७४, ना. सं. ८.४०
अक्षजा घीरनाकारा	i. २६६; iii. ११८	अनुस्मृतिः समाधिदच	ii. २०७, गृ. त. १८.१४०
अक्षरज्ञानसंभूतो	iii, १०१, मू. त.	अनेन रक्षितेनैव	ii. १०७, आ. बु.
अक्षरोद्भवकायस्य	iii. ६१, मू. त.	अनेन सर्वसम्बद्धैः	ii. १०७, आ. बु.
अक्षरोद्भवकायं -	і. २, वि. प्र.	अन्यत्तद्रुपम्	iii. १५२
अगुणेष्वपि या	i. ४२, वि. प्र.	अन्यथा करण	i. ८९,मू . त.
अग्निस्पर्शात्सूतः	i. ६, वि. प्र.	अन्यथा लघुकरणा	i. ८९, मृ. त.
अजयोऽनुपमो	iii. ७८, ना. सं. ८.२१	अन्यव्यञ्जन	іі. २३३, मू. त.
अतः:परतरं नास्ति	ii. १०७, झा. बु.	अन्यस्थानं दिगा	ii. २३५, मू. त.
अस्य पुग्गलो	iii, ८६	अन्यस्मिन् विषये	і, Ч, वि. प्र.
अत्यन्तखानपानै	і. ७, वि. प्र.	अन्यस्मै दत्तमिदं	і. ७, वि. प्र.
अय	iii. १०२, ना. सं. ३.१	अन्या जातिः क्रिया	ii. २३५, मृ. त.
अय प्रत्यहं	i. १६	अन्या सा वेदना	iii, १५२
अय बीजाक्षरं	iii, २१ मू. त.	अन्या सा संज्ञा	iii. १५२
अय रागामि	11, १०७, आ. व	अन्ये ते संस्कारा	iii. १५२
अध वळधरः	iii. ७१, १०२, ना. सं १.१	अन्येपामन्यत	i. 754
अय शाक्यमुनि	iii, १०२, ना. सं. २.१	अपराघें स्थिते	i. १०२, आ.
अय स वज	i. ३३, गु. त.	अपराव स्थित अपराव्दादर्थमपि	
अद्भयमव(च)छ	і. ८, Га. я.	अप्रतिष्ठितनिर्वाणो	i. ५, वि. प्र.
	-, .q. a.	जमाता छतानवाणी	iii. ४८,६५, ना. सं. ८.२

		जनागुक्रमणा	
अप्रमाणं हि यो	iii. ९ ७		143
अभावे भावना	ii. १५३, गु. त२३	अस्मिन् तन्त्रे मया	i. ११, वि. प्र.
अभिज्ञा योगिनां	ii, १४२	अस्य तारा महा	i. २४, मृ. त.
अभिषेकाग्रलब्धो	ii. ४,५ गु. प. २	अस्य श्रीकालचक्रस्य	i. ११, वि. प्र.
अभवन्तिह सम्बद्धाः	іі. १७७, मृ. त.	अस्य श्रीप्राप्तये	i. c, fa. x.
अभेद्यं सर्वतो	ііі. ६२, मृ. त.	अहस्द्वारपरित्यका	11, २३८, म. त.
अभेद्या सुक्षमरूपा	iii. १०७, हे. त. १.१.१६	अहङ्कारविनाशार्थं	11. ४४, वि. प्र.
अभेद्यो वज्जयोगो	і. ३२, का. ग.	अहो महानाश्चर्य	1, 72
अमावास्याप्रसादेन	iii. ९९	आकाशं ढी निरोधी च आकाशं भोक्तु	i. २६६
अयनादी प्रत्यहं	і. ८८, मृ. त.	जाकारा माक्तु	ii. २३५, मू. त.
अयनेन शोघयेत	і. ८९, मृ. त.	आकुर्वन् सिंहनादं आगमप्रत्ययादादी	і. ८, वि. प्र.
अयाज्ञा(च्ञा)पतितं	і. १६, मू. त.	जागमत्रत्ययादादा जाचार्यस्य गुणा	ii. १४८, वि. प्र.
अरजो विरजो	i. ५८,७८, ना. सं. ८.२२	आसायस्य गुणा आज्ञासंचारिको	ii, y
अरणो महारणइच	і. ८, वि. प्र.	आज्ञासिद्धानि चत्वारि	iii, ९१
अरपचनाय ते	iii. १०२, ना. सं. ४३	आणवः शास्भवो	iii. ९७
अरूपित्वं तु शेषा	iii, २८		iii. ९२, मू त.
अरूपो रूपवानग्रधो	iii.४८,६५, ना सं. ८ ३	आदिकादिसमा	४७, ७८, ना. सं. १०.१३
अर्ककीर्तिः सुभद्र	і. २५, मू. त.		.iii. ६१, मू. त
अर्जनं हन्त्कामा	iii. ९ ९	आदित्यो हि यथा आदिवद्धं सदा	ii. १५0
अर्बदं मन्मनीक्षेत्र	ііі, २∘, मृ. त.	आदिबुद्धे सदा आदिबुद्धे महातन्त्रे	i. ३३, प. बु. ii. २३४, मू. त.
अवुद मुन्मुनादात्र अहंन क्षीणास्त्रवो	ii. १००, ना. सं. ६.११	आदी कल्याणं	i. १५, मू. त.
		आदौ सुशिक्षितां	ii. २०४, मृ. त.
अवशेषदिनान्यत्र	i, ८८, मू. त.	आदा सुर्यायाया आद्याब्दात् पट्शता	iii. ९६, का. त. १.२६
अविद्याद्यनुलोमेन	iii. २१, मू. त.	आद्याब्दात् पट्शतः आद्याब्दात् पट्शतैः	i. २४, मृ. त.
अवैवर्तिको ह्यना	ii. १००, ना. सं. ६.१०	आधेयश्च मया	i. ¥°, म. त.
अशुद्धे सूर्यभोगे	i. ८९, मू. त.	आध्यश्च भया आप्यायनं ततो	ii. २३४, मृ. त.
अशेषक्लेशनाशाय	iii. ७३, ना. सं. १.१५	आप्यायन तता आबोधिमण्डपर्यन्तं	ii. १०६, वि. प्र.
अशेषरूपसन्दर्शी	iii. ४६, ना. सं. ९.२४		ii. ₹6
अशेषव च्यपर्य हुो	iii. ७४, ना. सं. ८.३८	आयान्तु बुद्धाः पितरः	i, ९, वि. प्र.
	५६; 'ii. १०५ ना. सं. ६.४	भारके(क्षै) रक्ष भारण्ये दृष्टचित्ताः	i. ९, वि. प्र.
अष्टस्वेवकपा	iii. २१, मू. त.		і, ९, वि. प्र.
असदप्रतिघं रूप	i, 744	आह्ढोऽम्भोधि	іі. १५६, मृ. त.
अस्ति तिच्चत्तं	i. २३,२१७; iii. ७७,९४,	आर्याष्टाङ्गिक आलिकालिसमा	і. ६, वि. प्र.
अ. सा. पृ० ३			ii. ६, तु. प. ५
अस्ति नास्ति व्यति	i. ४३,४४, मृ. त.	आसनदानसमु आह्रियते सुमार्ग	i. ७, वि. प्र.
अस्ति परमाणु	iii, č\$	आःकारेणाष्ट्रदलं	ii. २०४, मृ. त.
अस्त्यत्र सेक	ii. १४८, वि. प्र.	आ-कारवाहरू	

Courtesy: Shri Tarun Dwivedi, Surviving Son of Late Vraj Vallabh Dwivediji (15 Jul 1926 - 17 Feb 2012)

ti.			
इको यणचि	i. 44, १२४, 81. 4.8 60	ऋषीणां पाचना	i. २४, मृ. त.
इव्यशास्य ताल	іі. २३३, मू. त.	ऋषीणां सर्वसत्त्वा	iii. १, वि. प्र.
इति भावो न भावः	ii. १५३, मु. त.	एओङ्	i. १२३, १२४, शि. सू.
इत्यपि (इति पि) सो	i. ₹१	एकक्षणप्रसूतानां	1. 68
इत्योपच्यो महासिद्धि	ii. ९०, मू. त.	एकक्षणाभिसम्बुद्धं	i. ₹₹, प. बु.
इन्द्रः पशुरासीत्	1, 750	एकक्षणाभिसम्बुद्धः	i. xx
इमां वण्मन्त्र	iii. १०२, ना. सं. ४.१	एकमूर्तिस्त्रयो देवा	i. 240
इष्टा भार्या स्व	ii. cv	एक रजाग्रि रजो	iii. ११९, ग. सू. ५६.३
इष्टार्यसाधकः	iii. १०२, ना. सं. ९.१	एकवर्गेऽपि ये	ii. २३४, मू. त.
इह मयास्मिन काल	i. 70	एकविंशत्सहस्रै	iii. १०२, मू. त.
इह यत्र मण्डलादि	ii. १०, मृ. त.	एकस्य प्राणिनो	і. १६, मू. त.
इहात्यिपुदगलो	i. २६६	एकं पदं वज्ञ	і. ३, वि. प्र.
इहैवायमितरो जात	ii. 64、液. 20.2年.9	एकं पश्यन्त्यनेकं	iii. ६६, का. त. ५ ९६
ईप्सिता लौकिकी	іі. २३५, मृ. त.	एकः शब्दः सुप्र i. ४०	, व्या. म. भा. ६.१.८४
उक्तकमंविधानेन	1. ८९, मृ. त.	एकात्मानं समन्तात्	iii. ७४, का. त. ५.६१
उक्त: समयसत्त्वो	i. २, वि. प्र.	एकाद्यानन्तवक्त्रो	iii. ८, का त. ४.१३३
उत्तः स्वार्थपरे	i. ४२, वि. प्र.	एकानेकस्वभावेन	i. २६७, सु. सं. ३८९
उत्तमा ज्ज्ञानसंभार	iii. ९१, मृ. त.	एकारे मध्यवंकारः	i, ३५, मू. त.
उत्पत्तिक्रममक्तं	i, ६, वि. प्र.	एकार्थानेकभाषा	iii. ६६, का त. ५९६
उत्पत्तिक्रममुक्त	ii. २१२, गू. त. १८.३३	एको नैकोऽपि	iii. १०३, का. त. ५.२४८
उत्पातकमणका उत्पन्नक्रमयोग	11, ५(५, जु. त. १८.५२ i. ६, वि. प्र.	एकोऽसावक्षरं	i. १०, वि. प्र.
उद्दं मञ्जूबन्नेण	ii. ४५, वि. प्र.	एतच्छीकालचक	ii. १५७, मू. त.
उपहोपं विदिक्ष	iii. २२, म त.	एते वैरोचनाद्याः	iii. १०१, का. त. ५.१०३
उपपौठानि चत्वारि		ए-रहस्ये खघातौ	i. ३९, मू. त.
उपपोठानि चत्वारि उपमेलापकस्तेष	ііі. २०, मृ. त.	एवमनभिसंस्कार	i. १, वि. प्र.
उपमछापकस्तपु उपवेश्म विरजाः	ііі. २१, मू. त.	एवं क्षेत्रादिकं सर्वं	iii, २२, मू. त.
उपवरम ।वरजाः उपरम्हानमेवीयनं	ііі. २१, मू. त.	एवं चित्तं चतुर्घा	iii. ७९, का. त. ५.१२६
चपुरमशानमवाक्त चपुरू ~ पाइच ये	iii. २१, मू. त.	एवं त्रिपक्षसंशुद्धं	іі. ४५, म. त.
	ü. २३३, मू. त.	एवं प्रत्ययितै:	ii. १४८, वि. प्र.
उभयोस्तु परम	і. ч, а. я.	एवं भवति विनाशि	i. c, fa. y.
उष्णीपकुलं महत्	iii. १०२, ना. सं. ३.२		i. ३१,३२,३४,३५,३८, ¶.
ऊर्घ्यं सूर्यं रजो	i. २२३, सेको ८६	एवं मया श्रुतम्	
ऋखक्	i. १२३,१२४,१३५, शि. सू.	त., मा. जा., र	
ऋकोऽणो रखी	ां. १२४, चा. व्या. १.१.१५	एवं मया श्रुता	i. २४, मू त.
ऋटुरपाक्च	ii. २३३, मू. त.	एवं मे शुद्धधर्मस्य	i, २५, मू. त.
ऋदिपादैर्धना	ii, १५७, मू. त.	एवं यो वज्रयोगो	i. ३, वि. प्र.

			294
एवं विज्ञानयोगेन	iii. १०७, मृ. त.	कामहर्षं च जालाह्यं	
एवं पड्लक्षजापेन	11. २३४. मृ. त.	कामा क्षोमं	iii. २०, मृ. त.
एवं सकमलं	11. २०५, मृ. त.	कामा रूपास्त्वरूपा	ii. १०८, का. त. ३.१२२
एवं सकुलिशं	ii. २०४, मूत.	कायमण्डलकं त्यक्त्वा	iii. ८५, का. त. ५.५८
एवं सर्वं परिज्ञाय	i. ८९, मृत.	कायवष्त्रघरः श्रीमान्	ii. үч, मू. त.
एवं संब्यापि पीठं	iii, १४७, मृ. सृ.	कायवज्रवरो ब्रह्मा	ii, १९७ ii, १००
एवं सा वायुनाकान्ता	ii. २३४, मृ. त.	कायवाक्चित्त	i. ३३,३५, प. बु, मू. त.
एवं स्त्रीसङ्गहीनो	iii. ८१, का त. ४.२२४	कायवाक्चित्तरागात्मा	
ऐंबीच्	i. १२३, ज्ञि. सू.	कायवाक्चित्तरागांद्व	i. ३२, का. ग.
ऐन्द्री लक्ष्मी च	іі. ९0, म. त.	कायवाक्चित्तरागे	ii. २०४, मू. त.
बोड्डियाणं चतुर्यं	iii. २०, मू. त.	कायवाक्चित्तवज्ञा	i. ३२,३५, का. ग , मू. त. ii. २
ॐ बुद्धाय नमः	ii. ८१-८३, मूत.	कायबाङ्मानसं	
औ षच्यादिवलेन	i. ६, वि. प्र.	कायस्य शत्रवो	iii, 78,99
कक्षाक्षिश्रोत्रनासा	i. १०, वि. प्र.	कायं वाकप्रव्या	ii. २३३, मू. त.
कचटपतितत्येते	іі. २३४, मू. त.	कायावेशेन योगी	ii. १८६, गु. त., पृ ११ iii. ९०, का. त ३,८६
कथेइ जीवो होइ	1. 759	कायोन्द्रयं भगश्चित्तं	ाा. ५०, का. त २,८५
कदलीगभंतुल्येष	iii. ¥6	कायो बिन्दि	
कदलीफलमिव	і. ৬, বি. স.	कारणं लक्षणं नास्ति	न्दुां. ३५, मृ. त. iii. १, वि. प्र.
कपय	i. १३५, शि. सू.	कारण लक्षण नास्त कालचक्रमिति	ii. १४९, वि. ज,
कप्पय् कपोला पक्षकाश्चैव	ii. १५६, मृ. त.		iii. १, वि. प्र.
कम्पो निष्कम्पता	11. (14, 7. 4.	कालचक्राभिधानेन	
	i. ८, वि. प्र.	कालं विश्वादि	iii. ६१, का त. ५.२४५ ii. १५०
करुणाशून्यतामूर्तिः		कालः सृजिति भूतानि	
कर्तव्यमतिसुगुप्तं	i. ৬, বি. স	ं कालोऽक्षरमुख	i. ११, वि. प्र.
कर्तारो ये स्मृतीनां	iii. १००, का.त. ५.८६	कालो हि भगवान्	ii. १५0
कर्मक्लेशाच्च दुःखं	iii, ९८	काषायदशनाधस्य	ii. ९९
कमंमुद्रापरित्यक्तं	i. २, वि. प्र-	काष्ट्रियाग्न वरा	i. ६, वि. प्र-
कर्ममुद्राप्रसङ्गेऽपि	ii. १०७, आ. बु.	कि ताम सप्रदाय	ii. २३५, मू. त.
कर्ममुद्रां परित्यज्य	iii. ८०, मू. त	कुण्डमप्टविघं	ii. ७०, वि. प्र.
कर्मास्य पड्विघं	ii. २३४, मू. त.	कुमारीसुरतं यथा	iii, cc
कलापे निर्मतो	iii. १०३, त. रा.		ii. ९३, का. त. ३.९७
कलिङ्गं हरिकेलं	iii. २०, मू. त.	कुर्यात् प्राणातिपातं	ί, १६, मृ. त.
कल्किगोत्रे भविष्यन्ति	i. २५, मू. त	कुलग्रह विनाशाया	ii. २०७; iii. १०६, मू. त.,
कल्की द्वादशमः सूर्यो	i. २५, मू. त		11. (00)
काकारात् कारणे	i. ११, वि. प्र	च. सं.	iii, १४७, F. A.
काकारो कारणे	i. १७, वि. प्र	. ककारः कामरूपे	iii. १५५, वि. प्र
काञ्ची कोञ्जूणकं	iii. २०, मू. त		
नाञ्चा काञ्कणक			

	ii, ९८, वि. प्र.	गृहीत्वा पुरतो भर्तुः	ii. १०७, सा. बु.
कृत्वा प्रतिष्ठां	८, iii. ६८; ना. सं ६.१३	गोदावरी च रामेशं	iii. २०, मृ. त.
Total Control	ii. २३४, मू त	ग्रन्थद्वादशसाहस्री	і. ३, वि. प्र.
कोटिजापं ततः	iii. २०, मू. त.	ग्रहभोगो यदा	i. ८९, मृ. त,
कोशलं लाहदेशं कोकत्यप्राणिघाताच	i, ४, वि. प्र.	ग्राह्मग्राहकवैधु र्या	i. २६६, सु. सं. ३८९
कोकृत्यप्राणिधाताध कोकृत्यादिवधादि	i. ४, वि. प्र.	ग्राह्मग्राहकसं स् यान	і. २, वि. प्र.
काकृत्यादिवधाद क्रमद्वयं समाश्रित्य	ii. २१२, गु. त. १८.३३	ग्रीष्मे सूर्याशुतप्तं	i. १०, वि. प्र.
क्रमद्वय समाजित्य क्रव्यादमग्नि प्रहि	ii. ७५, ऋ. १०१६.९	घ झ ढ भ घ घित्येते	ii. २३४, मूत.
क्रियाहीना न सिद्धधन्ति	ii. २३५, मू. त.	घटीपाणीपलक्वासैः	i. ८९, मृ. त.
क्रद्धो नीलाञ्जनाभः	i. ९, वि. प्र.	घढघप्	i. १३५, शि. सू.
क्रुडी बालारणाक्षी	i. ८, वि. प्र·	घनैकसारो	iii. ६९, ना. सं. ६.२०
•	i. ३७, ना. सं. ७.१	घोषो घोषवतां	iii. १०२, ना. सं. ७.१०
क्रोघराट् पण्मुखो	iii. १०२, मृ. त	ङ ल म न नित्येते	ii. २३४. मृ. त.
क्षणेः पूर्णेमंहाराज	i. ५, वि. प्र.	चकाराच्चल	і. ११,१७, वि. प्र.
क्षरति प्रज्ञासङ्गे	iii. ९४	चक्रनाड्यो रवे	i. ८९, मू. त.
क्षीरसमुद्रमयने		चक्रं स्वच्छं सम	iii. १०१, का. त. ५.१०१
क्षेमप्राप्तोऽभय	ii. १००, ना. सं. ६.११	चक्री बच्ची स्वदेहे	iii. ९७, का. त. २.४८
खगर्भो मञ्जुघोपश्च	i. २५, मू. त.	चण्डालवेणकाराद्याः	i. १५
खचित्तं सत्यचतू	ii. १५७, मू. त.	चण्डाली ज्वलिता	ii. २०५, मृ. त.
खछठफयचित्येते	ii. २३४, मू. त.	चतस्रो हादयो	ііі. २१, मृ. त.
खवातौ वजसत्त्वो	i. ३५,. मूत.	चत्रस्रं समं	іі. ४५, मृ. त.
स फ छ ठ य च	i. १३५, शि. सू.	चतुर्थश्चैव नेपालं	iii. २०, मृ. त.
खर्त्वंग्न्याहतमे	ί, ८८, मू. त.	चतुर्थं[तत]पुन iii, ५	
गगनोद्भवः स्वयंभूः	ii. १८०; iii. ५४, ६९,	चतुर्घा पीलवं	ііі. २१, म. त.
ना. सं. ६.२०		चतुर्घा बज्जयोगं	iii. १०३, त. रा.
गन्धकक्षपुटे	ii. ९०, मू. त.	चतुर्विन्द्रघरं	i, ३३, प. ब्.
गन्बधूपादिदीपेभिः	i. ३०, मू. त.	चतुर्बह्य विहारै	іі. १५६, म. त.
गन्धर्वनगराकारं	i, २, वि. प्र.	चतुभिः संग्रहैः	ii. १५७, मृ. त.
गन्धो भवति	i. २९, म्. त.	चतुर्भिः स्मृत्युपस्थानै	ii, १५६, मृ. तः
गम्भीरायंत्रकाशा	ii. १४८, वि. प्र.	चतुर्वर्णेककल्केन	i. २४, मृ. त.
गर्भाधानमिदं	i. १५७, वि. प्र.	चतुर्विधमिदमास्यातं	ііі. २१, मृ. त.
गाहेत तेन वहवा	ii. १४८, वि. प्र	चतुर्विधं श्मशानं	ііі, २१, मृ. त.
गुणग्र हणाद्भवेत्	ii. y	चतुहंस्तेऽङ्गलार्घे	іі. ४४, वि. प्र.
गुरुप्रत्ययतः	ii. १४८, वि. प्र.	चतुष्कोटिविनि	i. २६७, सु. सं. ३८९
गुरोराज्ञाप्रसादेन	iii. ९१, ९२, मू. त.	चतुष्कोटिविनि	ііі, ४५, बि. प्र.
गृहावासमदातारः	1, 55	चतुःकायात्मकं	i, २, वि. प्र-
	200 200 200	19.111011	

			550
चतुःषष्टचा ततो	i. ८८, मू. त.	शानक्रेयाद्वयोऽस <u>ौ</u>	i. ३, fa. प्र.
चन्द्रद्वीपं च	iii. २०, मू. त.	ज्ञानजे यैक मृतं	i. १, वि. प्र.
चन्द्रशुक्रकलाभागैः	ii. ४४, वि. प्र.	ज्ञानवान् सद	1. (, 19. A.
चन्द्रस्य मण्डलं	i. ८९, मू. त.	ज्ञानविज्ञानयोगेन	iii. ६९, ना. सं. ६.१६
चन्द्र: सुरेश्वर	i. २५, मू. त.	ज्ञानं तदेव भवति	ііі. १०७, मृ. त.
चन्द्राभावे न	iii. 94	ज्ञानाचिः सुप्रभा	i. ५, वि. प्र. iii. १०२, ना. सं. ८.४२
चरित्रं हरिकेलं	iii. २१, मू. त.	शेयाकारं जगच्चक्रं	i. ११, वि. प्र.
चर्मकारी च	ii, १०५, मू. त.	स म ज	i. १३५, शि. सू.
चया समन्तभद्र	i. २, वि. प्र.	ज म ङ ण न म	i. १३५, શિ. સૂ.
चित्तमण्डलकं	ii. ४५, मू. त.	टीकाकारस्त्वमेवात्र	i २६, मू. त.
चित्तमण्डलं द्वादश	ii. १७, आ. बु.	टोकाऽभिषेकपटले	ii. १, fa. я.
चित्तवच्चघरः	ii. १९८	टीका सचन्द्र	і. ३, а. я.
चित्तवज्रधरो	ii. १००	टीकां सोऽन्धगज	i. 3, fa x.
चित्तवाक्कायवेधेन	iii. ९२, मृ. त.	डाकिनीवज्रपद्मय	i. ३२, यो. અ.
चित्तवाक्कायसंक्षोभ	iii. ९२, मृ. त.	ततो द्रघवन्यादिमागै	іі. ४५, म. त.
चित्तवाक्कायसंशु	ii. १५७, मू त.	ततो भूम्यां सम	i, ३३, प. बु.
चित्तस्याभास	iii. ८२, का. त. ५.११३	तत कालचक्रलघ	і. ३, Га. я.
चित्तं काया	ii . १८६, मृ. त., पृ. ११	तत्पुनस्तथा	iii. ७९, गु. त. १८. ११२
चित्तं तदेव	іі, २३३, मृ. त.	तत्र श्रुतपरिज्ञानै	ii. ४, बा. प.
चित्ताकारास्त्वमी	i. ३५, मृ. त.	तत्रैव दृश्यते	i. ६, वि. प्र.
चित्तावेशेन सर्वं	ііі. ९०, का. त. ३.८९	तत्सब्ये कोण	iii. १४७, मू. सू.
चित्रमात्रं मन्त्र	iii. १००, का. त. ५.२४७	तत्साच् भग	iii. १०२, ना. सं. २.६
	iii. १०१, का. त. ५.१०१	तथता भूतनैरा	iii. ६५,१०२ ना. सं. ८.१
छेदोऽज्ञानस्य		तथाछि(पि) पुग्गलो	i, 48
जगत्प्रदीपो ज्ञानो	iii. ६९, ना. सं. ६.२१	तया लिखितपाठेन	ii. २३५, मू. त.
जननीं सर्वबुद्धानां	i. २, वि. प्र. i. १५		iii. st
जन्मनीहैव बुद्धाः	iii, RC		ii. २३३, मू. त.
जपेन्मन्त्रमभिन्नाङ्गं		-	ii. ४, आ. प.
ज व ग ड द श्	i. १३५, शि. सू.		ii. १०७, जा. बु.
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तं	i. २, वि. प्र.	1-1-	ii. १०५, मू. त.
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ता	iii. १०७, मू. त.		i. ८९, मू. त.
जाता वज्रश्रिया	ii. १७७, मू. त.		i. ३७, ५३; ii. १५१;
जीवस्सअ कम्मस्सअ	i. २६९	200 00 000	ना मं. ५.१
पातकाठन स्ट	i. ८९, मू. त.		1. 4, 19. 4.
ज्ञानकाय नमो ii.	२५१; ііі. ७१,१०२, ना. सं.	तद्वाच्चतामावा तद्वत्तपश्चि(स्वि)	i. ५, वि. त्र.
28.4		तद्वतपारय(१६४)	

35	i, ४, वि. प्र.	तेवां सोऽपि	i, १०, वि. प्र.
तद्भद् योनिस्पर्शा	ii. १३१, वि. प्र.	तेषां स्वपरसिद्धान्तं	i. § §
तनोमि टीकया	i. ३४, यो. अ.	तेऽस्मिन् बुद्धानु	і. ४, वि. प्र.
तन्त्रं योगानुविद्धं	ાં. ३૪, જ. ઍ.	तैश्चिंद्ध काल	iii. ७४, का. त. ५.६०
तन्त्रं छक्षाभिषानं	і. २५, मृ. त.	तोयधातुसमुद्भुता	ii. २३३, मू. त.
तन्त्रेऽस्मिन् ऋषि तन्त्रोक्तविधिना	іі, २३५, म. त.	तोयस्य मेदिनी	ii, २३३, मृ. त.
	iii. ¥	तोये पयो निविष्टं	і. Ч, Га. я.
तन्मच्यपतितस्तद् तन्मच्येऽष्टदलं	ii. २०५, मू. त.	तोरणं प्रोक्तभागैः	ii. ४७, का. त. ३.५५
तयोईन्द्रं समा	ііі. १०३, त. रा∙	त्यक्त्वा तां धनलुब्ध	i, y
तयाद्वन्द्व समा	i, ४, वि. प्र-	त्यक्त्वा मानमनेक	і. ₹, fа. я.
तपंचित्वा पितृन्	i. २७, या. स्मृ. १.१७९	त्यबत्वेमां कर्म	iii. ८०, का. त. ४.१९९
तपायत्वा मितृप्	iii. १००, का. त. २.८९	त्रस्ता विभ्रान्त	ii. १०४, का. त. ३.१२१
वस्मात् सदगुरु	і, ७, वि. प्र.	त्रिकुलं पञ्चकुलं	i. ५०, ii. १२६, मू. त.
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन	іі. २३५, मृ. त.	त्रितत्त्वं नाक्षरं	ііі. ९२, मू. त.
तस्मात् सा लिख्यते	i. ११, वि. प्र.	त्रिद:खद:ख	iii. ६८, ना. सं ८.९
तिहमन काछे	iii. ९६, का. त. १.२६	विश्राकारैस्त्रियानै	ii. १५६, मू. त.
तस्मिन् महाजल	і. ३, वि. प्र.	त्रिभवस्य परि	ii. २०५, मृ. त.
तस्य पुत्रो महा	i, २६, मृ. त.	त्रिभवस्यैकता	ііі. ६२, मृ. त.
तं कालचकं प्रणि	іі. ९८, वि. प्र.	त्रिभवोत्पत्तिक्षया	і. १, वि प्र.
तं योगं वक्त	i. ₹, fa. x.	त्रिमण्डलत्रिवच्या	ii, १, वि, प्र.
तापाच्छेदाच्च i.	६६; iii. ७१, त.सं. ३५८७	त्रिवर्धान्ते मखादा	i. १९६, कालो,
ताराद्या घर्मधात्वन्ता	ii. १०५, मृ. त.	त्रिविधं मण्डलं ज्ञात्वा	ii 4.0
तारिणी भागिनेया	ii. ७९, मृ. त.	त्रिशकुनीत्युपक्षेत्रं	iii. २०, मृ. त.
तावत् ते न वर्श यान्ति	j. ६६	त्रिस्यामध्ये	i. ८७, का. त. १.२९
तावल्छोकिकवादार्थं	ii. १४२	त्रिशद्भागेन छव्धाः	і. ८९, मृ. त.
तिर्धि राहुप्रवेशेन	i. ८९, मृ. त.	त्रैलोक्यविजयं	іі. २१, Га. у.
तिथ्योरमययो	ί. ८९, मृ. त.	त्रैलोवयैककुमारा	ii. १००, ना सं. ८.५
तियंक्ष्रेतासुराणा 	iii. ६५, का. त. ५.९७	दग्धं शिखिनैव	i. ६, fa. я.
तेजोघातुसमुद्भूता	ii. २३३, मृ. त.	दत्तं येन हयादिकं	ii, १, वि. प्र.
तेजों औः शून्य	iii. ७४, का. त. ५.६१		१०५; iii. ७६, ना. सं. ६ .३.
तेन तन्मयतां i, २	५६; iii. ३४, यो.सं. ११.२	दशतत्वपरिज्ञाता	
तन तन प्रकारण	i. २४, मू. त.	दशतत्त्वपरिज्ञानात्	ii. ५, गु. व. ९
तेन सेकेन मे	ii. १०६, वि. प्र.	दशदिवसंस्थिता बुद्धा	ii. ४, १४६, बा. प. ii. १९७
तेनेदं लघुसारायं	і, २५, म. त.	दशदिग्लोकघातुस्थ	
तेऽर्जुनस्य शरीभन्नाः	iii. 99	दशपारमितापूर्णे:	ii. ४,५, गु. प. २
तेषां विशुद्धवावयै:	i. o, fa. x.	दशपारमितापूणः	ii. १५७, मू. त.
		: मिरारामगारामम	ii. १०७, आ. बु.

			195
	, ५; iii. ७६, ना. सं. ६.२	द्रोहात् कुब्बो	i. to, fa. प्र.
	५; iii. ७६, ना. सं. ६.२	द्वात्रिशल्डक्षणघरः	ii. १००, ना. सं. ८.५
	०५; iii. ७६, ना. सं. ६.३	दात्रियल्टसणाङ्गी	i. 22. fa. g.
	६; ii. १०५, ना. सं. ६४	द्वादश कादयो	iii. २१, मृ. त.
दहाते विह्निना	іі. २३४, मू. त.	द्वादधाकारसत्यार्थः	i. ३२, का. त.
दंष्ट्राकरालकञ्जालो	ां. ३७, ना. सं. ७.१	द्वादशाकारसत्यार्थः ॥.	२०९; iii. २०,५८ ना. सं.
दाता हर्ता गुरु	iii. ९१, मू. त.	9.84	
दारिद्रचं स्त्रीवियोगः	і. ८, वि. प्र.	द्वादशाङ्ग निरोधेन	ii. १५६; iii. २१, मृ.त.
दिनमेकं परीक्षयेद	i. ३५,३६	द्वाविष्ठतिभागिकं सूत्रं	ii. १७
दिनमेकं हतं चर्केः	i. ८९, मृ. त.	द्वावेकदच त्रयः	iii. १४, मृ. त.
दिनस्तु भगवान् ii. १५	o, १६३, १६४; iii. ३१,	द्वासप्ततिविधाः	iii. २१, मृ. त.
१०६, १२५		द्वेपः स्त्रीणां सदा	i. १०, वि. प्र.
दिनं सूर्यो रजो	ii. १५०, आ. वु.	द्वचब्बेकाब्ब्येक	ii. ४७, का. त. ३.५४
दिनानि घटिका	i. ८८, मृ. त.	धनुराद्या विलोमेन	ііі. २१, म. त.
दिनैकं हतम्थे	i. ८८, मू. त.	घर्मकायः सकारितः	i. ४३, ज. स. १.१८
दिनैर्नवशतैः	i. ८९, मू- त.	धमंशाहो महा	iii. ४८, ६९, ना. सं. ८.२
दुन्दुभिवोधि	ii. १५७, मू. त.	धार्मिको यत्र भूपालः	ii. 242
दुर्दान्तदमकं	ii. २१, वि. प्र.		ііі. २० म. त.
दुष्टनिर्घातनं	ii. २१, वि. प्र-	धिद्युत्लृ इति	ii. 4, q. q. C
दुष्टैर्म्काग्नि	i. 9, fa. y.	धीरो विनीतो धमश्चिटिचिटिइचैव	iii. ९३
वृक्यते प्रतिसेनेव	iii. १०१, मू. त.		i. ६, वि. प्र-
दृश्यते स्वस्वभावेन	ii, १४९. वि. प्र.	घूमादिनिमित्तेन	iii. १०२, म. त.
देया हेयाश्च देया	i. २११	घूमादोन् भावयित्वा	ii. ४, बा. प.
देवस्वभयपित् (त्रि)	i. १६, मू. तः	न कर्तव्यो गुरू	ii, २, बा. बु.
देशकः कालचक्रस्य	i. ४०, मू. त.		ii. १६३, १६४; iii १२५
देशदेशवशात्	i. २५, मू. त.		11. १६३, १६৪, 111 ()
देशयत् भगवान्	i. 79		iii, २१, मृ. त.
देशयत् भगवान्	i. ३३, गु. त (?)	नगरं महेन्द्रशैलं	iii, <\\ 1, \\
देशयित्वास्त्रिलं	i. ३३, प. बु.	न गुरोः सदृशी	i. २, वि. प्र.
देशशब्देन लब्धे	i. २४, मू- त.		ії. १०५, म. त.
देशसंज्ञाभिरर्थे	і. Ч, fa. я.		iii. ९१, मृ. त.
देहे विश्वस्य मानं	i. ३३, प. बु.		ii. 56, 7. d.
देहेऽस्मिन् घातु	iii. ८४, का. त. २.३	न द्रब्यैः क्रीतं	і ५१, सां. का. ३
दैत्येन्द्राः करमुद्राभि	ii. १३१, वि. प्र.	न प्रकृतिनं	ii. १४९, वि. प्र-
दोवं तत्र न पश्यामि	i. २७	न प्रज्ञा नाप्युवाया	iii. १०१, मृ. त.
द्रोहं क्वंन हि	iii. ९०, का. त. ५.६६	न बोधिर्नेव	

विमलप्रभाषृतवचनानुक्रमणी

201

न भावो नाप्यभावो ii. १	४९, वि. प्र नित्यानन्दातिशान्तं	गा. १४७, मू. सू.
न भावा नाज्यनायाः नमस्ते कालचक्रायः ii. !	१०६, वि. प्र- निमित्तान्ते तु या	ii. २०५, मू. त.
नमस्ते बरदव जाग्र ii. २१३;	iii. १०२, निरावरणधर्मेण	iii, २१, मू. त.
ना. सं. ११.१	निर्गच्छन्ती विशन्ती	
	. १. वि. प्र. निर्ममो निरहङ्कारः	iii. ६३, ना. सं. ६.१२
नमः आकालपकाप	ii. २१५ निर्माणकायवाक्	і. २, वि. प्र.
नरा वच्चधराकारा	iii. ९९ निर्माणसम्भोग	iii, १, वि. प्र.
न छग्नात् सुखवता	ं ९, वि. प्र. निर्मूहाष्ट्रविमोक्षैश्च	ii. १५६, मू. त.
नष्टा भूत्यत्र पृताः	i. २६६ निर्लेषां निर्विकारां	iii. ८०, का. त. ४.१९९
न सन्नवयवी नाम न सन्नासन्न सद i. २१९, २६७,	C C C C C C C C C C C C C C C C C C C	iii. ७८, ना. सं. ८.२०
	४५, वि. प्र. निर्वाणं यान्ति	iii. ९१, का. त. ५.७२
1 4-114 1 4 1	. ८९, मृ. त, निर्विकल्पाः सर्व	iii. ७७, प्र. पा.
	मा. का. १.२ निविकल्पेन चित्तेन	i. १६, मू. त.
1 (40)	. ८९, मृ. त. निर्विकल्पोऽक्षयो	iii. ४७, ६३, ना. सं. ६.१५
THE PARTY OF THE P	. ८९, मू. त. निर्विकल्पो निरा	i. ३९, ना. सं. ८,२३
	५७, वि. प्र. निष्कलः सर्वगो	i. ५८; iii. ७८; ना. सं. ८२१
	Common married married	ii. ४, गु. प. ७
	1. ५५	і. ८, वि. प्र.
	11. 4. 4.20	i. ९०, मृ. त.
	1, 8, 19, N.	
	11. 11. 11.10	
	i, ६६ नेष्टं तदपि घीराणां	ं. १६७, सु. सं. ३८९
	. ४०, मू. त. नैरात्म्यसिंह	i. ५६, ना. सं. ६६
	१४९, वि. प्र. न्यस्तं पदं भुवन	і. ₹, वि. प्र.
	. १६, मू. त. न्यस्तं सदाच्छेदा	і, ३, वि. प्र.
	९१, मृत. पञ्चकपञ्चभिरोमि	i. ७, वि प्र.
	. १६, मू. त. पञ्चतवागतविशुद्धधा	ii. ९३
नामिमध्ये स्थितं iii.	१०७, मू. त. पञ्चबुद्धात्ममुकुट	ii. ९३, ना. सं. ६.१८
	१०७, मू. त. पञ्चरिममयः	ii. २०५, मू. त.
नाभौ गृह्ये च i. २२८	८, सेको. ५३ पञ्चपष्टचा हतं	ί. ८८, मृ. त.
नाम्यब्जे हृदये i. २२८	८, सेको. ५१ पद्म स्युः सिद्धयो	iii. १४७, कु. सू.
नाम्यूच्यं डोम्बिनी ii.	२०५, मू. त. पञ्चाक्षरं महाशुन्य	i. ₹₹, q. बु.
नायकं क्रोधराजानां ii. २	११९, वि. प्र. पञ्चाक्षरं महाशून्यं	iii. १०३, वि. प्र.
		i. ३७, ५३; iii. ३०, ६१,
नासाचे सर्वेषः ii.	२०५, मू. त. १५२, ना. सं	
नासिका तत्प्रदेशे च ii.		. १०.२ i. ३६; ii. १०१, ना. सं. ८.१७
	ग रूपाः अश्वामगः अश्व	. १६, म. १०१, ना. स. ८.१७

			40\$
पञ्चाभिज्ञामहा	ii. १५७, मू. त.	पुत्रदारादिभिः	ii. १०६, वि. प्र.
पञ्चास्यं षण्मुखं	iii. १०७, मृ. त.	पुनरष्यात्मनि	ii. २४८
पटलैः पञ्चभिः पूर्णं	i. २५, मूत.	पुनः पड्भिर्हतं	і. сс, मृ. त.
पद्मपत्रायताक्षं तं	i. २, वि. प्र.	पुनः पष्ट्या हतं	і. СС, मृ. त.
पद्मपत्रायताक्षः	i. ३२, का. ग.	पुराणं मानवो	iii. 90
पद्मबाह्यं तदा	ii. १०७, आ. बु.	पुरुषं प्रकृतिष्वेवं	i. ३३, प. बु.
वद्मे बच्चं प्रति	iii. १०२, मूत.	पुस्तकात् पठितै	ii. २३५, मू. त.
परमाक्ष रयोगेन	iii. ८०, मू. त.	पूजियत्वा महामुद्रां	і. ३∘, मृ. त.
परमाक्षरसुखपूर्णं	ii. १०६, वि प्र.	पूर्वकर्मफलं भोग्यं	iii. 98
परमाक्षरं चतुर्यं	і. ५, वि. प्र.	पूर्वाम्यासेन	iii, ८३, का. त. २.९७
परमाक्षराभिषानं	і. ६, वि. प्र.	पृथिवी वारुणी	іі. ९०, मृ. त.
परमाणुधर्मतातीता	i. ४४, मू. त.	पृथिव्या उदकं	іі. २३३, मृ. त∙
परमाणुधमैतातीतां	і. २, वि. प्र.	पृथिव्यादिकुलं	ii. २३४, मृ. त.
परमार्थतत्त्व	і. Ч, वि. प्र.	पृथिव्यापस्तवा	i. 42
परश्रुताम्न सर्वन	i. २४, मृ. त.	पृथ्वीघात्समृद्भुताः	ii, २३३, मू. त.
परीक्य भिक्षवी	iii. ७१, त. सं. ३५८७	पृथ्वी मूर्ष्टिन स्थिता	іі. २३४, मृ. त.
परोपकारतः पुंसां	iii. ९१, मू. त	प्रकाशियष्ये सत्त्वा	iii. ७३, ना. सं. १.१५
परोपकारतः सत्यं	i. 88	प्रकृतिप्रभास्वरा	iii, १०१, मू. त.
पश्चाद वच्चैश्चतु	ii. २२	प्रज्ञापारमिता कर्त्री	iii. २४
पश्चिमेऽपरगो	iii. २२, मृ. त.	प्रज्ञोपायविभागेन	ii. २५७, मू. त.
पाण्डरा दृहिता	іі. १७९, मृ. त.	प्रज्ञोपायसमापत्ति	i. 16
पाण्डित्येनाभिमानी	і. ४, वि. प्र.	प्रज्ञोपायसमापत्ति	iii. ७, बा. बु.
पातनं व ञसूत्राणां	ii. २, आ. वु.	प्रज्ञोपायसमापत्ति	iii. ७, गु. त.
पातालखञ्ज सिद्धि	i. 55	प्रज्ञोपायात्मकं तन्त्रं	iii. ६, हे. त.
पापं रागविनाशतः	i. ४, वि. प्र.	प्रज्ञोपायात्मकं योगं	і. २, वि. प्र.
पापेनायर्वलं वीयं	1. 64	प्रज्ञोपायात्मको योगः	i. २, वि. प्र.
पापेनायुःक्षयो	i. ८६	प्रज्ञोपायाम्बुजं	iii. १०३, त. रा.
पाषाणकणाहारी	i. ५, वि. प्र.	प्रज्ञोपायोऽस्यि	iii. ३०, का. त. २.३
पित्आतुस्तवा	ii. १०५, मू. त.	प्रणम्य कालचक्रं	ii. १३१, वि. प्र-
पित्मात्दहित्	i. ७, वि. प्र.		ii. чо, वि. प्र.
पित्मात्वघो	i. ४२, वि. प्र.		i, ३४, ল. ল. i. १५७, লি. স
पीठं पूर्वविदेहं	iii. २२, मू. त.		ii. १, वि. प्र
पीतेन स्तम्भनं कार्यं	iii. १३	प्रणम्यैवं त्रिकायाग्रं	ii. २३३, मृ. त.
पुण्यज्ञानविनि	ii, १४९, वि. प्र.	प्रणवं वर्जियस्वा तु	i. २५५, वि. प्र
पुण्यवान पुण्यसं	iii. ६९, ना. सं. ६.१६	प्रणिपत्य जगन्नाय	ii. xx, वि. प्र
पुष्यसम्भारहीना	iii. ९१, मू. त.	प्रणिपत्य त्रिवचार्य	

	ii. १४९, वि. प्र-	बद्धक्षेत्राण्यनन्ता	iii. ६२, का. त. ५.६३
प्रणिपत्य सर्वभावेन	ii. २०४, वि. प्र-	बद्धक्षेत्रेषु ये सत्त्वाः	ii. १७७, मृ. त.
प्रणिपत्याच्युतं	iii. १०३, वि. प्र-	बद्धदेवास्रानेव	i. ३३, प. बू.
प्रणिपत्यादिकादीनां	i. २६६	बुद्धधर्ममहासंघैः	ii. १५६, मू. त.
प्रतिमासो निरालम्बः	ii. २०७, गु. त. १८.१४०	बुद्धपद्मोद्भवः i. ३	६; iii. ८०, ना. सं. ८.३४
प्रत्याहारस्तया	ा. २०७, गु. त. १८.१०० ां. २०५, मू. त.	बुद्धं सिहासनस्यं	і. १, वि. प्र.
प्रत्याहारे महामुद्रा		बुद्धानामप्यगम्या	iii. ७१, का. त. ५.९८
प्रत्युत्पन्नाश्च	i. १८, ना. सं. १.१२	बुढानां कुत्रचिद्	iii, ११९, प्र. पा
प्रत्येकदिग्विभागेन	ii. ७०, वि. प्र.	बुद्धानां जनकस्त्रिकाय	i. १, वि. प्र.
प्रत्येकं रुद्रसंज्ञां	iii. ९७, का. त. २.४८	बुद्धाः क्रोघाः	iii. ६२, का. त. ५.६३
प्रथमं ताहनं कुर्यात्	ii. २३४, मू. त.	बोधी ज्यानैकनिष्ठं	i. १०, वि. प्र.
प्रभवति वकुली	ii. ४७, का. त ३.३९	बोध्यद्भीश्चामरोद्धतं	ii. १५७, मृ. त.
प्रसिद्धं मङ्गलादीनां	i. ८९, मू. त.	ब्रह्मविद ब्राह्मणो	ii. १००, ना. सं. ८.१९
प्रह्न कायस्यितो	iii. १०२, ना. सं. १.१६	ब्राह्मणी क्षत्रिणी	іі. ९०, मृ. त.
प्राणस्य शत्रवो	ii. २३३, मृ. त.	ब्राह्मी नारायणी	іі. ९०, मृ. त.
प्राणस्य शत्रुमित्रं	ii. २३३, मूत.	भक्तिगुणेषु साधूनां	i. ४२, वि. प्र.
प्राणस्याष्टगुणै	iii, १०७, मू. त.		ii. १०७, झा बु.
प्राणातिपात-मिच्या	i. ७, वि. प्र.	भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य	
प्राणिनां त्रिमुखं	iii. १०७, मृत.	भगे लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य	ii. २०५, मू. त.
प्राणे निबोधिते	ii. २०५, मू. त.	भद्रकल्की तृतीयश्च	i. २५, मू. त. i. ७
प्रिया मेऽप्रिया	і, ४२, वि. प्र.	भवति महार्घ (यं)	
फट्कार है तथा	ii. २३४, मृ. त.	भागिनेया दुहित्री च	ii. १०५, मू. त.
फलं नैकफलं तेषां	i. ८६	भार्याया जननी	ii. १०५, मू. त.
फलं सौस्यं भूयः	ii. १४८, वि. प्र.	भावियत्वा तत	ii. १७७, मू. त.
फेल्का रैभीं मनादै		भावयेदिखलं तस्यां	ii. २०५, मू. त.
बकुली विद्याताभिक्च	ी. ९, वि. प्र.	भावयेद् बुद्धविम्बं तु	ii. १०७, आ. बु.
बन्धं कृत्वा प्रवर	ii. १५७, मू. त.	भावयेद् बुद्धविम्बं तु	ii. २०५, मू. त.
बालपण्डितमुर्खाणां	i. ८, वि. प्र.	भावाभावाभावं	i. ८, वि. प्र.
बालक्च पत्रलेपेन	ј. ११, वि. प्र.	भाषा सर्वस्ता	ii. १४९, वि. प्र.
	iii. १३४	भिक्षया रक्तवस्त्रेण	ii, ६, ыт. ч.
बाह्वोः पार्शनिबद्धो	ii. ८०,८८, का. त. ४.१९८	भिक्षुं वज्रघरं	ii, ९९
बिन्दुयोग इति स्यातः	i. ९, वि. प्र	भिक्षूणां श्रामणेराणां	ii. १०५, मू. त.
बिन्दुशून्यः पह	ii २०५, मू. त.	भुक्तिमुक्तिप्रदात्री या	iii, cq
	iii. १५२, ना. सं. १०.२	भुक्ति देवासुरादीनां	ां. ३३, प. बु.
बिन्दूंश्चक्रेषु बिन्दोमोंले सव	iii. १०२, मू. त.	भूतवादी यथावादी	i. ५६, ना. सं. ६.५
	iii. ७९, का. त. ५.१२६	मूतान्तं भूतनाथं	iii. ६१, का. त. ५.२४५
बीजंन व्यक्त	iii, १०३, का. त. ५.२४४	भूता भूतेषु वेदा ili.	२९, ११०, का. त. १.३२

			4.4
भूतोयाग्निमरु	i. २२८, सेको. ५१	महाबलोऽनिरुद्धस्य	1 24
भूभृतोविष्रहो नास्ति	ii, १५१	महाबछो महोपाय:	ां. २५, मृ. त.
भूमयो द्वादश	iii. २१, मू. त.	महामन्त्रनयोद्भूतो	iii, ७५, ना. सं. ५.१०
भूमिभिद्धविशै	ii. १५६, मृ. त.	महामाया महारोद्रा	ii. १०५, ना. सं. ६.१
भूमिलाभं विना	ii. ४, आ. प.	महामाया महारोद्रा	i, 40; iii, 23
भूमी दिक्ष	ii. २२, का. त. ३.२५	महामाया महारोद्रा	ii, २१४, म. त. १.५
भूयः पष्टचाहता	і. СС, मृ. त.	महामुद्राप्रसङ्गेन	iii. ८७, यो. त.
भूयो भूयः कला	ii. ४४, fa. я.		iii १०२, मृ. त.
भुवार्यग्निश्च	iii. ८५, का. त. ५.५८	महामुद्रासमुत्पन्नं	i. २, वि. प्र.
भोक्तव्यं योगयुक्तेन	ं. १६, मू. त.	महायाननपास्ढो	i. ३७, ना. सं. ५.१४
भोगोऽयं सूर्यनक्षत्र	i. ८८, मृ. त.	महायाननयो	iii. १०२, ना. सं. ५.१४
मञ्जूश्रीचोदितेनैव	ं. ११, १५७, वि. प्र.	महावज्यधरै	i. १८, ना. सं. १.१३
मञ्जूश्रीः श्रीमतां	iii. १०२, ना. सं. १०.१५	महाविद्याः समास्याता	ii. १०५, मू. त.
मण्डलेष्व भिषिक्ताभि		महाविद्योत्तमो	i. ३७, ना. सं. ५.१४
मण्डले संप्रदेया	ii. ९३, का. त. ३.९९		१०५;iii. १०२, ना. सं. ६.१
मध्यमः श्रामणेरा	ii. ४, १४६, आ. प.	महाव्रतघरो i. ३	६; ii. १००, ना. सं. ८.१८
मध्यमायां शोध	iii १०२, मृ. त.	महोष्णीवोऽद्भुतो -	iii. ६९, ना. सं. ६.२२
मध्यमोत्तमश्वासेन	іі. २०७, मृ. त.	मातःङ्गस्यन्दना	i ८, वि. प्र.
मध्यमोत्तमस्वासेन	iii १०६, च. सं.	माता च भगिनी	ii. ९०, मृ. त.
मन्त्रजापैस्तया	іі. २३५, मृ. त.	मावापि राक्षसी	i, ४२, वि. प्र.
मन्त्रजायस्त्रया मन्त्रतन्त्रप्रयोगज्ञ	ii. 4, g. q. c	मातृगृहं प्रयागं च	iii. २०, मू त.
मन्त्रराजो महार्थ	iii. ५४, ना. सं. ६,२२	मानवं व्यासवासिष्ठं	iii. ९७
मन्त्रराजा महाय	ii. 4, गु. प. ९	मामकी भगिनी	ii. १७९, मू. त.
मन्त्रव्याख्याकृदा मन्त्रादिव्यञ्जनानां	іі. २३४, मृ. त.	मायाजालमहो	iii. ७४, ना. सं ८.३८
मन्त्रादिव्यञ्जनाना मन्त्रादौ संस्थितो	ii. २३४, मृ. त.	मायाजाले महा	i. १८, ना. सं. १.१३
मन्त्रादा सास्थता	ii. १४९; iii. १, वि. प्र.	मारवलेशमृग	i. ११, वि. प्र.
	і. १५७, वि. प्र.	मारक्लेशसमूह	i. ४, वि. प्र.
मया श्रीलोकनाथेन	i. (70, 14. 4.		ii. १३, मू. त.
मरणं यौगपद्येन		3C C	i, ७, वि. प्र.
महदेशं गह्नरं च	iii, २१, मृ. त.	मार्गरहितो न तत्त्वं	i. ६, वि. प्र-
महदाद्या प्रकृति	ां. ५१, सां. का. ३		і, ६ वि. प्र.
महाक्षरपदप्राप्ता	iii. १०१, मृ. त.		i. ६, वि. प्र.
महाचिन्तामणि	i. ३८; iii. ८७, ना. सं. ८.११	~	iii. ६६, का त. ५.९७
महाजनो येन	і २७, म. भा. व. ३१३.११७		iii. ९१
महातपस्तपो	ii. १००, ना. सं. ८.१८	2	i. ९, वि. प्र
महाध्यानसमाधि	iii, ७५, ना. सं. ५.१०		i. 4, a. x
महाप्राणी हानु ं	. ३७,५३; ii. २५१, ना.सं. ५.२	130 40 11	

401	:-
मक्तिमों शि विमों ii. १००, ना. सं. ८.१९	यशः कल्की च मित्रं च ं. २५, मू. त.
- 1 00/	यस्तारयति महाघोरं ili ८९
	यस्मिन् जाग्राद्य iii. १०१, का. त. ५.१०३
मुद्रायाः अविनुश्रायः	यस्मिन् वै जाति iii, १०१, का. त. ५.१०२
मुद्रा पञ्चमराज्ञ	यह्मिन समस्तभुवनं i. ३, वि. प्र.
मूडानां बृद्धि iii. १००, का. त. २.८५ मूडांवस्थामवाप्नोति ii. २३४, मू. त.	यस्यादिबुद्धस्य iii, १, वि. प्र.
मुळावस्वानवानाता	यस्या नास्ति दया ं. ४२, वि. प्र.
मूब्ति बिन्दुकला II. ५२४, मू त. मूलतन्त्राचदुद्धृत्य ii. ७०, वि. प्र.	यस्यान्तं नादि iii १०३, का त ५,२४४
मूलतन्त्रानुसारेण ii. ४४, वि. प्र.	यस्यां संसारसंज्ञा ाां. १०१, का. त. ५.१०२
म्लतन्त्रानुसारण म्लप्रकृतिरविकृति i. ५०, सां. का. ३	यागार्थाः पद्मवः і २७, म. समृ. ५.३९
dowsing custon	यातीतैर्भाषिता बुढी ं. १८, ना. सं. १.१२
मृदुचित्ताद् यदा योगी ii. १०७, आ. बु. मे मण्डलस्वभावेन ii. १७९, मृ. त.	यावज्जीवस्य भावः iii ८३, का त. २.१०२
4 4-00/(4-11-1	यावन्तो दृष्टिविक्षेपाः ii, १४२
मेलापकं चतुर्घा ¹¹¹ . २०, मू. त. म्लेच्छमर्गरता ⁱⁱ . ६, झा. प.	या शक्तिः सा भगेति iii. १४७, मू. सू.
	युग एको युगध्चैको iii. १४, मू. त.
	युवानः कुन्तवेधेन iii १३४
यञ्चिह्नं यस्य ii. ५९, का. त. ४.२१	युपं छित्वा पशुं हत्वा ं. २६२
यत्तत्पुनस्तयेयं і. ५, वि. प्र.	येन येन प्रकारेण 1. २४, मू. त.
यत्तस्योपायः ii. २०४, वि. प्र.	येन येन हि i २५६; iii ३४, यो सं. ११.२
यत्सत्यं तदिहाभिषेक ii. १४८, वि. प्र.	येन सूर्यरथादीनां ं, २६, मू. त.
यथा तथा स्वयं iii. २३	
यथा बाह्ये तथा i. ६६, २३५; ii. ५,५५,५७	येनाकुष्य मनोभवः iii, १, वि. प्र.
यया बाह्ये तथाऽध्यात्मनि iii. ११५	येनाक्षरं न लब्धं i, ५, वि. प्र.
यदा रत्नस्य मेदिन्यां і, २५, मू. त.	येनोद्धृत्यादिबुद्धा iii. १५४, वि. प्र.
यथा वामा तथा i. १९६, कालो.	ये प्रोक्तानेक ं. १००, का. त. ५.८६
यथोक्तं तन्त्रराजे च ii. २१, वि. प्र.	येम्यः कारयति i. ७, वि. प्र.
ययोद्धृतं महातन्त्रात् ii. १३१, वि. प्र.	ये मुक्ता भव i. २३; iii, ९२, लो, स्तो.
यदयो निरय ii. २४१, कृ. त. ६.१३	येषां मार्गो विनष्टो i. ११, वि. प्र.
यदि पालयसि में ii. १०७, आ, बु.	येषां वज्जप्रपातः i. १०, वि. प्र.
यद्येवं गम्यते i. २६२	येषां सत्त्वेषु कृपा i ६, वि. प्र.
यहत्तदृत्युंसां і. ६, वि. प्र.	येपां सर्वार्थनाशो i, १०, वि. प्र.
यहत्तहत्त्रज्ञा i. ६, वि. प्र.	योगं श्रीकाल्चक्रे i ३३, प. बु.
यहत्तहद् अष्ट । ६ ति प	योगः शुद्धो विमोक्षैः і १, वि. प्र.
भद्द भ्याकृत दशबलन i 3 ति प	योगाचारमता ं २६६, मु. सं. ३८९
यमराजासदो ii. २४१. कत ६ १३	योगिन्योऽर्केन्दुराहु ं १, १०, वि. प्र.
यमार्यादिदशक्रोधा і. २५, मू. त.	
111 11 11	योगीन्द्रोऽप्राप्त iii. ८३, का. त. २.९७

योगी शब्दापशब्देन	і, २४, मू. त.	लोकसंवृति	ii. २१२, म. चा. २४.८
यो गृही मठिका	ii. ४, आ. बु.	लोकोपमानति	iii. ४७, ना. सं. १०.१३
योगो नोपाय	i. १८; iii. ७, बा. बु.	लोचना चक्षुरादींश्च	ii. २०५, मृ. त.
यो ददाति गुरुदीक्षां	iii. ८९	छोचनाऽहं जगन्माता	ii. १७९, मू. त.
यो देवाहिनरा	i. ११, वि. प्र.	डोहरत्नान्नगोवाजि	ii, cr
योऽभिज्ञारहितः	і. ₹, Га. я.	वज्यकायशरीराणां	iii, vc
यो यत्कर्माव	iii. १००, का. त. ५.२४७	वजन्वालाकरालाक्षो	1, ३९,९०, ना सं ७७
यो यन्मध्ये	iii. ८३, का. त. २.१०२	वज्रतीक्णो महा i, ३६	,५८; iii ८०, ना सं.८.३५
यो योगी व्यायते	i. ८, वि. प्र.	वच्चपाणिः सुचन्द्रस्त्वं	і, २५, म. त.
रक्ताम्बरं यदा दृष्ट्वा	ii. ६, आ. प.	वजभरवभीकरः गं. ३।	o; iii. १०२, ना. सं. ६.२५
रक्षणीयं महासीस्यं	ii. १०७, आ. वु.	वज्रवेगं नमस्कृत्य	ii, २१९, वि. प्र.
रत्नकेतुर्महामणिः	iii. १०२, ना. सं. ९.२४	वज्रसत्त्वो महासत्त्वो	і. २, वि. प्र.
रत्नपुष्पः समन्यच्यं	i. ३३, प. बु.	वजसूर्यो महालोको	i. ३६,६३; iii. ५८,
रसयुगशशिनः	iii. ११०, का. त. १.३४		ना, सं, ८,३३
रहस्ये सर्वदूतीनां	i, ३३, यो. अ.	वच्चं वा सर्वकर्म	i. २५४, का. त. ३.१२
	ііі, ९१, मू. त.		iii. १०२, ना. सं ६,२५
रागादिमिलनं चित्तं	і, у, а. я.	वजावेशो महावेश	ू ३९; iii. ९०, ना. सं. ७.७
रागानन्तजले	i, ६, वि. प्र.		iii. ५९, ना. सं. ८.३३
रूपादिसंकल्पनै			ii, ६, बा.प.
रोगाद्यं कुरुते	ii, २३४, मू. त.	-7	ii, ६, q, q, ४
लक्षजापेन चित्तस्य	ii. २३४, मू. त.		i. 9, 1. 9. 9. 9. 9. 1. 944
लक्षणं बुद्धकायानां	· iii, ४५, वि. प्र,		
लक्ष्मीरुच्वैःश्रवास्वः	iii. ९५	4	ii. २३५, मू. त. i. ५, वि. प्र.
लग्नं क्र्य्यहैश्चैतत्	i. 68		1. 4, 14. × . iii. 88
लघुतन्त्रे प्रपञ्चेन	ii, ४४, वि. प्र	. विशिष्ठदत्तलग्नेन	111
लघुतन्त्रे मञ्जूघोषः	i. २६, मू. त	. वश्याकृष्टी च रक्तेन	
लग्	i. १३५, शि. सू	. वं-बजी वजसत्वश	i. ?, a. x.
लब्बं तस्याप्यधः	і, сс, म. त	वागप्रणि हितज्ञान	
लब्धं भवति नक्षत्रं	i. ८९, मृ. त	. वागाद्यं मण्डलं	ii. ४५, मू. त.
ललाटे करपुटां वस्य	: >> = =		i. २४, मू. त.
	iii. २८, का. त. ५.१२०		ii. १९७
लाद्या यास्त्वष्ट	ii. १, वि. प्र		11, (00, 14. 7.
लिस्यतेऽत्र मया	iii. १, fa. я		ji. २३३, मू. त.
लिख्यते पुण्डरीकेण	i, ₹, वि. प्र		іі. २३३, मू. त∙
लिङ्यते लघुतन्त्रस्य	ii. २३३, मू. त		i. २९, मू. त.
व्युलसाश्च ये	; 01		i. ₹, fa. ¤.
छोकघातुमानं छोक		1	

वाय्वादास्त् क्रमात् ii. १०	५, म. त.	व्रजति परपदं	iii. ५६, का. त. २.४७
	1. 64	शिक्षिनीयं महा	ii. २०५, म. त.
	i. १0	शतायुर्वे पुरुषः i. ७६	, १०९, ऐ. ब्रा. २.१७,४,१९
	२, वि. प्र.	शत्रुः सिंहो गजेन्द्रो	i. c, fa. x.
	३५, ३६	शब्दाशब्दविचार	і, Ч, वि, प्र,
14 hereida i in	9, वि. प्र.	शपसर्	ं. १३५, चि. स्.
	१, मृ. त.	शाश्वतोच्छेदनिर्मुक्तो	ί, ४४, म, त.
विज्ञानधर्मतातीतो i. ३९; iii. १५१, ना.र		शास्तृणां वोधिसत्त्वान	i ii. २३५, मू. त.
	iii. ८६	शास्त्रा स्वं व्याकृता	i, ४, वि. प्र.
	i. 47	शिखी शिखण्डी ii.	१०१, ना. सं. ८.१७
वितनोमि टीकया सर्व 11. २१		शिरसा जानुयुग्मेन	i, ३३, प. बु.
विद्याचरण iii. ६३, ना. स		शिवतत्त्वमिति	iii. ९२, मृ. त.
विद्याराजोऽत्र iii. ६९, ना. स		शिवतत्त्वं कामतत्त्वं	ііі. ९१, मू. त.
विद्याव्रतेन वच्चपाते i, ६,		शिवतत्त्वे कामतत्त्वे	iii. ९१, मू. त.
विद्युद्ण्डानुरूपा iii. ८२, का. त	14. A.	शिष्येभ्यश्च गुरूणां	i, २९, मू. त.
विचर्याच्यात्मविद्या iii ६२, का त		शीघं शम्भलविषया	i. 26
विरागादिमहा i. ३६,६३; ii. १०८, ना.		शीलसंभारसंपूर्णं	ii. १०७, आ. बु.
विशुद्धं तद्वियोगेन iii. ९१, मू. त.	4.6.44	शीलादिपञ्चिभः	ii. १५६, मू. त.
		शुक्रं पद्मं तयोरीक्यं	ii, १५०, आ. बु.
विश्वमायाधरो i. ३६, ५८; ii. २१९; iii		शुद्धज्ञानैकयोगो	i. ३, वि. प्र.
	. ८,३५	शुभाशुभन्नः कालनः	iii. ३२, ना. सं. ८.१३
विस्वमूर्तिः सुरेशानः i २५ विषतत्त्वमिति स्थातं iii ९२	, मू. त.		१०६,१०७, वि. प्र., आ. वु.
	, मू. त.	शन्यताकरणाभिन्नो i	४४; ii. १४९, मृ.त.,वि. प्र.
विषं निविषमित्याहु iii, ९२	, मू. त.	शून्यताचक्रमित्युवतं	і. с, а. я.
बिहारादेः प्रतिष्ठाचं ii. ५,	मा, प,	शून्यताज्ञानसंशुद्धं	i. १, वि. प्र.
विद्यात्याकार ii. २०९, ना. सं	. 5.84	शून्यतादिविमोक्षेश्च	іі. १५७, मू. त.
बीरक्रमो न बाह्ये 1, ७,	वि. प्र.	शून्यतावादी	iii. ४८, ६५, ना. सं. ८.१
वारक्रमा न मार्गः i. ७,	वि. प्र.	शून्यता बोडशस्तम्भा	
वायवता हियत i. ७,	वि. प्र.	जून्यमण्डलमादाय जून्यमण्डलमादाय	ii. १५६, मू. त.
वृताः समग्राः सुर	ii 3.	भूत्यमण्डलमादाय शून्यं ज्ञानं च बिन्दं	ii, १७९, मू. त.
वृश्चिककुळीर . i. ८,	ाव. प्र.	शून्य शान च ।वन्दु शून्यं वाय्वादि	i. ३३, प. बु.
वेदैस्तिष्याहतम् i ८७ ११५ का व			ii, २३३, मू. त.
ज्या गुवासवा ।।। ५१, म. त		शून्ये ज्ञानं विमिश्र शून्ये भावसम्हो	iii. ८४, का. त. २.३
वरोचनो महा ii. १८०; iii. ५४, ६९, ना	. ti	भूत्य भावसमूहा भूत्येभ्यः स्कन्धधर्माः	iii. १०१, मू. त. iii. ९८
	4.78	शून्यस्यः स्कन्धधमाः शेषं पष्टचा हतं	
वैस्या डोम्बी च ii. १०५			i. ८८, मू. त.
(0)	1600	श्रद्धादिभिवंलै:	ii. १५६, मू. त.

श्रीकालचक्रवणः		सत्त्वोपकारिणो	i. ४२, वि. प्र.
श्रीज्ञानपटले टीका		सत्पापकोपपातक	i, 19, fa, x,
श्रीतन्त्रं सम्बरावृत्तैः	i. २५, मृ. त.	सत्यद्वयं समा i	i. २१२, म. बा. २४,८
धीधर्मकायवाक् चित्त	i. २, वि. प्र.	सत्यद्वये स्थितस्यास्या	i. ११, वि. प्र.
श्रीविश्वरूपिणी	i, ३४, यो. अ.	सत्सु त्रिष्वेकदेशे	ii. ५, बा. प.
श्रुत्वा तन्त्रमिदं	ां. ३, वि. प्र.	सत्सोस्यैर्द्रुतसञ्चनाय	i, ४, वि. प्र.
श्वासा मण्डलभागेन	i. ८९, मू. त.	सदमंविकयी मूर्वो	ii. ४, बा. बु.
इवासाइच मण्डलं	1, ८८, मू. त.	सदर्मादीन् पुरस्कृत्य	ii. ६, गु. प. ४
पट्कर्माणि ययासंस्यं	ii. २३४, मू. त. ∙	सन्ध्याभाषं तथा	i. ३५, मृ. त.
वर्तिशव् दूतिका	iii. १०७, मू. त.	सन्ध्यायामधंलग्नेषु	iii. १०७, मृ. त.
वष्टिसाहस्त्रिका या	i. 3, fa. y.	सन्मार्गं दर्श(६यं)मानो	i, ११, वि. प्र.
बच्छे स्पर्शः	ii, १६४	सन्मार्गं वज्रसत्त्वस्य	i, ११, वि. प्र.
षोडशकस्तु विकारो	ां, ५१, सां, का, ३	समन्तभद्रः सुमति	iii. ७४, ना. सं. ८.३९
वाडशकस्तु विकास	i, ६, वि. प्र.	समाजं मीलनं	iii. ७, गु. त. १८.२४
वोडशाकारतत्त्ववित्	iii. ५८, ५९, ना. सं. ९.१५	समाघिषारिणी	ii, १५७, मू. त.
वोडशाकारतस्यान्यः	ां २०४, मृ. त.	सम्प्राप्तः क्रूरदृष्टिः	i. ९, वि. प्र.
वाडशाब्दा कुलाना	ii. १५५, का. त. ५.१२०	सम्प्राप्ता रीद्रनेत्राः	і ९, वि. प्र.
सकुलिशकमलम्	i. २५, मू. त.		६; ii. १०८, ना. सं. ८.३४ i. ७, वि. प्र.
सङ्गीतिकारकश्चायं	i. 55	सम्भिन्नवची	i. २, वि. प्र.
सिन्छद्रां सुदृढां भूमि	јू १०, वि. प्र.	सम्भोगकायवाक्	iii ७४, का. त. ५.६०
सज्वालैस्तीक्ष्णदंष्ट्रै	iii, ९१, मू. त	Healist Grant	
सञ्चारणं भवेत्		सरकार्वा(अराम)मनम	ii. २३०
सत्काश्मीरमताम्भोधि	iii. २४, ९९	सवक्रमाण पञ्जन्	i. ५, वि. प्र.
सत्त्वस्तस्य फलं	і ५, वि. प्र	सवज्ञस्य न नाया	i २, वि. प्र.
सत्त्वानामधिमुक्ति	ii. १७८, वि. प्र	सवज्ञ ज्ञानकानावन	i. १, वि प्र-
सत्त्वानामधिमुक्तितो		and the second	і ३२, का. ग.
सत्त्वानां चित्	iii. ७८, का. त. ५.९९	सर्वज्ञी ज्ञानकायो	і уо, म. त.
सत्त्वानां पाप	iii. ९०, का. त. ५.७		iii, ४७, म. गी. १३.१३
सत्त्वानां सर्वकालं	і ९, वि. प्र		iii. ४७, म. गी. १३.१३
सत्त्वा बुद्धा न	iii. ९०, का. त. ५.६	सर्वतः धृति	і, ३२, का. ग.
सत्त्वा यन्मोच	iii. ८१, का. त. ५.१९	सवंतो व जसीभाग्यः	i. ३३, यो. अ.
सत्त्वा रागेण	iii. ८१, का त. ५.१९	९ सर्वंदूतीमयः	i २५, मू. त.
सत्त्वाशयवशात्	i. २५, मू. त		ј ६३, ना. सं ८,३२
सत्त्वाशयवशेनीप	ii, १४९, वि. प्र	. सर्ववुद्धमहाकायः	j ६३, ना. सं. ८.३≺
सत्त्वेन्द्रयज्ञो	iii. ३२, ना. सं. ८.१	सवंबुद्धमहाचितः	iii. ७४, ना. सं. ८.३९
सत्त्वोपकारतोऽसत्यं	i, §'	६ सर्वबुद्धमहारागो	

वमलप्रम	THEAT	7777		
T. LONG	12014	अनान	ऋभुजा	

20	•
10	3

सर्वेबद्धानां श्रीसमाजं	i. ३३. गु. त. (?)	संसारसुखमनित्य	i, ५, वि. प्र.
सर्वभावसमी भूत्या	iii. १०१, मू. त.	संसारे निःसारे	i. ७, वि. प्र.
सर्वभावस्वभावा	iii. ७४, ना. सं. ८.४०	संस्कारा न जडाः सन्ति	i. 788
	३७; iii. ६१, ना. सं. १०.२	संस्कृतं क्षणिकं सर्वं	i. 788
सबंमेतद् व्रती	ii. गु. प. ६	साकारापि निराकृतिः	i. १., वि. प्र.
सर्वरूपावभासश्री	iii. ४८,६५, ना. सं. ८.३	साङ्गो वेदो न	iii. ६२, का. त. २.९६
सर्वसत्वरुतैऋंदि	ii. १४९, वि. प्र.	सा ज्ञानाचिः	iii. ८२, का. त. ५,११३
सर्वसम्पत्करं	ii. १५७, मू. त.	साधकानां द्विधा	ii, २३४, मू. त.
सर्वसम्बद्धबोद्ध व्यः	iii. १०२, ना. सं. १०.१	साधनं ये प्रकुवंन्ति	ii. २३५, मू. त.
सर्वसंज्ञात्मका	iii, १०१, मृ. त.	साधनापटले टीका	ii, १४९, वि. प्र.
सर्वाकारज्ञवोध्यङ्ग	ii. १५७, मू. त.	साधु साधु सागरमते	i. 29
सर्वाकारवरोपेतः	ii, १४९, वि. प्र.	साधु साधु सूयंरथ	j. ₹0
सर्वाकारवरोपेतां	і, २, वि. प्र.	साम्राज्यसुखं प्राप्तो	i. ५, वि. प्र.
सर्वाकारं ह्यगम्यं	iii, ७८, का. त. ५.९९	सालम्बाऽनणुशून्यता	iii. १, वि. प्र.
सर्वाकारोनिराकारः	ii. १०९; iii. ७९, ना.	सावद्यं तस्य तन्मांसं	ं १६, मू. त.
	ਚੰ. १०.३	सिक्त्वा तत्त्वं प्रकाशयेत्	iii, ५३
सर्वाभिलापहेत्व रं. ३०	9,५३; ii. २५१, ना. सं. ५.२	सिक्तवा श्रीमति धर्म	ii. १, वि. प्र.
सर्वारींस्तान् स्वशस्त्रैः		सिद्धान्तानां विनाश	i. ८९, का. त. १.२६
सर्वायः सोऽविनाधी	i. १०, वि. प्र.	सिद्धार्थः सिद्ध iii	. ४७, ६३, ना. सं. ६.१५
सर्वावरण निर्मृक्त		सिद्धधति लौकिकसिद्धि	i. ६, वि. प्र.
	iii. ६८, ना. सं. ८.९	सिंहासने स्थितो	ं, ३९, मृ, त,
सर्वोपमामतिकान्तो	३८; 🏭 ८७, ना. सं. ८.११	सुखदु:खान्तकृन्	iii. ७८, ना. सं. ८.२०
सर्वो मृगयति तोयं	iii, ७८, ना. सं. १०.१३	सुखं द्वीन्द्रियजं तत्त्वं	ii. २१५
सविसर्गेण शून्येना	i. ५, वि. प्र.	सुखाद्वी गादस्मात्	ii. १४८
सहजकायवाक्	ii. २३४, मू. त.	सुखैकचक्रवाडेन	ii. १५७, मू. त.
	i. २, वि. प्र.	सुचन्द्र तव वंशे	i. २४, मू. त.
सहजानन्दरूपेण	ं, ३२, यो. अ.	सुचन्द्र मूलतन्त्रे	і. २६, मू. त.
संक्षिप्तं मूलतन्त्रानु	ii ७०, वि. प्र.	सुचन्द्र सर्वबुद्धानां	i. २९, मृ. त.
संग्रामे वनदाहे च	i. ८६	सुप्तोऽपि सपंदष्टो	i, ६, वि. प्र.
संज्ञानानलदग्ध	i, २३; iii, ९२, हो, स्तो,	सुप्रबुद्धी विबुद्धा	iii, ७८, ना. सं. ८.२२
संत्यको बन्धु	i. ९, वि. प्र.	सुमिन्द्रो(त्रो)रक्त	i. २५ मू. त.
संबुद्धव जपयं छूं।	iii. ८०, ना. सं. ८.३४	सुविशुद्धक्रम एको	i. ७, वि. प्र.
संबुद्धव्याकृतेन	iii. १५४,१५५, वि. प्र.	सूक्ष्मयोग इति स्यातो	ii. २०५, मू. त.
संबृत्या मन्त्रसिद्धा	ііі, २१, मू. त.	सूच्यग्रं पर्वताकारं	i. 44
चयारनारकाटिस्यः ।	३८,२२५; iii. ६८, ना. सं.	सूतस्याग्ने	iii, ८१, का. त. ४,२२४
	€.8.3	सूत्रं वै ब्रह्म	ii. ४७, का. त. ३.३९

			208
स्यंत्रभो गतो स्यंगण्डळभोगेन सेककाळे प्रदातव्या सेककाळे प्रदातव्या सेकायंन जिनेन्द्रः सेव्यादौ कर्ममृदा सौक्येन संगृहोताः सौराष्ट्रं चैव काश्मीरं स्कन्याभावं प्रजाजानं स्तव्यक्तिं सुरासुरे स्यानरक्षाविधि स्यानं श्रीयोगिनीनां स्यावरं जङ्गमं स्यात् काश्मीरमताम्भोषि स्वते विन्दुरूपेण स्वतित्दृद्धवीयँण स्वपरे वर्शने स्वमातुभगिनी स्वस्यात् काश्मीरमतामभोषि सवते विन्दुरूपेण स्वपरे वर्शने स्वमातुभगिनी स्वर्थक्रजनभेदेन स्ररः धमृतुरेत्	i. २५, मृ. त. i. ८८, मृ. त. ii. १०५, मृ. त. ii. १०५, मृ. त. ii. ९, वि. प. iii. २१, मृ. त. iii. २१, मृ. त. iii. २१, मृ. त. iii. २१, मृ. त. ii. २१, वि. प. ii. २१, वि. प. ii. २१, मृ. त. i. २१, मृ. त. i. १९, मृ. त. i. १९, मृ. त. i. १९, मृ. त. i. २६५, मृ. त. i. २६५, मृ. त. i. २६५, मृ. त. ii. १२५, मृ. त. ii. १२५, मृ. त. ii. १२५, मृ. त. ii. १०५, मृ. त. ii. १२५, मृ. त. ii. १२५, मृ. त. ii. १२५, मृ. त. ii. १२३, मृ. त. ii. २३३, मृ. त.	स्वयं कर्ता स्वयंहर्ता स्वा(सा)कारज्ञानजनका स्वापाप्टानं गूप्ये स्वामायिकः सुवाभोगो स्वापंप्रंचो हि स्वाहा गूर्ये महोळीये स्वोस्वयंगं च नो हन्ते। हर्ता न बौद्धानं ह य व रट् हर्ट् हंसपाके च हाराघाँ वेणिका हिता मातेव पुत्राणां हुतं भूनक्ति यः हुकारण स्वकं हुं पट् कुवंस्ततो हेकारेण महाकरणा हे सहाराजाधिराज हे स्वाप्रंच ! त्यं यशो हे सूयंर्य रा वं बेशां हे सूयंर्य रा वं वेशां ह सूयंर्य सां	i, 40 i, 25 € i, 0, 76, 31, 31, 24, 31, 24, 31, 24, 31, 32, 32, 32, 32, 32, 32, 32, 32, 32, 32
स्वयमेव नहि	i, ७, वि. प्र.	हियते कुविषयचौरैः	i. ७, वि. प्र.